# एकलिङ्गमाहात्म्यम्

सम्पादिका
( डॉ० कु० ) प्रेमलता शर्मा



मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: पटना :: वाराणसी

# एकलिङ्गमाहात्म्यम्

( एकलिङ्ग मन्दिर का स्थलपुराण एवं मेवाड़
के राज-वंश का इतिहास )

सम्पादिका

**(डॉ० कु०) प्रेमलता शर्मा**

अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग
संगीत एवं ललित कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

**मोतीलाल बनारसीदास**

दिल्ली : : वाराणसी : : पटना

# अवतरणिका

एकलिङ्ग-माहात्म्य के सम्पादन और प्रकाशन की परिकल्पना आज से प्राय: ११ वर्ष पूर्व चित्त में उठी थी। इस ग्रन्थ से परिचय तो उससे भी पूर्व सन् १९६२ में महाराणा कुम्भाकृत 'संगीतराज' के सम्पादन के प्रसङ्ग में हो चुका था। उदयपुर (मेवाड़) के भूतपूर्व महाराणा श्रीमान् भगवत्सिंहजी की इच्छा और प्रेरणा से १९६५-६६ में एतद्विषयक संकल्प उद्भूत हुआ, किन्तु उसकी सफलता में नाना विघ्न-बाधाओं ने विघ्न ला दिया।

प्रकाशन में विलम्ब एवं तत्सम्बन्धी अन्य सभी त्रुटियोंका उत्तर-दायित्व मेरा अपना है, और सफलता यदि कुछ हो तो उसका श्रेय उन महानुभावों को है जिनके प्रति यहाँ कृतज्ञता-निवेदन औपचारिकता मात्र नहीं, अपितु सत्य का स्वीकार और ज्ञापन है। कोई भी यज्ञकार्य एकाकी सम्पन्न नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत यज्ञ के सहयोगियों के प्रति कृत-ज्ञता और कुछ नहीं, मिथ्या अहन्ता को विलीन करने का साधन-मात्र है।

१. सर्वप्रथम धन्यवाद-भाजन हैं उदयपुर ( मेवाड़ ) के भूतपूर्व महाराणा श्रीमान् भगवत्सिंह जी। आपकी प्ररणा तो मूल में थी ही, साथ ही एकलिङ्गजी ट्रस्ट द्वारा आप ने आर्थिक सहयोग भी दिलाया, जिससे हस्तलेखो की प्रतिलिपि आदि कराने का व्यय, प्रकाशन में कागज का व्यय और अन्यान्य प्रकीर्ण व्यय का निर्वाह सम्भव हुआ।

२. उदयपुर के राजमहल के पुस्तकालय के अधिकारी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संचालक श्री ब्रजमोहन जावलिया एवं बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा—हस्तलेख उपलब्ध कराने हेतु।

३. हस्तलेखों की प्रतिलिपि एवं पाठ-संशोधन कीं सामग्री जुटाने मैं सहायतार्थ—डॉ० श्री जगन्नाथ पाठक, वर्तमान शोधाधिकारी, म० म० डॉ० गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयाग।

४ डॉ० ऊर्मिला शर्मा, "सीनियर रिसर्च फ़ेलो", संस्कृत-पालि-विभाग, का० हि० वि०—पाठोद्धार एवं प्रूफ़-संशोधन में अमूल्य सहायतार्थ।

५. मोतीलाल-बनारसीदास नाम से सुप्रतिष्ठित प्रकाशन संस्था के

प्रमुख लाला सुन्दरलाल जी जैन एवं उक्त संस्था की वाराणसी शाखा के व्यवस्थापक श्री कुमार जैन—प्रकाशन-व्यवस्थार्थं।

६. वर्द्धमान मुद्रणालय—मुद्रण-सम्बन्धी सहयोगार्थं।

भूमिका-सम्बन्धी मार्ग-दर्शन के लिये जिन्हें धन्यवाद तो नहीं, प्रणामाञ्जलि-मात्र निवेदित कर सकती हूँ वे हैं—निरंजन-पीठाधीश महामण्डलेश्वर स्वामी महेशानन्द गिरि। आपकी "ज्ञानाञ्जन-शलाका" से मेरे चक्षुरुन्मीलन में जो भी त्रुटि रह गई हो, उसमें मेरी अपनी अयोग्यता ही कारण है। आप की व्यापक और तलस्पर्शी दृष्टि का यत्किञ्चित् संस्पर्श पाने का प्रसङ्ग इस प्रकाशन ने ला दिया, इसी से मैं कृतार्थता का अनुभव करती हूँ।

सुधी पाठकगण समस्त त्रुटियों, विच्युतियों को क्षमा करके सार ग्रहण करें, यही प्रार्थना है।

सोमवार
श्रावणी पूर्णिमा
वि० सं० २०३३
( ९ अगस्त १९७६ )

प्रेमलता शर्मा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–५

# अनुक्रमणिका

परिशिष्टानि

# श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्य ( पौराणिक )
# का कथासार

### प्रथम अध्याय

मङ्गलाचरण के रूप में सूर्य और वाणी का स्मरण। नारद की वायु से 'पृथ्वी' और 'मेदिनी' नामों के सम्बन्ध में जिज्ञासा।

वायु—शौनक ने द्वादशवार्षिक यज्ञ में ऋषियों को आमन्त्रित किया और ऋषियों की सभा में शौनक सूत से बोले कि पृथ्वी का नाम 'मेदिनी' क्यों है।

### द्वितीय अध्याय

शौनक ने सूत के समक्ष ऊपर लिखा नारद वाला प्रश्न ही दोहराया।

सूत—प्रलयकाल में निद्रामग्न भगवान् विष्णु के कर्णमल से मधु-कैटभ का जन्म। दोनों ब्रह्मा को मारने को उद्यत, ब्रह्मा द्वारा योगनिद्रा की स्तुति और विष्णु का जागरण। सहस्रों वर्षों तक भगवान् से उन दोनों का बाहुयुद्ध। प्रसन्न होकर दैत्यों ने भगवान् से वर माँगने को कहा। भगवान् का वचन कि तुम दोनों मेरे वध्य बनो। दैत्यों ने कहा कि हमें वहाँ मारो जहाँ पृथ्वी जल से परिलुप्त न हो। तब भगवान् ने अपने जघन पर रख कर उनके शिर काट डाले। पूरी वसुन्धरा उन के मेद से भर गई, इसीलिये मेदिनी कहलाई।

पृथु ने मधुकैटभ के मेद और अस्थि से भरी अवनी को सम बना दिया। अपने स्वरूप को प्राप्त होकर मही धेनु का रूप धारण करके पृथु को वर देने को तत्पर हुई। पृथु ने शस्य (अनाज) माँगा और यह वर भी माँगा कि धरणी उस की पुत्री होकर उस के नाम से ख्यात हो। यही पृथ्वी नाम की सार्थकता है।

### तृतीय अध्याय

शौनक द्वारा नाना देशों के नाम गिनाने के बाद 'मेदपाट' की सार्थकता के सम्बन्ध में प्रश्न।

सूत—जम्बूद्वीप के मध्य में दारुवन। वहाँ अनेक मुनियों का वास। उन के प्रभाव से वन की पूर्ण शोभा। वहाँ शङ्कर-पार्वती का आगमन

और भावी-वश पार्वती का शङ्कर से अनुरोध कि वे ऐसा कुछ करें कि तपोवनवासी मुनियों की पत्नियों का चित्तभ्रंश हो। शङ्कर ने ब्रह्मतेज का भय दिखाकर शाप की आशङ्का बताई। पार्वती का हठ।

भगवान् द्वारा काम सदृश रूप लेकर उस वन में विचरण। कुशाहरण के लिये गई हुई वृद्धायें और तरुणियाँ उन्हें देखकर मोहित हो गईं, भगवान् अदृश्य हो गये। वे मूच्छित हो गईं, फिर उठकर दसों दिशाओं में खोजने लगीं। मुनियों ने ध्यानस्थ होकर कारण जान लिया और एकमत से शिव को शाप दिया कि उनका लिङ्ग पृथ्वीतल पर पतित हो।

## चतुर्थ अध्याय

वायु—तारक नाम के दुष्ट दैत्य के अत्याचार से देवताओं के अधिकार लुप्त हो गये। दैत्यनाश के लिये उनसे पुत्रोत्पत्ति के लिये प्रार्थना। शिव का रेतःस्खलन और अग्नि द्वारा पारावत के रूप में रेतस् का ग्रहण और गङ्गा में उत्क्षेप। देवी ने विरेतस् शिव को देखकर और स्वयं को गर्भहीना मानकर देवताओं को शाप दिया कि वे सब अपत्यरहित हों और पृथ्वी पर जाकर पत्थर बनें। सब ओर हाहाकार मच गया। तब वासुदेव ने देवी को सांत्वना देते हुए कहा कि जाह्नवी तीर पर देवी का पुत्र होने वाला है जो सेनानी, शत्रुहन्ता, गाङ्गेय, षण्मुख होगा।

## पञ्चम अध्याय

चण्डिका शोक छोड़कर पुत्र-प्राप्ति के बाद नारायण से बोली कि उनका शाप अनृत नहीं होना चाहिए। पृथ्वी मेद से भरी हुई है। मान्धाता की सुन्दर नगरी में, कण्टकाख्य देश में शङ्कर का लिङ्ग गिरे। पृथ्वी को भेदकर वह पाताल में पहुँच जायेगा। फिर मेदपाट में धेनु द्वारा स्मृत होकर प्रादुर्भूत होगा। सभी देवता इस लिङ्ग के समीप पाषाण बन कर रहेंगे। और मेरी गर्भापहारिणी गङ्गा कुटिला होकर वहाँ रहेगी। सब तीर्थ वहाँ लिङ्ग के आसपास निवास करेंगे। नारायण कलि में शालग्राम होकर रहेंगे। जिस देवता का जैसा रूप, आयुध और वाहन है वैसी ही उसकी दार्षदी मूर्ति बनेगी और पूजित होगी। मैं भी स्नेहार्चित लिङ्ग के निकट ही अन्य मूर्ति धारण करके विन्ध्यवासा नाम से कुटिला तीर पर रहूँगी।

## षष्ठ अध्याय

शौनक ने कहा कि इस विचित्र व्याख्यान को वे विस्तार से सुनना चाहते हैं।

सूत—लिङ्ग के गिरने पर वसुधा विचलित हो गई। (यहाँ लिङ्ग-पतन को भीषणता का काव्यमय वर्णन है।) लिङ्ग एक क्षण में पाताल में पहुँच गया। लिङ्ग पतन के कारण व्रीड़ा-पीड़ा-समन्वित शङ्कर गर्भ-वास के लिये तत्काल गोलोक गये और वहाँ कामधेनु के गर्भ से नील-वृषभ के रूप में उत्पन्न हुए।

वायु—उधर शोकाकुला पार्वती नन्दी से बोली कि मैं प्रथम बाष्प (अश्रु) गिरा रही हूँ, अतः मेरे पूर्वदत्त शाप से तुम बाष्प राजा बनोगे। कलि में तुम 'द्विजाग्र्य' कुल में उत्पन्न होओगे और तुम्हारे वंश का कभी विच्छेद नहीं होगा। नागह्रद तीर्थ में जगन्नाथ की आराधना करके इन्द्र सदृश राज्य प्राप्त करके अन्त में स्वर्ग जाओगे। तुम्हारे वंशज क्रमशः वर्णाश्रम-निन्दकों के संसर्ग से धर्मरहित होकर शूद्र जैसे हो जायेंगे।

जया और विजया से पार्वती बोलीं कि जया मेदपाट में वर्णनाशा नाम की नदी बने और विजया गम्भीरा नाम की नदी। गङ्गा ने आपत्ति की तो उसे भी पार्वती ने कुटिला नदी बन जाने का शाप दिया।

सूत—इस प्रकार अपने गणों को शाप देकर देवी नागह्रद तीर्थ में विन्ध्याद्रि के शिखर पर विचरण करने लगीं।

## सप्तम अध्याय

शौनक—कामधेनु के गर्भ से शिव के वृष रूप से उत्पन्न होने पर और पार्वती के विन्ध्यवासा बन जाने पर फिर क्या हुआ?

सूत—सब देवताओं ने नीलवृष-सहिता सुरभि की स्तुति की। तब धेनु ने देवताओं को यथाकाम वर माँगने को कहा। देवताओं ने कहा कि शङ्कर का लिङ्ग अमरकण्टक तीर्थ में गिरकर तत्काल पाताल में चला गया है, उसका उद्धार हो और वह पार्वती के वचनानुसार दार्षद रूप को प्राप्त हो यही इष्ट है। कामधेनु ने कहा कि वह मेदपाट देश में जाकर नागह्रद स्थान में यह कार्य सम्पन्न करेगी। देवता भी अपनी दार्षदी मूर्त्ति में वहाँ पहुँच जायें।

### अष्टम अध्याय

नारद द्वारा वायु से देवताओं की दार्षदी मूर्त्ति के सम्बन्ध में प्रश्न। वायु द्वारा अनेक देवताओं पर्वतों, नदियों का नामोल्लेख, जो या तो दार्षदी मूर्त्ति में स्थिति हो गये थे अथवा वृक्षों, पर्वतों, नदियों आदि में मिल गये थे। सब देवताओं ने पार्वती से प्रार्थना की कि उन्हीं के वचनानुसार वे सब दार्षदी मूर्त्ति धारण कर चुके हैं, अब वे भी उसी प्रदेश में दार्षदी मूर्त्ति में रहें। देवी ने एकलिंग के निकट रहने की स्वीकृति दी।

सूत—वहाँ जाकर कामधेनु ने शङ्कर का स्मरण करके पयः प्रस्रवण किया। मातृ-स्नेह-वश लिंग पाताल से ऊपर आ गया और एकलिंग नाम से ख्यात हुआ। ( यहाँ शिव के स्वरूप का और उनके आविर्भाव से हर्षपूरित वातावरण का सुन्दर वर्णन है। तत्पश्चात् देवताओं द्वारा विस्तृत स्तुति )। तब एकलिंग ने देवताओं से कहा कि वे सब दार्षदी मूर्त्ति से उनके निकट रहें और मानवों को भुक्ति-मुक्ति दें। फिर कामधेनु से शिव ने कहा कि तुम स्मरण करके पाताल से मुझे यहाँ लाई हो अतः मेरे वचन से तुम पूरी पृथ्वी पर, विशेषतः जम्बूद्वीप में विचरण करो। मातृस्नेह से शिव ने धेनु की स्तुति की। ( यहाँ गो-सेवा की महिमा का विशद वर्णन है। )

सूत—वहाँ से धेनु अमरकण्टक गई, फिर ओङ्कार तीर्थ पहुँची। वहाँ से उज्जयिनी में महाकाल के निकट गई। (यहाँ ब्रह्मगिरि, त्र्यम्बक, सोमनाथ इत्यादि अनेक तीर्थों का उल्लेख है। ) अन्त में सात बार पूरी पृथ्वी पर विचरण करके वह आकाश में चली गई।

### नवम अध्याय

शिव ने देवताओं से कहा कि वे लोग विशेष रूप से मेदपाट में रहें और वैसे यथारुचि जम्बूद्वीप में कहीं भी रहें।

वायु—एकलिङ्ग होते हुए भी शिव लोककृपावश बहुलिङ्ग बने। सत्ययुग में इन्द्र द्वारा, त्रेतायुग में नन्दिनी धेनु द्वारा, द्वापर में तक्षक द्वारा और कलियुग में बाष्प-हारीत द्वारा वे आराधित हुए।

सूत—वृत्रासुर के अत्याचार से त्रस्त होकर देवताओं ने जाकर नारायण की स्तुति की। ( यहाँ दशावतार का सुन्दर वर्णन है, साथ ही अवतारों को असंख्य भी कहा है) स्तुति सुनकर विष्णु ने कहा कि वृत्रासुर जैसे कहे वैसे उससे सन्धि की जाय, फिर छल से उसका वध किया जाय।

देवताओं ने वैसा ही किया। वृत्रासुर के साथ सख्य साध कर इन्द्र ने अवसर पाकर समुद्रफेन द्वारा उसका वध कर दिया। ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होने के लिये इन्द्र ने बृहस्पति से जिज्ञामा की। बृहस्पति ने एकलिङ्ग की आराधना करने को कहा। इन्द्र ने नागह्लद तीर्थं में आकर पहले विन्ध्यवासा की स्तुति को। विन्ध्यवासा ने प्रसन्न होकर वर माँगने की अनुज्ञा दी। इन्द्र द्वारा ब्रह्महत्या-निवारण की प्रार्थना। देवी द्वारा एकलिङ्ग की आराधना का आदेश। इन्द्र ने वहीं रहकर उग्र तप किया और वज्र से वहाँ सरोवर खोदा। एकलिङ्ग ने प्रसन्न होकर इन्द्रसरस् को सर्वतीर्थ–फलप्रद कहा। इन्द्र पाप-मुक्त होकर स्वर्ग गये।

### दशम अध्याय

वायु—त्रेता में नन्दिनी ( वशिष्ठ की धेनु ) ने विश्वामित्र के भय से एकलिङ्ग की आराधना की। विश्वामित्र उसे सर्वकामदुघा जान कर पहले एक सहस्र गायों के बदले ले जाना चाहते थे, किन्तु वशिष्ठ सहमत नहीं हुए। तब विश्वामित्र अपहरण को उद्यत हुए। नन्दिनी रक्षार्थ एकलिङ्ग और देवी की शरण में पहुँची। वहाँ से अभय पाकर लौटी और विश्वामित्र की सेना को सींगों से छिन्न-भिन्न करती हुई पुनः वशिष्ठ के आश्रम में आ गई।

द्वापर में तक्षक ने पाण्डव राजा जनमेजय के सर्पसत्र से भयभीत होकर एकलिङ्ग की शरण ली। कुटिला में बड़ा-सा कुण्ड खोद कर वह उसमें 'त्राहि-त्राहि' करता हुआ और शिव की त्रिकाल आराधना करता हुआ रहने लगा, शिव ने उसे अपने सान्निध्य का वर दिया। तभी से वह कुण्ड नागह्लद कहलाने लगा।

पहले भवानी ने चण्ड और नन्दी को मेदपाट में मनुष्य रूप में जन्म लेने का शाप दिया था। कलियुग में वे दोनों ही हारीत और बाष्प के नाम से इधर-उधर विचरण कर रहे थे, भावी वश वे एकलिङ्ग के निकट पहुँच गये। वे दोनों क्रमशः सिद्ध-साधक अथवा गुरु-शिष्य के रूप में थे। हारीत मुनि ने घोर तप किया और बाष्प उनकी और शिव की सुश्रूषा करते रहे। इस प्रकार विन्ध्यवासा और महेश्वर की आराधना से विन्ध्यवासा प्रसन्न हुई। उसने हारीत से कहा कि शंकर की गद्य से स्तुति करो, मेरे प्रसाद से तुम्हारी वाणी गद्य-पद्या होगी। ( यहाँ हारीत द्वारा कृत स्तुति में पहले ६ पद्य, फिर लम्बा ललित गद्य है )।

स्तव से तुष्ट होकर शिव ने हारीत से कहा, 'वर माँगो'। हारीत ने तो

सशरीर शंकर के धाम में जाने का वर माँगा और बाष्प ने मेदपाट में अच्युत राज्य और चित्रकूट में स्थिति माँगी। एकलिंग ने दोनों को अभीष्ट वर दिये और बाष्प से कहा कि राष्ट्रसेना नाम को देवी उसकी रक्षा करेगी।

अन्त में सूत ने इस आख्यान के श्रवण की महिमा कही है।

## एकादश अध्याय

एकलिंग के समीपस्थ तीर्थों के वर्णन के लिये नारद ने वायु से प्रार्थना की। वायु द्वारा विस्तृत वर्णन ( इसमें अधिकांश पुनरुक्त है। ) राष्ट्र-सेना को विन्ध्यवासा के शरीर से उत्पन्न बताया है। उसका कार्य मेदपाट का सब प्रकार से रक्षण है।

## द्वादश अध्याय

शौनक द्वारा सूत से एकलिङ्ग के समीपस्थ देवताओं तथा स्वयम्भू लिङ्गों के विषय में पुनः प्रश्न। सूत द्वारा उत्तर में अधिकांश पुनरुक्ति।

नारद का वायु से कलि में लोकाचार के सम्बन्ध में प्रश्न। उत्तर में वायु द्वारा कलि के शूद्र रूप का विस्तृत वर्णन। कलि के दोषों को सुन-कर नारद पूछते हैं कि फिर पृथ्वी को शेषनाग धारण कैसे करते हैं अर्थात् पृथ्वी की रक्षा कैसे होती है ? उत्तर में वायु कहते हैं कि गो, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलुब्ध और दानशील—ये सात पृथ्वी को धारण करते हैं। कलि में संकीर्तन की विशेष महिमा भी कही है। भारा-क्रान्ता पृथ्वी गोरूप धारण करके ब्रह्मा के पास त्राणार्थं गई तो ब्रह्मा ने कहा कि जो वेदविद् है अथवा वेदमार्गगामी है उसी का तुम वहन करो।

## त्रयोदश अध्याय

नारद वायु से प्रश्न करते हैं कि कलि में दुरात्मा लोगों पर एकलिङ्ग ने कैसे कृपा की। उत्तर में वायु ने कुछ सम्प्रदायों के नाम गिनाये हैं। इसमें कहीं कोई क्रम या योजना नहीं है। शिवपूजन की भी थोड़ी सी बात यहाँ कही है।

सूत हठात् ऋषिश्रृंग की कथा आरम्भ करते हैं। दशरथ द्वारा पुत्रकामना से ऋषिश्रृंग की खोज, वे मृग रूप से विचरण कर रहे थे। उन्हें लुब्ध करके अपने प्रासाद में लाकर दशरथ द्वारा यज्ञ का आयोजन, पुत्रप्राप्ति। ऋषिश्रृंग का एकलिङ्ग के समीप आगमन। इसी प्रकार पराशर, व्यास, शुक का नामोल्लेख और पराशर द्वारा एकलिङ्ग के

निकट वास का उल्लेख। तद्वत् लोमश द्वारा एकलिंगाश्रय और पुनः-पुनः एकलिंग के निकट स्नान, पितृतर्पण इत्यादि का माहात्म्य।

### चतुर्दश अध्याय

नारद द्वारा वैद्यनाथ, सोमनाथ, विश्वनाथ आदि ज्योतिर्लिङ्गों के विषय में प्रश्न। उत्तर में वायु द्वारा पहले सोमनाथ की कथा; दक्ष ने अपनी २७ पुत्रियाँ चन्द्रमा को दी थीं, किन्तु चन्द्रमा उनमें से केवल रोहिणी पर विशेष प्रीति रखता था, अतः दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दिया कि वह क्षयरोगी हो जाय। रोगमुक्ति के लिये चन्द्रमा ने सोमनाथ की स्तुति की। सोमनाथ द्वारा स्वामी नदी में स्नान का आदेश, चन्द्रमा की रोगमुक्ति और नक्षत्रमण्डल में गति। इसी प्रकार वैद्यनाथ, विश्वनाथ का संक्षिप्त वर्णन। ग्राम-ग्राम में शिवलिंगों की स्थिति की बात। नारद द्वारा स्वामी नदी के विषय में प्रश्न और वायु द्वारा उत्तर में महिष दैत्य की कथा। उसने देवताओं को जीत कर पृथ्वी पर मानवों को पीड़ित किया। सोमनाथ ने स्कन्द को उसके वध की आज्ञा दी। स्कन्द द्वारा उस पर विद्युत्प्रभा शक्ति का प्रयोग। शक्तिविद्ध महिष का पाताल मे प्रवेश। स्कन्द द्वारा उसका अनुसरण और शक्तिलेखा का कर्षण। उससे स्वामी नाम की सरस्वती ( अन्तर्जला नदी ) का उद्भव। साथ ही माहेन्द्री नदी का वर्णन।

### पञ्चदश अध्याय

शौनक का सूत से प्रश्न कि एकलिङ्ग से चलकर कामधेनु किस मार्ग से अमरकण्टक गई। उत्तर में सूत द्वारा अनेक स्थलों का वर्णन— यथा कुण्डेश्वर, गुहेश्वर, सोमनाथ, वैद्यनाथ, नीलकण्ठ, कापिलेश, विश्वनाथ, पातालेश्वर, अचलेश, रामेश्वर, इत्यादि। नदियों में गोमती, चन्द्रभागा इत्यादि।

### षोडश अध्याय

पिछले अध्याय का क्रम ही आगे बढ़ाया है। वायु कहते हैं कि वृत्र के वध के बाद इन्द्र सहित देवताओं ने बृहस्पति से पापमुक्ति का मार्ग पूछा और उसने मेदपाट के निकट कुरुमा नदो के पास जाकर गिरि के शृंग को दण्ड द्वारा भेदने के लिए कहा। धर्मराज द्वारा ऐसा करने पर पुण्यतोया सरस्वती प्रकट हुईं, जिन्हें ऋणहा और पापहा कहा गया। उसमें स्नान करके सब देव पापमुक्त और ऋणमुक्त होकर अपने-अपने

भवन को लौटे। वहाँ कामधेनु के पहुँचने पर ऋणमोचन नाम के शिव का प्रादुर्भाव हुआ।

नारद द्वारा गोद्वार सम्बन्धी प्रश्न। वायु का उत्तर। दण्डकारण्य में ब्रह्मगिरि, वहाँ गौतम आश्रम का वर्णन, और इस प्रसंग में वनस्पतियों की लम्बी नामावली। अहल्या के शापग्रस्त एवं शापमुक्त होने की कथा। शक्र का आत्मगर्हण। पुष्करतीर्थ में उसका आत्मशोधन, पुनः स्वर्ग मे स्थिति।

गौतम द्वारा सुपुष्टदेह मुनियों को तप की सलाह, मत्सरवश मुनियों ने मायामयी धेनु गौतम के शालिक्षेत्र में छोड़ दी, क्षेत्र की रक्षार्थ गौतम द्वारा कुशा-प्रहार करते ही धेनु तत्काल निष्प्राण हो गई। गौतम द्वारा पापमुक्ति के लिये घोर तप। शंकर प्रकट हुए, गौतम को पापमुक्त घोषित किया। गौतम द्वारा त्र्यम्बक पर्वत पर शिव की स्थिति और निकट ही गङ्गा के आनयन का अनुरोध। शिव की गौतमेश्वर के रूप में वहाँ स्थिति एवं गङ्गा का आविर्भाव।

## सप्तदश अध्याय

वायु पूर्वाध्याय की भाँति कुशावर्त, जनकाचल, गोद्वार आदि में शिवलिङ्ग स्थापना का वर्णन करते हैं। इसी प्रसंग में गौतमेश के माहात्म्य का वर्णन।

कर्मभूमि का वर्णन। कर्मफल का भागी मनुष्य एकाकी होता है। गौतमेश्वर से कामधेनु उज्जयिनी गई।

## अष्टादश अध्याय

वायु कामधेनु के मार्ग का आगे निरूपण करते हैं। चर्मण्वती नदी में स्नान करके वह उज्जयिनी में पहुँची। धर्म, तीर्थ, दानादि में भाव की मुख्य फलदायकता का निरूपण।

वायु द्वारा भगवान् वासुदेव के मुख से पाण्डवों को हिमाद्रि-गमन का आदेश। पाण्डवों के जाते ही कृष्ण ने द्वारावती में पृथ्वी का स्मरण किया, वह गोरूप में प्रकट होकर बोली कि प्रभो आप ने तो मुझे सर्वसहा बना दिया है। भगवान् ने कहा कि कलियुग में तुम्हारा भार बहुत बढ़ने वाला है। इस प्रसंग में सत्य आदि तीनों युगों के धर्म का विस्तृत वर्णन। भगवान् द्वारा पृथ्वी को आदेश कि कलि में जहाँ कहीं कोई एक-आध धार्मिक हो उसकी वह अवश्य रक्षा करे। कलियुग में पृथ्वी का भार

कम करने के लिये पार्वती के आदेश से ब्रह्मा आदि सभी देव पाषाण-मूर्तियों में अवतीर्ण हुए।

### एकोनविंश अध्याय

नारद द्वारा वायु से प्रश्न कि बाष्प ने शिव की कैसी पूजा की थी और बाष्प का वंश कैसा था।

वायु—मेदपाट में चित्रकूट के निकट आनन्दपुर में शिवशर्मा नामक एक वेदज्ञ ब्राह्मण था, जो एकलिंग का भक्त था। चैत्री यात्रा के समय ऋषि उसके घर आये। उनके साथ वह भी चैत्री यात्रा में एकलिंग के दर्शनार्थ गया। वहाँ वेदान्त में उसने मति लगाई और अपना धन पुत्रों में बाँट कर, अपना भाग रख कर तप करने लगा। अन्त में विधिपूर्वक संन्यास लेकर परमधाम चला गया, उसका पुत्र बाष्प पिता की अन्त्येष्टि करके वहीं रहने लगा। हारीत से उसे हंसरूप सनातन मन्त्र मिला हुआ था, उसका जप करता रहा। ( यहाँ तान्त्रिक विधि से मन्त्र का विस्तृत वर्णन है ) तत्पश्चात् पञ्चोपचार पूजा का वर्णन है। नैवेद्य के प्रसंग में पक्वान्नों की सूची, पानक सन्धानक आदि बनाने की विधि का वर्णन है।

### विंश अध्याय

वायु द्वारा अहोरात्र में षड् ऋतुओं का वर्णन। सदाशिव ने आविर्भूत होकर बाष्प और उसके गुरु हारीत से कहा कि बाष्प तो चित्र-कूट में जाये और हारीत स्वर्ग में। ( यहाँ नृपधर्म का वर्णन है )। वैखानस धर्म का आचरण करते हुए पुत्र को राज्य देकर वह नागह्रद में आथर्वणगुरु के पास आया और संन्यास की प्रार्थना करने लगा। गुरु ने थोड़ी परीक्षा लेकर उसे संन्यास दे दिया। ( संन्यास की वैदिकविधि का यत्किंचित् वर्णन )। बाष्प का पुत्र भोज पिता के संन्यास की बात सुनकर दौड़ा आया। बाष्प द्वारा उसे आश्वासन, फिर गुरुपूजन का आयोजन, इसी प्रसंग से गुरु-परम्परा का कीर्तन। सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, नकुलीश, गौरीश, अत्रीश, मित्रेश, कपिलाण्ड, सिद्धशासन, पिङ्गाक्ष, मनुष्य, पुष्पदन्त, शन्तनु, अगस्ति, दुर्वासा, कौशिक, जैगीश, कौण्डिन्य, भैरवाष्टक, ओंकार, विश्वनाथ, सोमेश्वर, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविन्द, शंकराचार्य। तत्पश्चात् शंकरा-चार्य के चार मठों एवं शिष्य-परम्परा का किंचित् उल्लेख है। आथर्वण आचार्य के कथनानुसार बाष्प का पुत्र भोज प्रतिवर्ष गुरु-पूजन करता रहा। दीर्घकाल तक राज्य करने के बाद अन्त में योगमार्ग का आश्रय

लेकर एकलिंग में रहने लगा। वहीं पर उसने शरीर छोड़ा। उसके गुरु का नाम था वेदगर्भ मुनि।

### एकविंश अध्याय

नारद का भोज के पुत्र के विषय में प्रश्न। वायु का उत्तर कि उसका नाम सुषमाण था। उसने भी अन्त में स्वेच्छा से राज्यलक्ष्मी को छोड़कर संन्यास लिया और एकलिंग में लीन हुआ। ( यहाँ संन्यास की महिमा का थोड़ा-सा वर्णन है )। उसका पुत्र गोविन्द भी अतिधार्मिक था। उसे नारायण का अवतार कहा गया है। उसमें और एकलिंग में बहुत सख्य था। सात वर्ष की अवस्था में उसे एकलिंगजी ने स्वयं मन्त्र दिया। ( मन्त्र और ध्यान का विस्तृत वर्णन। ) पुत्र के मन्त्रलाभ से पिता को अपार हर्ष।

### द्वाविंश अध्याय

सुषमाण द्वारा अपने गुरु वेदगर्भ से पुत्र-सदृश मन्त्रलाभ की प्रार्थना। वेदगर्भ द्वारा जप और पूजाविधि का विस्तृत निरूपण।

### त्रयोविंश अध्याय

वेदगर्भ का जप-पूजाविधि-निरूपण ही आगे बढ़ता है। शक्तियों का उल्लेख एवं तान्त्रिक पूजाविधि का ही यहाँ विस्तार है।

### चतुर्विंश अध्याय

यहाँ भी पूर्वाध्याय की भाँति शक्तियों का वर्णन और पूजाविधि का निरूपण है।

### पञ्चविंश अध्याय

इसमें आवरणार्चन का वर्णन एवं पूजाविधि का उपसंहार है।

### षड्विंश अध्याय

शौनक के प्रश्न करने पर सूत द्वारा गुरुरूपिणी पादुका का वर्णन। इसके पश्चात् राजवंश परम्परा का संक्षिप्त उल्लेख है। प्रत्येक राजा अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास ग्रहण करता रहा। सुषमाण, गोविन्द, आलु, विश्वनाथ, काल, शालिवाहन, नरवाह, कीर्तिवर्मा, नरवर्मा, कर्ण, सहस्राक्ष, श्रीपुञ्ज, कर्ण, चरणमल्ल, खङ्गार, क्षेत्रप, कर्ण, तेजसिंह, अमर, सुबाहु, रत्नसिंह, जयसिंह, लक्ष्मीसिंह, हम्मीर, क्षेत्रप, मोकल, कुम्भकर्ण। कुम्भकर्ण ने भी योगमार्ग से शरीर छोड़ा था ऐसा उल्लेख है। उसके बाद उसके पुत्र नीच संसर्ग से शूद्राचार-परायण हो गये।

इसी बीच म्लेच्छों ने आकर उत्पात आरम्भ किया। तब कुम्भकर्ण के पुत्रों ने हारीत के शिष्य से त्राणार्थ प्रार्थना की। उसने पार्वती और एकलिंग के यथाविधि पूजन का आदेश दिया। उन लोगों ने शूद्राचार से पूजा की। उनका नेता था राजमल्ल। एकलिंग ने उसी पूजा का ग्रहण करके राष्ट्रसेना को बुलाकर उन लोगों की सहायता का आदेश दिया। राष्ट्रसेना ने उन्हें पुनः चित्रकूट में स्थापित किया। तब से वे शूद्राचार-परायण होकर क्षात्राभास के रूप में राज्य करते रहे। जब-जब उनकी शिवभक्ति छूट जाती तब-तब म्लेच्छाधीन हो जाते।

शौनक का सूत से प्रश्न कि हारीत के उस शिष्य का क्या नाम था? सूत का उत्तर कि उसे विद्याचार्य कहते थे। वह परम तपस्वी और सवशास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञ था। उसके तेज से नागह्रद क्षेत्र सुशोभित था। उसने भी अन्त में संन्यास लिया। उसके शिष्य-प्रशिष्य उस मठ में चतुर्दश विद्याओं का प्रवर्तन करते रहे और श्रौत-स्मात आचार का पालन करते रहे। इसी बीच कलि का आविर्भाव हो गया। राज्य में अव्यवस्था हो गयी। गुरु खिन्न होकर काशी चले गये। म्लेच्छों के साथ युद्ध होता रहा। ऐसे ही कुछ काल बीतने पर कोई धर्मनिष्ठ प्रतापवान् राजा होगा जो अपने पूर्वजों के राज्य का पालन करेगा और एकलिंग का जीर्णोद्धार करेगा, रुष्ट गुरु के शिष्यों को बुला कर यथापूर्व पूजा की प्रतिष्ठा करेगा।

### सप्तविंश अध्याय

नारद का अनुरोध कि अष्ट तीर्थों का और चैत्रयात्रा का विवरण सुनाया जाय। वायु द्वारा एकलिंग के समीप सर्वतीर्थों की प्रतिष्ठा का वणन और पूजाविधि का पुनः निरूपण।

### अष्टाविंश अध्याय

अष्टतीर्थों के स्नान-क्रम के विषय में नारद का प्रश्न और वायु का उत्तर।

### एकोनत्रिंश अध्याय

राष्टश्येनी ( राष्ट्रसेना ) की पूजा के सम्बन्ध में नारद का प्रश्न और वायु का उत्तर। अन्त में पुनः वेदगर्भ का सुषमाण के प्रति वचन।

### त्रिंश अध्याय

सुषमाण का विघ्ननाश के सम्बन्ध में प्रश्न, वेदगर्भ द्वारा उत्तर।

## एकत्रिंश अध्याय

सुषमाण द्वारा विन्ध्यवासिनी की पूजा के विषय में प्रश्न और वेदगर्भ का विस्तृत उत्तर।

## द्वात्रिंश अध्याय

शौनक का प्रश्न कि कुम्भकर्ण के वंश में विरुद्धधर्मा और क्रूरात्मा कौन-सा राजा हुआ था ? सूत का उत्तर कि उसका नाम योग-(भोज-) राज था। उसके पुत्र रणवीर ने पुनः एकलिंग की प्रतिवर्ष यात्रा (उत्सव) आरम्भ की और धर्मात्मा बना। शौनक का उत्सव के विषय में प्रश्न और सूत का उत्तर। उपसंहार।

## २. श्रीमदेकलिंगमाहात्म्य ( काव्यमय ) का विषयानुक्रम

प्रारम्भ में आठ पद्य कामदेवस्तुति के हैं, फिर बाष्पवंशवर्णन की प्रतिज्ञा तीन श्लोकों में, तदनन्तर पौराणिक एकलिङ्गमाहात्म्य ( चतुर्थाध्याय ) की विषयवस्तु आर्याछन्द में कही है। फिर उसी में से अष्टम, नवम और दशम अध्याय प्रायः अविकल रूप से उद्धृत किये हैं, छन्द नहीं बदले हैं, यत्किंचित् पाठभेद अवश्य है। इसके बाद "पुरातन कवियों" के वचन उद्धृत करते हुए गुहदत्त के पूर्वजों का वर्णन ( श्लोक १–६ ) आरम्भ होता है।

**वंश वर्णन**—गुहदत्त ( श्लोक ६–१० ), बाष्प ( श्लोक ११–२२ ) ( श्लोक २३–४४ हमारे परिशिष्ट में से छूट गये हैं, कृपया शुद्धिपत्र देखें। ) कालभोज, खुम्माण, गोविन्द, आलुराउल, विश्वनाथ, शक्तिकुमार, शालिवाहन, नरवाहन, कीर्त्तिवर्मा, नरवर्मा, करणंसिंह, भादूक, गातडि, हंस ( योगिराज ), वैरड, श्रीपुञ्ज, कण, जितसिंह, तेजसिंह ( २३–४४ ), समरसिंह ( ४५–६० ), रत्नसिंह ( ६१ ), अन्यशाखा ( ६२–६५ ), बबरू, नागपाल, पूर्णपाल, फेखर, भुवनसिंह, भीमसिंह, जयसिंह ( ६६–६८ ), लक्ष्म्यसिंह ( ६८–७४ ), रसीराण ( ७५ ), अरिसिंह ( ७६–७८ ), हम्मीर ( ७९–८७ ), क्षेत्रसिंह ( ८८–१०३ ), मोकल ( १०४–१२१ )।

**कुम्भास्तुति**—श्लो० १–६७।

**पञ्चायतनस्तुति**—गेयप्रबन्धनिर्माण की प्रतिज्ञा (१–२), गणेशस्तुति ( १–१३ ), सूर्यस्तुति ( १–९ ), नारायणस्तुति ( १–११ ), शिवस्तुति ( १–९ ), चण्डिकास्तुति ( १–१२ ), प्रकीर्ण पद्य ( १–५ ), एकलिङ्ग सम्बन्धी प्राच्य पद्य ( १–५ ), प्रकीर्ण पद्य ( ६–१३ ), विभिन्न छन्दों के उदाहरण ( १–३५ ), कुम्भस्तुति ( ३६–४१ )।

एकलिङ्गनमस्कार ( गद्य )।

अन्त में कुछ प्रसिद्ध प्राचीन पद्य।

# सहायक ग्रन्थ-सूची

## (क) संस्कृत

**गणकारिका**—गायकवाड़ प्राच्य विद्या ग्रन्थमाला सं० २५, सन् ११२०, सम्पादक—सी० डी० दलाल।

**चिदम्बर-माहात्म्य**—सम्पादक एवं प्रकाशक श्री सोमशेखर दीक्षितर, चिदम्बरम् १९७१।

**नीलमतपुराण**—(दो खण्ड)—सम्पादिका डॉ वेदकुमारी—प्रकाशक, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति, साहित्य एकेडेमी, श्रीनगर-जम्मू। प्रथम खण्ड—१९६८, द्वितीय खण्उ—१९७३, मूल ग्रन्थ अग्रंजो अनुवाद सहित द्वितीय खण्ड में है और प्रथम खण्ड में अंग्रेजी में ग्रन्थ का सांस्कृतिक और साहित्यिक अध्ययन है।

**पशुपतिहृदयम्**—श्री ( महर्षि ) दैवरात, प्रकाशक—नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति, नेपाल, सं० २००२।

**रसिकप्रिया**—कुम्भाकृत गीतगोविन्द की टीका, निर्णयसागर प्रेस।

**लिङ्गपुराण**—श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, सं० १९८१।

**वायुपुराण**—श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, सन् १९३३।

**शारदातिलकम्**—कश्मीर संस्कृत ग्रन्थमाला।

**संगीतराज** (प्रथम खण्ड)—महाराणा कुम्भा, सम्पादिका डॉ० प्रेमलता शर्मा, काशो हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६३।

## (ख) हिन्दी

उपाध्याय, डॉ० नगेन्द्रनाथ : गोरक्षनाथ (नाथ संप्रदाय के परिप्रेक्ष्य में)—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसो, १९७६।

ओझा, महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द : उदयपुर का इतिहास (दो जिल्द) प्रथम जिल्द सं० १९८५ और द्वितीय१९८८ में प्रकाशित।

महातीर्थं कायावरोहण, (भगवान् ब्रह्मेश्वर प्राण-प्रतिष्ठा स्मृतिग्रन्थ) प्रकाशक श्री कायावरोहण तीर्थं महोत्सव समिति, कायावराहण, तालुका डमोह, जिला बड़ोदा (गुजरात) सन् १९७४।

## (ग) अंग्रेजी

Collingwood, R, G.: The Idea of History, Oxford University Press, reprintd 1963.

Dey, Nundo Lal : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieaval India; Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, 3rd edition 1971.

Pargiter, F. E. : Ancient Indian Historical Tradition, Motilal Banarasidass (reprint, 1972)

Pathak, V. S. : History of Saiva Cults In Northern India From Inscriptions (700 A. D. to 1200 A. D.), 1960.

Roychowdhary, H. C. : Political History of Ancient India, University of Calcutta, 1972, seventh edition.

Sarda Harbilas : Maharana Kumbha, Vedic Yantralaya, Ajmer 1932, second edition.

Sankaracharya of Kanchi Kamakoti, Swami Jayendra Saraswati : Heritage of Bharata Varsha & Sanatana Dharma, Oriental Cultural Education Society, No. 20 First Canal Cross Road, Gandhi Nagar, Madras 20, 1973.

# भूमिका

## (१) एकलिङ्गमाहात्म्य के दो रूप : पौराणिक और काव्यमय

स्थलपुराण अथवा स्थलमाहात्म्य की परम्परा विराट् पौराणिक प्रवाह की एक उपधारा रही है। काश्मीर प्रदेश से सम्बद्ध नीलमत पुराण[1], चिदम्बरम् के नटराजमन्दिर का स्थलपुराण चिदम्बरमाहात्म्यम् और कायावरोहणतीर्थ[2] का कारवणमाहात्म्यम् इस उपधारा की प्रकाशित रचनायें हैं। इस प्रकार का विपुल साहित्य अभी अप्रकाशित ही है। एकलिङ्गमाहात्म्य इसी उपपरम्परा का अन्यतम अङ्ग है। इस का उल्लेख निम्नलिखित आधुनिक ग्रन्थों में प्रमुख रूप से मिलता है।

(१) म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'उदयपुर का इतिहास।' इस ग्रन्थ की दूसरी जिल्द में परिशिष्ट ५ के अन्तर्गत सहायक ग्रन्थों की सूची में एक लिङ्गपुराण तथा एकलिङ्गमाहात्म्य—इस प्रकार दो नामों का पृथक् उल्लेख है। वास्तव में एकलिङ्गमाहात्म्य के नाम से ही दो भिन्न पाठ मिलते हैं, एक पौराणिक और दूसरा काव्यमय। इन दोनों का सम्पादन हम ने किया है और इन का परिचय भी यथास्थान दिया जाएगा। ओझाजी ने प्रथम को एकलिङ्गपुराण और द्वितीय को एकलिङ्गमाहात्म्य कहा है। द्वितीय को उन्होंने कुम्भा के समय रचित कहा है। (वही, प्रथम जिल्द पृ० ६)

---

१. नीलमतपुराण की सम्पादिका डॉ० वेदकुमारी ने उसे स्थलमाहात्म्य नहीं माना है (नी० म० पु० खण्ड १, पृ० २–४) किन्तु पुराण पद पर प्रतिष्ठित किया है। फिर भी हम ने यहाँ इस का उल्लेख इसी लिये किया है कि इस में काश्मीर प्रदेश सम्बन्धी विवरण है अर्थात् कोई प्रदेश या स्थलविशेष जिन पौराणिक कृतियों का केन्द्र होता है, उनमें इसकी भी गणना उचित ही है।

२. कायावरोहणतीर्थ गुजरात में गायकवाड़ के भूतपूर्व राज्यक्षेत्र में बड़ोदा से १५ मील दक्षिण और मियाँगाँव से ८ मील उत्तरपूर्व कारावन के नाम से आज परिचित है। आज उसकी महिमा के पुनरुद्धार के कुछ प्रयत्न हो रहे हैं। द्रष्टव्य—'महातीर्थ कायावरोहण'।

(२) हरविलास शारदा कृत अंग्रेजी पुस्तक 'महाराणा कुम्भा' में सप्तम परिशिष्ट के रूप में काव्यमय एकलिङ्गमाहात्म्य मे से कुम्भा-सम्बन्धी ६ पद्य दिये गये हैं। इस एकलिङ्गमाहात्म्य को महाराणा कुम्भा के समय प्रणीत बताया गया है। ए० लिं० मा० के इन दोनों रूपों का विवेचन काल, विषय, भाषा और शैली एवं सम्पादन की दृष्टि से नीचे प्रस्तुत है।

(क) काल—

पौराणिक ए० लिं० मा० की उत्तरसीमा (Upper limit) महाराणा कुम्भा के राज्यकाल अर्थात् १५वो शताब्दी ई० सरलता से निर्धारित की जा सकती है। षड्विंश अध्याय में राजवंश का जो वर्णन है, वह कुम्भ-कर्ण (कुम्भा) और उसके पुत्रों तक हो चलता है। इसलिये यह निश्चित है कि कुम्भा की मृत्यु के कुछ काल पश्चात् ही इस का वह मूलपाठ स्थिर हो गया होगा जो आज हमें उपलब्ध हैं। किन्तु इस की पूर्व सीमा (Lower limit) निर्धारित करना उतना सरल नहीं है। यदि यह माना जाय कि एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही काल में इस की रचना हुई होगी, तब तो जिसे हम उत्तर सीमा कह रहे हैं, वही काल-निर्धारण का एकमात्र आधार हो सकता है। पूर्व सोमा पर विचार करने की प्रेरणा केवल इस कारण होती है कि पौराणिक परम्परा में किसी मूलपाठ में समय-समय पर परिवर्धन होते रहने की संभावना का सवथा निराकरण नहीं किया जा सकता। यदि यह मानकर चलें कि राजवंश-सम्बन्धी विवरण में समय-समय पर परिवर्धन होते रहे होंगे तो बात कुछ बनती नहीं है। षड्विंश अध्याय में सभो राजाओं का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में है। यदि भिन्न-भिन्न राजाओं के आश्रित कवि अपने-अपने आश्रयदाताओं का विवरण जोड़ते तो प्रत्येक बार पर्याप्त विस्तृत विवरण जोड़ा गया होता। वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि षड्विंश अध्याय का एक ही व्यक्ति द्वारा एक हो काल में प्रणयन हुआ होगा। यदि इस ग्रन्थ के रचनाकाल को हम दीर्घ अवधि में देखना चाहें, तब यह मानना होगा कि राजवंश वाला अध्याय तो कुम्भा की मृत्यु के कुछ ही वर्षों के भीतर रचा गया होगा, भले ही पौराणिक और पूजापद्धति सम्बन्धी विवरण पहले से परम्परा-प्राप्त हो। ऐसा मानने के पक्ष में एक बहुत बड़ा तर्क यह है कि काव्यमय ए० लिं० मा० में पौराणिक ए० लिं० मा० का चतुर्थ अध्याय भिन्न छन्द (आर्या) में एवं अष्टम, नवम, दशम

अध्याय यत्किञ्चित् पाठभेद से समाविष्ट हैं। यह संकलन कुम्भा के काल में हुआ था यह हम अभी आगे चलकर देखेंगे। अतः पौराणिक ए० लिं० मा० उस से अधिक प्राचोन होना चाहिये। फिर भी मध्यम मार्ग यही है कि इसके वर्तमान रूप को कुम्भा के ठीक बाद बाद स्थिर हुआ माना जाय और उसके कितना समय पूव इस के कौन से अंश उपलब्ध थे, इस प्रश्न को अनिर्णीत छोड़ दिया जाय। संभव है भविष्य में कभी अन्य प्रमाण उपलब्ध होने पर इस का निर्णय हो सके।

काव्यमय ए० लिं० मा० के काल-निर्णय में कोई समस्या नहीं है। इस का अधिकांश तो विभिन्न शिलालेखों में से पुनरुद्धृत है, और महाराणा कुम्भा इस के केन्द्र में हैं यह स्पष्ट है। अतः इस का संकलन निश्चित रूप से कुम्भाकालीन[1] है। कह्न व्यास नाम के किसी कुम्भाश्रित कवि का नाम इस में पञ्चायतन स्तुति के रचयिता के रूप में आया है। (द्रष्टव्य पृ० १९८ श्लो० १२) कवि का अपने को 'अर्थदास' कहना राजसेवा के प्रति उसके भाव का सूचक है।

**(ख) विषय—**

पौराणिक ए० लिं० मा० पुराण, जनश्रुति, इतिहास, और तन्त्र का सम्मिलित रूप है। इसका सम्बन्ध वायुपुराण से जोड़ा गया है। प्रत्येक पुष्पिका में "इति श्रीवायुपुराणे मदपाटीये"—इस प्रकार उल्लेख मिलता है। वायुपुराण से यह सम्बन्ध-स्थापन कुछ आश्चर्य-जनक है क्योंकि तीर्थ-माहात्म्य से स्कन्दपुराण का सीधा सम्बन्ध होने के कारण उसी के साथ इस प्रकार के स्थलपुराणों का सम्बन्ध-स्थापन अधिक स्वाभाविक लगता है। चिदम्बर-माहात्म्यम् में वैसा ही किया गया है। किन्तु कारवण-माहात्म्य का सम्बन्ध कहीं शिवपुराण से और कहीं वायुपुराण से जोड़ा गया है (द्रष्टव्य चतुर्थ परिशिष्ट)।

नीलमतपुराण को महाभारतका ही परिशिष्ट कहा गया है।[1] इससे

---

१. महाराणा कुम्भा १४३३ ई० में राज्यारूढ़ हुए और १४६८ तक प्रायः ३३ वर्षों तक उन्होंने राज्य किया।

१. इत्येवमुक्तं जनमजयस्य व्यासस्य शिष्येण महाव्रतेन।
क्षिप्तं न यद् ग्रन्थगुरुत्वभीत्या समग्रशास्त्रैः खलु भारते वै ॥१४५२॥
सर्वत्र नैतद् विषयोपयोग्यं तदा न चक्रे भगवान् महात्मा।
अतीव हृद्ये वहुविस्तरेऽपि जनप्रिये भारतपूर्णचन्द्रे ॥१४५३॥
(नीलमतपुराणम्)

स्पष्ट है कि स्थल-माहात्म्य या पुराण केवल स्कन्दपुराण से ही सम्बद्ध रहे हों ऐसी बात नहीं है।

वायुपुराणके मूलवक्ता लोमहर्षण सूत ही हैं; वायु तो उसके अवान्तर (द्वितीय) वक्ता हैं। क्योंकि आरम्भ में ही सूत ने कहा है—

पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैर्महात्मभिः॥

प्रत्येक पुष्पिका में—"इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते"—ऐसा उल्लेख है। ए० लिं० मा० के मूलवक्ता वायु हैं, क्योंकि नारद के प्रश्न का उत्तर वे ही देते हैं और अवान्तर (द्वितीय) वक्ता सूत हैं जो शौनक के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। वायुपुराण में ११, १४–१५ संख्यक अध्यायों में पाशुपत योग का वर्णन है, २३ वें अध्याय में महेश्वरावतार योग २७ वें में महादेवतनुवर्णन (नीललोहित, रुद्र, भव, शिव, पशुपति, ईश, भीम, महादेव ऐसे अष्टतनु) हैं, ४१ वें अध्याय में कैलासवर्णन, ५४ वें में नील-कण्ठस्तव, और ५५ वें में लिङ्गोद्भवस्तव—इतना विवरण शिव-सम्बन्धी है। वायु को प्रधान वक्ता मानना और शिव-परक विवरण—ये दो लक्षण ए० लिं० मा० की वायुपुराण से कुछ निकटता के सूचक माने जा सकते हैं।

मेवाड़ के इतिहास-प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजकुलके अधिष्ठाता देव एकलिङ्ग का यह स्थलपुराण या माहात्म्य है—यह बात इसके नाम से ही स्पष्ट है।[1] मेवाड़ के शासक दीवान कहलाते थे और राजा एकलिङ्ग-जी को ही माना जाता था। एकलिङ्ग का मन्दिर उदयपुर से १३ मील उत्तर दो पहाड़ियों के बीच स्थित है। गाँव का नाम कैलाशपुरी है। मन्दिर के चारों ओर ऊँची प्राचीर या कोट है। जनश्रुति है कि इस मन्दिर को बप्पा रावल ने बनवाया था और महाराणा मोकल (कुम्भा के पिता) ने इसका जीर्णोद्धार कराया था। राणा रायमल (सन् १४७३ से १५०९ ई०) ने नये सिरे से वर्तमान मन्दिर का निर्माण कराया। चौमुखी मूर्त्ति की प्रतिष्ठा भी राणा रायमल ने की थी। मन्दिर के दक्षिणी द्वार के सामने एक ताक में महाराणा रायमल की १०० श्लोकों की प्रशस्ति है जो मेवाड़ के इतिहास और मन्दिर के

---

१. यहाँ से प्रस्तुत अनुच्छेद के अन्त तक की जानकारी का आधार ओझाजी का उदयपुर का इतिहास पृ० ३२ है।

वृत्तान्त के लिये महत्त्व की है। मन्दिर के अहाते में कई छोटे-बड़े मन्दिर हैं, जिनमें से एक महाराणा कुम्भा का बनाया विष्णुमन्दिर है, जिसे आजकल लोग मीराबाई का मन्दिर कहते हैं।

ए० लिं० मा० का अध्यायानुसार कथासंक्षेप हम पहले ही दे चुके हैं। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। इतना ही कहना पर्याप्त है कि राजवंश-वर्णन तो ए० लिं० मा० के केवल दो अध्यायों (२५–२६) में है। ३१ वें अध्याय की पुष्पिका में उस अध्याय को 'बाष्पान्वय' नाम अवश्य दिया गया है, किन्तु वास्तव में उसमें बाष्पवंश की कोई चर्चा नहीं है। पूरे ग्रन्थ की विषयवस्तु को पाँच खण्डों में बाँटा जा सकता है—

(१) एकलिङ्ग के प्राकट्य की पौराणिक कथा—प्रथम नौ अध्याय।

(२) अन्य क्षेत्रों का माहात्म्य वर्णन—१३ वें से १८ वें अध्याय तक लोमश आश्रम, सोमनाथ, माहेन्द्री, क्षीरेश्वर, गौतम, गौतमेश्वर, महाकाल,—इन क्षेत्रों का माहात्म्य वर्णित है।

(३) बाष्प (बप्पा) की मन्त्रसाधना ओर वंशवर्णन (अ० १९–२१, २५–२६)। विस्तृत वंशवर्णन २५–२६ वें अध्याय में ही है, २०, २१ में तो केवल बाप्प आर उसके पुत्र की साधना का ही वर्णन है।

(४) पूजापद्धति-वर्णन—२४, २९, ३०, ३१ अध्याय।

(५) प्रकीर्ण विषय—१०–१२, २२, २३, २७, २८, ३२ अध्याय में तीर्थयात्रा-फल, राष्ट्रश्येना-प्रादुर्भाव, कलि-स्वरूप, प्रातःकृत्यादि, मन्त्राराधन, श्रीनारायण-प्रादुर्भाव, तीर्थक्रम, यात्राविधि-महोत्सव—क्रमशः ये विषय हैं।

एकलिङ्ग एवं अन्य क्षेत्रों के प्राकटच और माहात्म्य के प्रसङ्ग में पुराण ओर जनश्रुति का आधार स्पष्ट है। बप्पा-विषयक विवरण में उसकी साधना के प्रसङ्ग में पुराण और तन्त्र एवं वंशवर्णन में इतिहास उपजीव्य हैं, पूजापद्धति में तन्त्र-परम्परा विकीर्ण है, और अन्त में प्रकीर्ण विषयों में पुनः पुराण और जनश्रुति के दर्शन होते हैं।

काव्यमय ए० लिं० मा० में मुख्य रूप से विशुद्ध ऐतिहासिक वर्णन है, जिसमें कवि (अथवा कवियों) की राजभक्ति के कारण अतिशयोक्ति स्वाभाविक रूप से विद्यमान है, किन्तु इसके अतिरिक्त पञ्चदेव-स्तुति और विभिन्न छन्दोजातियों में शिवस्तुति भी प्राप्त है। स्तुतियों में सर्वत्र कुम्भा की मुद्रा है।

**(ग) भाषा, शैली—**

पौराणिक ए० लिं० मा० में पुराण की प्रश्नोत्तर-शैली अर्थात् मुख्य एवं अवान्तर वक्ता-श्रोताओं की शृंखला का परम्परागत रूप मिलता है। इसमें भाषा और शैली की दृष्टि से दो सर्वथा भिन्न स्तर दिखाई देते हैं। एक स्तर में भाषा अत्यन्त सामान्य और कुछ स्थलों पर अशुद्ध है। स्तुतियों को छोड़कर ग्रन्थ में सर्वत्र प्रायः इसी स्तर की भाषा मिलती है। स्तुतियों की भाषा परिमार्जित, शुद्ध और ललित है। ऐसा लगता है कि प्रणेता ने स्तुतियाँ कहीं अन्यत्र से उद्धृत कर ली हैं, अन्यथा एक ही व्यक्ति की भाषा में इतना अधिक स्तरभेद नहीं हो सकता। पूरे ग्रन्थ में प्राप्त स्तुतियों की सूची यहाँ प्रासंगिक होगी।

| | स्तोता | स्तुत | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | देवगण | एकलिङ्ग | १३–१५ |
| २. | देवगण | नारायण | १९–२१ |
| ३. | इन्द्र | विन्ध्यवासा | २३ |
| ४. | हारीत | एकलिङ्ग | २७–३० |
| ५. | चन्द्रमा | सोमनाथ | ५०–५१ |

इन स्तुतियों में से हारीत की गद्य-स्तुति की भाषा और शैली विशेष लालित्यपूर्ण है। अन्य सब स्तुतियाँ पद्यमय हैं। देवगण द्वारा की गई एकलिङ्ग की स्तुति में उपनिषत् की "यन्मनसा न मनुते, येनाहुर्मनो मतम्" ( केन० १.४–८ ) की विरोधाभास वाली शैली की सुन्दर प्रतिकृति है। यथाः—

सर्वस्यादिस्त्वं न कोऽपि त्वदादि-
रीशो नेशस्त्वद्दतेऽन्योऽस्ति भूयः ॥२३॥
त्वं वै वन्द्यो नो तवैवास्ति वन्द्य
आराध्यस्त्वं न त्वदाराधनीयः ॥२४॥
आधारस्त्वं न त्वदाधारताऽस्ति
विश्वं रूपं नैव रूपं तवास्ति ॥३०॥ इत्यादि ॥

स्तुतियों के अतिरिक्त प्रायः सर्वत्र भाषा दुर्बल और कहीं-कहीं अशुद्ध भी है। सभी पुष्पिकाओं में "श्री एकलिङ्गमाहात्म्ये" ऐसा प्रयोग

है जिसे हम ने "श्रीमदेक०" के रूप में शुद्ध किया है। 'वाच्य' की अशुद्धि का एक उदाहरण देखें—

गत्वा सा पूर्वविधिना स्मृतो देवो वृषध्वजः ॥५७॥ (पृ० १७)

पाणिनि के 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) का व्यतिक्रम—

एवं मत्वा तु सा देवी प्रादुर्भूत्वा वचोऽब्रवीत् ॥३४॥ (पृ० २७)

विभक्ति एवं प्रत्यय के प्रयोग-दोष का एक उदाहरण—

'सर्वान् कामान् पूरयध्वं निजभक्तान् प्रसन्नतः' ॥१०८॥ (पृ०१६६)

स्तुतियों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग है। क्वचित् अपवाद भी हैं, यथा पृ० १६ पर पद्य ५२–५४ उपजाति में हैं। स्तुतियों में सवत्र उपजाति छन्द है। केवल मङ्गलाचरण के दो पद्य आर्या मे हैं।

काव्यमय ए० लिं० मा० में छन्दों की विविधता, शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों की बहुलता, कल्पना की उड़ान इत्यादि उस को भाषा और शैली को पौराणिक ए० लिं० मा० से सवथा भिन्न बना देते हैं। छन्दों में आर्या, उपजाति, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा इत्यादि का प्रयोग है। छन्दोजातियों के नाम सहित उदाहरण जिस लघुखण्ड में प्रस्तुत किये गये हैं वहाँ एक अक्षर से ले कर छब्बीस अक्षर तक की सभी छन्दोजातियों और मालावृत्त का भी ग्रहण हुआ है।

| पाद की अक्षर सं० | जाति | छन्द |
|---|---|---|
| १ | उक्ता | श्री |
| २ | अत्युक्ता | स्त्री |
| ३ | मध्या | नारी |
| ४ | प्रतिष्ठा | कन्या |
| ५ | अतिप्रतिष्ठा | विद्युद्भ्रान्ता |
| ६ | गायत्री | शशिवदना |
| ७ | उष्णिक् | मदलखा |
| ८ | अनुष्टुप् | चित्रपदा |
| ९ | बृहती | भुजगशशिभृता |
| १० | पक्ति | चम्पकमाला |
| ११ | त्रिष्टुप् | सुमुखी |

| | | |
|---|---|---|
| १२ | जगती | मौक्तिकदाम |
| १३ | अतिजगती | उर्वशी |
| १४ | शक्वरी | उपचित्र |
| १५ | अतिशक्वरी | चामर |
| १६ | अष्टि | पञ्चचामर |
| १७ | अत्यष्टि | शिखरिणी |
| १८ | धृति | ? यसजजरर |
| १९ | अतिधृति | शार्दूलविक्रीडित |
| २० | कृति | ? सजञजरसलग |
| २१ | प्रकृति | स्रग्धरा |
| २२ | आकृति | मदिरा |
| २३ | विकृति | शङ्ख |
| २४ | संकृति | घोटक अथवा दुर्मिल |
| २५ | अतिकृति | ? ननननससससग |
| २६ | उत्कृति | अपवाह |

२७ से ३० अक्षरों तक के मालावृत्त उदाहृत हैं।

पंचायतन-स्तुति में विभिन्न तालों का नामोल्लेख है जिससे प्रकट होता है कि वे रचनायें गेय मानी गई हैं, किन्तु सभी पद्य वार्णिक वृत्तों में बद्ध हैं, इसलिये ऐसा नहीं लगता कि ये 'प्रबन्ध' हों। प्रबन्धों में प्रायः वार्णिक वृत्तों का प्रयोग नहीं होता। तालों के विषय में यह उल्लेखनीय है कि निम्नलिखित नामों का ही प्रयोग हुआ है। यथा आदिताल, प्रति-मण्ठताल, यत्ति ताल, अद्भुत ताल, झम्पा ताल, मण्ठ ताल, त्रिपुट ताल, एकताली ताल। कुल मिला कर ५० पद्यों में पञ्चायतन स्तुति पूरी हुई है। इसीलिये इसे छन्दःपञ्चाशिका कहा गया है। अन्त में कुछ प्रसिद्ध प्रकीर्ण पद्य उद्धृत हैं।

राजवंशवर्णन और कुम्भ स्तुति में से कुछ विशिष्ट उदाहरण यहीं प्रासंगिक होंगे—

आकर्ण्य पन्नगीगीतं यस्य बाहुपराक्रमम्।
शिरश्चालनया शेषश्चक्रे कम्पं परं भुवः ।।५५।। (पृ–१७४)

भृगुपतिरिव दृप्तारातिसंहारकारी
सुरगुरुरिव शश्वन्नीतिमार्गानुसारी।
स्मर इव सुरतेषु प्रेयसाचित्तहारी
शिबरिव स बभूव त्रस्तसत्त्वोपकारी ।।५७।। (पृ० १७५)

मन्येऽभूत् सुरगौरगौः समभवत् कल्पद्रुमः कल्पना-
ऽतीतो रोहणपर्वतोऽपि सुधियां नो मानसं रोहति ।
चित्तस्याधिपतेर्जडाच्च जडतां धत्तेऽधिकां भूधवे
दानप्रोन्नतचारुपाणिकमले कर्णादयः के पुनः ॥८४॥
(पृ० १७७)

ऐश्वर्येण दिवस्पतिं, मृगपतिं शौर्येण, पाथः पतिं
गम्भीर्येण, वपुःश्रिया रतिपतिं, कीर्त्या त्रियामापतिम् ।
औदार्यातिशयेन कर्णनृपतिं, न्यायेन सीतापतिं,
चातुर्येण बृहस्पतिं, व्यजनयत् श्रीमोकलोर्वीपतिः ॥१०५॥
(पृ० १८०)

अङ्गाः सम्प्राप्तभङ्गाः स्मृतवनविटपाः कामरूपा विरूपाः,
बङ्गा गङ्गैकसङ्गा गतविरुदमदा जातसादा निषादाः ।
चीनाः सङ्ग्रामदीनाः स्खलदसिधनुषो भीतिशुष्कास्तुरुष्काः
भूमेः पृष्ठे गरिष्ठे स्फुरति महिमनि क्ष्मापतेर्मोकलस्य ॥
॥१२१॥ (पृ० १८२)

साधारा येन भूमिः प्रतिभटवसुधा राजजैत्रोग्रधाम्ना
दीनेषु स्वर्णधाराधरणिवितरणादेकधाराधरो यः ।
निर्धारा यस्य नानागुणगरिमगतेः कः सुधाराशिमौलि-
र्यत्खड्गस्योग्रधारामसहत समरे नैव धारापुरीन्द्रः ॥१५॥
(पृ० १८४)

कुम्भस्तुति के प्रसिद्ध पद्यों का उदाहरण देना हमने अनावश्यक समझा है ।

## (घ) सम्पादन—

पौराणिक ए० लिं० मा० का सम्पादन उदयपुर के भूतपूर्व महाराणा श्री भगवतसिंहजी के निजी संग्रहालय में सुरक्षित पाण्डुलिपि के आधार पर किया गया है । यह पाण्डुलिपि संवत् १९१५ में महाराणा श्री स्वरूप-सिंहजी के समय बनाई गई थी, ऐसा उसमें उल्लेख है । उसी संग्रहालय से एक परवर्त्ती हस्तलिखित प्रतिलिपि भी मिली थी ,किन्तु वह पूर्वोल्लिखित पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि-मात्र थी । इसलिये सम्पादन में उसकी कोई उपयोगिता नहीं जान पड़ी ।

उपर्युक्त पाण्डुलिपि काफ़ी स्पष्ट है । किसी पद अथवा पदांश के लिये

जहाँ हमने संशोधित पाठ सुझाया है वहाँ अपना पाठ ( ) में रखा है। जहाँ अपनी ओर से कोई पद या पदांश जोड़ा है वहाँ [ ] का प्रयोग किया है। सन्दिग्ध स्थलों पर अपनी ओर से (?) रखा है। एक बात यहाँ विशेष उल्लेखनीय है कि मन्त्रसाधना के प्रसङ्ग में कई स्थलों पर अपनी ओर से हमने प्रश्नचिह्न रखे हैं। इनमें से जिन स्थलों का स्पष्टीकरण भूमिका-लेखन से पूर्व हो गया, उन्हें शुद्धिपत्र में प्रश्नचिह्न हटा कर दिखा दिया गया है।

परिशिष्टों के सम्बन्ध में परिचयात्मक टिप्पणियों का यथास्थान समावेश भूमिका और परिशिष्टों में किया गया है।

ए० लिं० मा० के काव्यमय रूप का सम्पादन राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, शाखा उदयपुर (प्राचीन सरस्वतीभण्डार पुस्तकालय) में सुरक्षित हस्तलेख संख्या १४७७ की प्रतिलिपि के आधार पर किया गया हैं। इस प्रतिलिपि से पता चलता है कि मूल हस्तलेख काफ़ी भ्रष्ट और कहीं-कहीं खण्डित भी है। हमने यथासंभव पाठ-संशोधन का यत्न किया है। जहाँ तक शिलालेखों (प्रशस्तियों) से पाठ मिलाने का प्रश्न है, हमारा प्रयत्न केवल हरविलास शारदा की पुस्तक 'महाराणा कुम्भा' के परिशिष्टों में प्रकाशित प्रशस्तियों तक ही सीमित रहा है। यह उल्लेखनीय है कि हमारे संशोधित पाठ अनेक स्थलों पर उक्त पुस्तक में प्रकाशित पाठों की अपेक्षा समीचीन हैं। कुछ पद्य 'संगीतराज' और गीतगोबिन्द की कुम्भकृत टीका 'रसिकप्रिया' में भी प्राप्त हैं, उनका हमने सन्दर्भ दिया है। ऐसा लगता है कि राजवंश-वर्णन और कुम्भस्तुति के प्रायः सभी पद्य किसी न किसी शिलालेख में प्राप्त होंगे[1], किन्तु हमने सभी पद्यों का मूल स्रोत खोजने का प्रयत्न नहीं किया है, क्योंकि ए० लिं० मा० का पौराणिक रूप ही हमारे अध्ययन का मुख्य विषय है। काव्यमय रूप को तो हमने परिशिष्ट के रूप में ही देना उचित समझा है, क्योंकि वास्तव में वह एकलिङ्गमन्दिर का 'माहात्म्य' है ही नहीं, वह तो उक्त मन्दिर से सम्बद्ध राजाओं के वंश-वर्णन, कुम्भस्तुति, पञ्चायतन स्तुति और छन्दोजाति-निरूपण—इस प्रकार अनेक प्रकीर्ण विषयों का समुच्चयमात्र है। इसे एकलिङ्गमाहात्म्य नाम देने का औचित्य भी सन्दिग्ध है। इसके आरम्भ में ८ पद्य कामदेव स्तुतिपरक हैं, जो 'कामराजरतिसार' नामक

१. बीच बीच में 'यदुक्तं पुरातनैः कविभिः' ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे लगता है कि यह मौलिक रचना नहीं, संकलन मात्र है।

लघुग्रन्थ के आरम्भ में प्राप्त हैं। इसकी प्रतिलिपि श्री अगरचन्द नाहटा से हमें प्राप्त हुई है। इसे महाराणा कुम्भा-रचित बताया जाता है। कुम्भा की मुद्रा इसमें अनेक स्थलों पर प्राप्त है। इसके बाद पौराणिक ए० लिं० मा० के चतुर्थाध्याय की विषय वस्तु आर्याछन्द में और अष्टम, नवम एवं दशम अध्यायों का पाठ यत्किञ्चित् भेद से उद्धृत है। तदनन्तर वंशवर्णन आरम्भ होता है। स्पष्ट है कि यह कुम्भा के काल में प्रस्तुत संकलन है।

ए० लिं० मा० के दोनों पाठ 'वीरविनोद'[1] नाम के विराट् इतिहास ग्रन्थ में मुद्रित हुए थे। किन्तु वह ग्रन्थ अप्रकाशित ही रह गया। अतः प्रस्तुत प्रकाशन सर्वप्रथम है। पाठसंशोधन के लिए हमें 'वीरविनोद' उपलब्ध नहीं हो सका।

## २. पुराण परम्परा और इतिहास की पाश्चात्य धारणा

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'[2]—इस प्रसिद्ध उक्ति का मर्म है कि इतिहास और पुराण दोनों वेद का ही वितान हैं। वेद—अर्थात् स्वयंप्रकाश ज्ञान का ही विस्तार इतिहास और पुराण में है इस उक्ति को बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दो प्रकार से समझना आवश्यक है। बहिरङ्ग रूप से तो यह समझा जा सकता है कि वैदिक वाङ्मय में कथा-विन्यास के जो सूत्र उपलब्ध हैं, उन्हीं की रीति का अनुसरण करते हुए कथा के परिवेष्टन में जो ज्ञान परम्परागत रूप से निबद्ध हुआ वही पुराण और इतिहास की युगलधारा में प्रवहमान रहा। इस दृष्टि से हम सब का परिचय कुछ न कुछ है, किन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि से देखना चाहें तो सर्वाधिक महत्त्व की बात यह होगी कि यह समझने का प्रयत्न किया जाय कि कथा के रम्य आवरण में 'वेद' का सूक्ष्म सूत्र कहाँ और कैसे अनुस्यूत है। इस प्रसंग में 'वेद' का अर्थ केवल वैदिक वाङ्मय नहीं, अपितु स्वयंप्रकाश ज्ञान की अविच्छिन्न धारा समझना उचित होगा। यह

---

१. महाराजा सज्जनसिंहजी (सं० १९३१–१९४१) ने कविराज श्यामलदास को उदयपुर राज्य का विस्तृत और प्रामाणिक इतिहास लिखने को नियत किया था। इस बृहत् इतिहास के लिखने और छपने में १२ वर्ष का समय लगा और एक लाख रुपये व्यय हुए। किन्तु यह प्रकाशित नहीं हुआ।

('उदयपुर का इतिहास'—भूमिका, पृ० ८)

२. वायुपुराण १।२०१, महा० १।१।२६०

धारा देश और काल के अतीत है यह भी स्मरण रखना आवश्यक है। कथा का परिवेष्टन देश और काल को बलात् उपस्थित करता है। यह सत्य है कि वैदिक वाङ्मय में जो कथासूत्र हैं उन्हें देश-काल के सन्दर्भ से सर्वथा पृथक् रखने में उस परम्परा को पर्याप्त सफलता मिली है। किन्तु पुराण और उससे भी अधिक इतिहास में जिस कथा-परम्परा का विन्यास मिलता है वह देश और काल के सन्दर्भों को प्रबल रूप से अपने साथ जोड़े हुए है। 'वेद' को परोक्ष रूप से कहने की यह चरम परिणति है। अतः इस परम्परा के हार्द को समझने के लिये देशकालावच्छिन्न कथा-विस्तार रूपी बहिरङ्ग और 'वेद' रूपी अन्तरङ्ग--इन दोनों में ताल-मेल समझना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि कथा देश-काल से अतीत नहीं है यह सत्य है, किन्तु उसका प्रयोजन केवल देश-काल में घटित तथ्य का प्रकाशन नहीं है। इस कारण उसमें देश-काल सम्बन्धी तथ्यों का सर्वथा अतिक्रमण हो ऐसी बात भी नहीं है, किन्तु 'वेद' के 'उपबृंहण' रूपी प्रयोजन को लेकर और उसके प्रति ऐकान्तिक निष्ठा रख कर देश-काल-रूपी तटों के बीच कथा के जिस प्रवाह की सृष्टि हुई है उसमें हमारी आज की दृष्टि से तथ्यों का निर्वाह खोजना उचित नहीं। ऐसी खोज से आधुनिक दृष्टि से बहुत कुछ विफलता ही हाथ लगेगा, और पुराण-परम्परा के अन्तरङ्ग में प्रवेश तो असम्भव ही रहेगा।

पुराण के बहिरङ्ग के अध्ययन का आदर्श रूप पार्जिटर[1] ने उपस्थित किया है। इस प्रकार के अध्ययन की भी अपनी उपयोगिता है, किन्तु अध्ययन की वही एकमात्र रीति नहीं है यही हमारा निवेदन है। बहिरङ्ग अध्ययन से पुराण-परम्परा में आपाततः जो विसङ्गतियाँ सामने आती हैं उनका संग्रह पार्जिटर ने बहुत सुन्दर रूप से किया है जिसका संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है—

"History was mythologised and mythology was given a historical garb" अर्थात्[2] पुराण परम्परा में इतिहास[3] (देशकाला-

---

1. F. E. Pargiter—Ancient Indian Historical Tradition.

२. वही पृ० ६३।

३. यहाँ इतिहास शब्द का इतिहास-पुराण की जोड़ी वाले इतिहास से अभिप्राय नहीं है। वह इतिहास देशकालावच्छिन्न होते हुए भी और पुराण की अपेक्षा तथ्य के प्रति अधिक सजग रहते हुए भी तथ्यों का संग्रह मात्र नहीं है। 'वेद' के 'उपबृंहण' का निर्वाह वह भी अपने ढंग से करता है।

वच्छिन्न तथ्यसंग्रह) को पुराण बना दिया गया और पुराण को इतिहास का वेष पहना दिया गया। इस कृत्य के कारण जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई उसके कुछ उदाहरण ये हैं[१]—

१. एक ही नाम के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को मिला देना। यथा पौरव भरत और दाशरथि भरत।

२. राजा, ऋषि और अन्यों को तत्तद्नामधारी पौराणिक व्यक्तित्वों के साथ मिला देना यथा आङ्गिरस बृहस्पति और देवगुरु बृहस्पति को एक मान लेना अथवा यादव राजा मधु (जिससे कृष्ण को माधव नाम मिला) को दानवों की जोड़ी मधु-कैटभ के साथ मिलाकर दानव मान लेना।

३. काल में व्यतिक्रम। काल के बहुत बड़े अन्तराल में हुए व्यक्तियों को एक काल में रख देना। यथा शान्तिपर्व में उल्लेख है कि भीष्म ने भार्गव च्यवन, वशिष्ठ और मार्कण्डेय से धर्म सीखा (जो अत्यन्त प्राचीन थे) उसी प्रकार भीष्म और द्रोणाचार्य जामदग्न्य राम (परशुराम) से मिले थे।[१]

४. तथ्य और पुराण का अन्तर मिट गया। यथा बौद्ध-जैन मतों के साथ ब्राह्मणमत के ऐतिहासिक संघर्ष को विष्णुपुराण में देवासुर-संग्राम का पौराणिक रूप दिया गया है।

५. धार्मिक उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये ऐतिहासिक परम्परा का अतिक्रमण। यथा-हरिश्चन्द्र, रोहित और शुनःशेप की कथा को गोदावरी के तट पर ले जाना, उद्देश्य है गोदावरी का माहात्म्यख्यापन (यह देश का अतिक्रमण है।)

६. ऐतिहासिक परम्परा के किसी व्यक्ति या घटना को लेकर धार्मिक कथा गढ़ना।

इन विसंगतियों का मुख्य कारण पार्जिटर ने यह बताया है कि कथा के प्रसंग में दो धारायें प्रचलित रही हैं, एक क्षत्रियधारा और दूसरी

---

१. द्रष्टव्य पार्जिटर पृ० ६३ से ७१।

२. ऊपरी दृष्टि से यह विसंगति ठीक है, किन्तु परशुराम और मार्कण्डेय को चिरजीवी मानने की परम्परा भी यहाँ स्मरणीय है और किसी पूर्ववर्ती आचार्य से, काल का अन्तराल रहते भी, शिक्षण लेना दो प्रकार सम्भव हो सकता है—एक तो उसी की सीधी शिष्य परम्परा से अभिप्राय हो सकता है और दूसरे योग के माध्यम से कालातीत दशा में पूर्ववर्त्ती आचार्यों से मिलन अथवा शिक्षण लेना असम्भव नहीं है।

ब्राह्मणधारा। क्षत्रियधारा में ऐतिहासिकता की रक्षा अपेक्षाकृत अधिक हुई और ब्राह्मणधारा में कम।[1] पार्जिटर की इस स्थापना की अधिक चर्चा यहाँ अप्रासंगिक है, किन्तु ऊपर का सक्षिप्त विवरण उद्धृत करने का हमारा प्रयोजन इतना हो है कि देशकालावच्छिन्न तथ्य-संग्रह की कसौटी पर पौराणिक परम्परा सर्वथा खरी नहीं उतर सकती। बहिरंग दृष्टि से यह किसी सीमा तक दूषण माना जा सकता है किन्तु अन्तरंग दृष्टि के सामने ऐसी असंगतियों का अस्तित्व नगण्य हो जाता है।

इस प्रसंग में इतिहास की पाश्चात्य धारणा का यत्किञ्चित् परिचय देना उचित होगा क्योंकि आज हमारी चिन्तन-सरणि बहुत कुछ उससे प्रभावित है।

पश्चिम में[2] History के प्रथम प्रवर्त्तक के रूप में यूनान के Herodotus (हिरोडोटस) का स्मरण किया जाता है। पञ्चम शताब्दी ई० पू० में इन्होंने कपोलकल्पना (Legend) के स्थान पर History का आविष्कार

---

१. रायचौधरी ने Political History of Ancient India में पृ० २ से १० तक भारतीय इतिहास के स्रोतों की चर्चा की है। इन्हें उन्होंने दो धाराओं में रखा है, एक तो ब्राह्मण साहित्य, जिसमें, (क०) अथर्व वेद का अन्तिम काण्ड (ख) ऐतरेय, शतपथ, पञ्चविंश एवं अन्य प्राचीन ब्राह्मण (ग)वृहदारण्यक, छान्दोग्य एवं अन्य प्राचीन उपनिषदों के अधिकतर अंश—इन सब का समावेश है और दूसरे विम्विसारोत्तर काल के ऐसे 'ब्राह्मण' (बौद्धेतर) ग्रन्थ, जिनका काल निश्चित नहीं है किन्तु जिनका कम से कम कुछ अंश विम्विसारोत्तर काल में अवश्य बना होगा। इस धारा में रामायण, महाभारत और पुराण को रखा है।

क्षत्रिय परम्परा Epic और पुराण की परम्परा में मिलती है और वेद निश्चित रूप से ब्राह्मण परम्परा है। ब्राह्मण परम्परा के साहित्य में जो ऐतिहासिक-भौगोलिक नाम आ जाते हैं, वे प्रसंगवशात् आते हैं और उनके पीछे कोई कहानी गढ़ने की अभिसन्धि नहीं रहती। किन्तु क्षत्रिय-परम्परा में ऐसी बात नहीं है, क्योंकि वह तो २०० ई० तक संभवत: चली हो, उसे काम करने को अनेक शताब्दियाँ मिलीं, जिनमें अनेक राजवंशों को स्वार्थपूर्ति का भरपूर अवकाश था। (यह अनुच्छेद रायचौधरी ने V. Gordon Childe की पुस्तक The Aryans पृ० ३२ से उद्धृत किया है।)

२. यह पूरा विवरण R. G. Collingwood की पुस्तक The Idea of History के आधार पर प्रस्तुत है।

किया ऐसा कहा जाता है। इतिहास का पौराणिक अथवा धार्मिक वेष उतार कर उसे मानवीय वेष[1] देने का श्रेय इन्हें दिया जाता है। मनुष्यों ने काल की निश्चित अवधियों में क्या क्या किया, इसका, तर्कसंगत भित्ति पर, विवरण प्रस्तुत करना इतिहास का काम है, यह स्थापना इनकी थी। वैसे यूनान का प्राचीन दर्शन यह था कि जो परिवर्तनशील है उसे जानना अनुचित है, इसलिये इतिहास भी असम्भव होना चाहिये। अनित्य के प्रति यह विरोध इस बात का प्रमाण है कि अनित्य का उन लोगों ने विशद दर्शन किया था। मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन की अनिवार्यता को उन्होंने पहचाना था, इसलिये इतिहास के प्रति विशिष्ट संवेदनशीलता उनमें पनपी थी।

आधुनिक विचार-सरणि का मूल स्रोत समझने के लिये पश्चिमी संस्कृति के उस युग का यत्किञ्चित् अवलोकन आवश्यक है, जिसे Enlightenment का नाम दिया जाता है। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पश्चिम में प्रत्येक विद्या की चिन्तनपद्धति में क्रान्ति का उन्मेष हुआ और १८ वीं शती में वह क्रान्ति सशक्त बनी। इस काल में धार्मिक परिवेश से अलग होकर प्रत्येक क्षेत्र में स्वतन्त्र चिन्तन को मुक्त अवकाश मिला। इस काल को इतिहास-सम्बन्धी सबसे बड़ी घटना यह है कि काल को सीधी रेखा में देखना शुरू हुआ। अर्थात् घटनाक्रम को पुनः लौट कर न आने वाले सदा अग्रगामी प्रवाह के रूप में देखा जाने लगा।

ऊपर के अत्यन्त संक्षिप्त विवरण से इतिहास सम्बन्धी पाश्चात्य धारणा के सम्बन्ध में दो बातें प्रमुख रूप से समझी जा सकती हैं—

१. मानव के बहिरंग व्यापार को ही इतिहास का विषय माना गया।

२. आज जिस चिन्तन-परम्परा का पश्चिम में प्रत्यक्ष प्रभाव है उसमें काल की चक्रिक गति प्रमुख नहीं है, अपितु सीधी रेखा के रूप में उसका दर्शन प्रमुख है।

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की अपनी विशिष्टता का थोड़ा-सा यहाँ पुनरुल्लेख उचित लगता है। उसे समझ कर यदि 'इतिहास'-पुराण का अध्ययन किया जाय तो निराशा या झुँझलाहट के स्थान पर सहानुभूति और श्रद्धा का विकास हो सकता है। मानव के अन्तरंग जीवन को सर्वजन-सुलभ भाषा और शैली में 'इतिहास'-

---

१. इतिहास का यह मानवीय वेष मानव के बहिरङ्ग व्यापार को ही प्रमुख विषय बनाकर चला, यह स्मरण रखना चाहिये।

पुराण ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि बहिरंग भी सर्वथा छूट न जाय। फिर भी अन्तरंग को ध्रुवस्थानीय मानने के कारण बहिरंग के प्रति अभिनिवेश नहीं रहा, और इसीलिये देश-काल के व्यतिक्रम की बहुत चिन्ता नहीं की गई। अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग को एक-साथ लेने की अखण्ड दृष्टि या पद्धति आज हमारे लिये जटिल या दुरूह अवश्य हो गई है, क्योंकि हम उस अखण्डता को खो बैठे हैं। किन्तु अपनी दृष्टि को निर्मल बनाना आज भी हमारे लिये असम्भव तो नहीं है। हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि पुराण-परम्परा का अध्ययन भारतीय संस्कृति के मर्म या हार्द को ध्यान में रख कर ही होना चाहिये। पाश्चात्य मापदण्डों को उस पर लागू करने से उसके प्रति अन्याय ही होगा।

अन्त में यह उल्लेख प्रासङ्गिक है कि गत बीस-पच्चीस वर्षों में पश्चिम की युवा पीढ़ी भी, गत ३०० वर्षों में वहाँ जो खण्ड दृष्टि पनपी है, उससे ऊब कर भारत की अखण्ड दृष्टि की खोज में लगी है।

### ३.एकलिङ्गमाहात्म्य में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्य

पौराणिक ए० लिं० मा० में ऐतिहासिक विवरण अत्यन्त अल्प है यह बात हम भूमिका के प्रथम परिच्छेद के अन्तर्गत 'विषय' के प्रसङ्ग में कह चुके हैं। काव्यमय ए० लिं० मा० में जो ऐतिहासिक विवरण प्राप्त है, उसका संक्षेप हम भूमिका के पूर्ववर्त्ती परिच्छेद में दे चुके हैं।

ए० लिं० मा० के दोनों रूपों में ऐतिहासिक सामग्री राजवंश वर्णन में ही प्राप्त है। तुलना के लिये दोनों की वंशावली नीचे सारणी में प्रस्तुत है, साथ ही भूतपूर्व उदयपुर राज्य द्वारा प्रकाशित वंशवृक्ष का विवरण भी इसी सारणी में संकलित है। जहाँ-जहाँ ● यह चिह्न लगा है वहाँ विशेष वर्णन प्राप्त है।

| पौराणिक ए० लिं० मा० | काव्यमय ए० लिं० मा० | प्रकाशित ऐतिहासिक वंशवृक्ष नाम संवत् |
|---|---|---|
| बाष्प (बप्पा) | विजयादित्य | गुहिल (गुहदत्त) ६२३ |
| भोज | केशव | |
| | नागा राउल | भोज ६४३ |
| सुषमाण | भोगा रावल | महेन्द्र ६६३ |
| | असाधर ? | नाग (नागादित्य) ६८३ |
| गोविन्द | श्रीदेव | शिलादित्य ७०३ |
| | महादेव | अपराजित ७१८ |
| आलु | ● गुहदत्त (गुहिल) | |

| | | |
|---|---|---|
| विश्वनाथ | ● बाष्प | महेन्द्र (द्वि०) ७४५ |
| | कालभोज | कालभोज (बापा) ७९१ |
| काल | ● खम्माण | खुमान ८१० |
| शालिवाहन | गोविन्द | मत्तट ८३० |
| नरवाहन | आलु राउल | |
| | विश्वनाथ सिंह | भर्तृभट्ट ८५० |
| कीर्तिवर्मा | शक्तिकुमार | सिंह ८७० |
| नरवर्मा | शालिवाहन | खुमान (द्वि०) ८८५ |
| | नरवाहन | महायक ९१० |
| कर्ण | अम्बाप्रसाद | खुमान (तृ०) ९३५ |
| सहस्राक्ष | कीर्त्तिवर्मा | |
| | नरवर्मा | भर्तृभट्ट द्वि० ९९९ |
| श्रीपुञ्ज | नरपति | अल्लट १००८ |
| कर्ण | कर्णसिंह | नरवाहन १०२८ |
| | भादूक ? | शालिवाहन १०३० |
| चरणमल्ल | गातडि ? | शक्तिकुमार १०३४ |
| | हंस | अम्बाप्रसाद १०५० |
| खंगार | यागराज | शुचिवमा १०६४ |
| क्षेत्रप | वैरड | नरवर्मा १०७८ |
| | श्रीपुञ्ज | कीर्त्तिवर्मा १०९२ |
| कर्ण | ● कर्ण | योगराज ११०८ |
| तेजसिंह | जितसिंह | बैरठ ११२५ |
| अमरसिंह | तेजसिंह | हंसपाल ११४५ |
| सुबाहु | ● समरसिंह | वैरसिंह ११६० |
| रत्नसिंह | रत्नसिंह[1] | विजयसिंह ११६४ |
| | | अरिसिंह ११८४ |

---

१. रत्नसिंह स्वयं रावल शाखा में हैं किन्तु यहाँ रत्नसिंह के बाद माहप, राहप इत्यादि राजाओं की एक पृथक् शाखा कही गई है, और राहप को राणत्व (राणा की उपाधि) प्राप्त हुआ था यह कहा गया है। यहाँ कुछ दूर तक राहप शाखा के अन्तर्गत शासकों के नाम दिये गये हैं। अरिसिंह तक उसी शाखा का वर्णन है। बीच में कुछ नाम रावल शाखा के भी मिल-जुल गये हैं, यथा तेजसिंह आदि। उसके बाद फिर से रावल शाखा का सूत्र पकड़ कर हम्मीर का उल्लेख आ गया है। इस प्रकार रत्नसिंह और हम्मीर के मध्य के नाम राहप शाखा के हैं। इतना अंश प्रक्षिप्त माना जा सकता है।

| (पौ०) | (का) | (प्र०) |
|---|---|---|
| जयसिंह | राहप (शाखा) | चौड़सिंह ११९५ |
| | हरसू ? | विक्रमसिंह १२०५ |
| लक्ष्मीसिंह | बबरू ? | रणसिंह १२१५[1] |
| | यश:कर्ण | रावल शाखा/राहप शाखा ● |
| हम्मीर | नागपाल | (रावल शाखा) |
| | पूर्णपाल | क्षेमसिंह १२२५ |
| क्षेत्रप | फेखर ? | सामन्तसिंह १२२८ |
| मोकल | भुवनसिंह | कुमारसिंह १२३६ |
| | भीमसिंह | मथनसिंह १२४८ |
| कुम्भकर्ण | जयमिंह | पदमसिंह १२६८ |
| राजमल्ल | ● लक्ष्म्यसिंह | जैत्रसिंह १२७० |
| | रसोराण | तेजसिंह १३१७ |
| | ● अरिसिंह | समरसिंह १३३० |
| | ● हम्मोर | रतनसिंह १३५९ |
| | ● क्षेत्रसिंह | हमीरसिंह १३८३[2] |
| | लाखा[3] | क्षेत्रसिंह (खेता) १४२३ |
| | ● मोकल | लाखा (लक्षसिंह) १४३९ |
| | ● कुम्भकर्ण | मोकल १४७८ |
| | | कुम्भा १४९० |
| | | उदयसिंह (प्र०) १५२५ |
| | | रायमल १५३० |

● (राहप शाखा)
(सीसोदिया की राणा शाखा, इनके वंशज बम्बई के निकट धर्मपुर राज्य में रहे।) नरपति, दिनकर, जशकरण, नागपाल, पूर्णपाल, पृथ्वोमल, भुवनसिंह, भीमसिंह, जयसिंह,, लक्षसिंह—१. अरिसिंह २. अजयमिंह।

ऊपर की सारणी से स्पष्ट है कि पौराणिक ए० लि० मा० में बाष्प (बप्पा) से पूर्व किसी का नाम नहीं है। किन्तु काव्यमय ए० लि० मा०

---

१. इस के बाद तीन पृथक् शाखायें दिखाई गई हैं। एक रावल शाखा, दूसरी माहप और तीसरी राहप। रावल और राहप शाखाओं का विवरण दिया गया है। माहप का नहीं। यहाँ हम दोनों शाखायें पृथक् दिखा रहे हैं।

२. इन्होंने सर्व प्रथम 'महाराणा' उपाधि धारण की।

३. लाखा नाम-मात्र लिखा है, तत्सम्बन्धी कोई पद्य नहीं है, पाठ खण्डित है।

में गुहदत्त से भी पूर्व सात नाम हैं। इस मुख्य भेद के अतिरिक्त भी नामों के क्रम में भेद और न्यूनाधिकता स्पष्ट दिखाई देती है। प्रामाणिकता की दृष्टि से प्रकाशित ऐतिहासिक वंशवृक्ष को प्रथम स्थान दिया जा सकता है, किन्तु फिर भी विशेष विवेचन के लिये यह सामग्री इतिहासकारों को उपयोगी लगेगी ऐसी आशा है। गुहदत्त और बाप्प दोनों के लिये विप्रकुल में उत्पन्न होने का उल्लेख ए० लिं० मा० के दोनों पाठों में है। आटपुर (आहाड़) से वि० सं० १०३४ का जो शिलालेख मिला है उसके निम्नलिखित श्लोक पर ओझाजी ने विस्तृत विचार किया है।[१]

आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानन्दनो महीदेवः।
जयति श्रीगुहदत्त· प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य ॥

(Indian Antiquary Vol. 39 P. 191)

ओझाजी का मत यह है कि यह तो ब्राह्मणों का सम्मान करने का उल्लेख है, ब्राह्मणवंश का नहीं। ओझाजी का मुख्य तर्क यह है कि बप्पा का जो सोने का सिक्का मिला है उस पर चंवर और छत्र के चिह्नों के बीच सूर्य का भी चिह्न बना है, अतः बप्पा का सूर्यवंशी होना इससे सिद्ध है। किन्तु काव्यमय ए० लिं० मा० में—

'जयति तथाऽऽनन्दपुरे नागरकुलमण्डनो महीदेवः।
यजनादिकर्मकुशलो विजयादित्याभिधो विप्रः' ॥२॥

(पृ० १७१)

इस श्लोक से गुहिल का ब्राह्मणवंशीय होना स्पष्ट है। उसी प्रकार पौराणिक ए० लिं० मा० में पार्वती नन्दी से कहती हैं—

यस्माद् बाष्पं सृजाम्यद्य वियोगाच्छङ्करस्य च।
पूर्वदत्ताच्च मे शापाद् बाष्पो राजा भविष्यसि ॥१३॥
कलौ प्राप्ते द्विजाग्रयाणां कुले महति पूजिते।
तव वंशस्य विच्छित्तिर्न कदाचिद् भविष्यति ॥१४॥

(पृ० ८)

यहाँ 'द्विजाग्र्य कुल' भी ब्राह्मण कुल की ओर स्पष्ट सङ्केत करता है। इस सम्बन्ध में दो सम्भावनायें हो सकती हैं। एक तो यह कि इस राजवंश के ब्राह्मणोचित गुणों की महिमा बताने के लिये 'विप्र' विशेषण रखा गया हो और दूसरे यह कि ब्राह्मण ही क्षत्रियोचित गुणों के कारण

---

१. द्रष्टव्य उदयपुर का इतिहास पृ० ७४–७९।

परशुराम के सदृश क्षत्रियवत् हो गये हों। दोनों ही सम्भवनायें 'ब्रह्म-क्षत्रिय'—परम्परा के साथ जुड़ सकती हैं। अर्थात् क्षत्रिय का ब्राह्मणवत् होना अथवा ब्राह्मण का क्षत्रियवत् होना ये दोनों बातें पुराण-परम्परा में मान्य हैं।[1]

मेवाड़[2] में ऐसी जनश्रुति है कि वहाँ के राजवंश के मूलपुरुष गुहिल (गुहदत्त) के पिता के मारे जाने पर एक ब्राह्मण ने उनका पालन-पाषण किया था। नैणसी की ख्यात में लिखा है कि सीसोदियों के पूर्वज गुहिलोत थे। पहले इनका राज्य दक्षिण में नासिक त्र्यम्बक की तरफ़ था। राजधानी नागदा में थी। इनका पूर्वज सूर्य का उपासक था। गर्भवती रानी को छोड़ कर वह राजा वीरगति को प्राप्त हुआ। गर्भ की रक्षा के लिये ब्राह्मणों ने रानो को सती नहीं होने दिया। पुत्र के १५ दिन का होने के बाद रानी सती होने चली और बालक को कोटेश्वर महादेव के मन्दिर में ब्राह्मण विजयादित्य (जो पुत्र के लिये आराधना कर रहा था) को सौंप दिया। ब्राह्मण ने उसे लेने में अनिच्छा प्रकट की क्योंकि क्षत्रिय बालक बड़ा होकर मृगया-प्रेमी बनेगा और हिंसा करेगा। रानी ने कहा कि इस पुत्र के वशधर दस पीढ़ी तक ब्राह्मण के आचार का पालन करेंगे। तब ब्राह्मण ने बालक को पालना स्वीकार किया।

ओझाजी ने ऊपर लिखी कथा को प्रामाणिक माना है और काफी विस्तार से भण्डारकर की ब्राह्मणवंश-पक्षीय युक्तियों का प्रत्याख्यान किया है।

ओझाजी ने[3] ब्रह्मक्षत्रिय-परम्परा का उल्लेख किया है और उसे ब्राह्मण और क्षत्रिय गुणों के सङ्गम का प्रतीक माना है। प्रमाणस्वरूप उन्होंने पुराण-परम्परा में सूर्यवंशी मान्धाता, विष्णुवृद्ध और हारीत के नाम लिए हैं।[4] उसी प्रकार चन्द्रवंश में भी विश्वामित्र, अरिष्टसेन आदि क्षत्रिय भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर चुके थे ऐसा उन्होंने लिखा है। इन दोनों वर्णों के गुणों के मिश्रण के कारण प्रशस्तियों में कहीं इस वंश को ब्राह्मण कहा गया है तो कहीं क्षत्रिय।

---

१. द्रष्टव्य, पार्जिटर, पृ० १७ पादटिप्पणी।
२. उदयपुर का इतिहास, पृ० ७५–७६ (इस पूरे अनुच्छेद का आधार यही है।)
३. वही, पृ० ७९–८०।
४. पार्जिटर ने नीचे का वंश-वृक्ष दिया है और विष्णुवृद्ध और हारीत को ब्राह्मणोचित गुणसम्पन्न क्षत्रिय-ब्राह्मण कहा है। पृ० २४६। (वंश-वृक्ष ४२ पर)

कुम्भाकी मृत्यु और उसके बाद के कुछ काल की अराजकता की स्थिति को पौराणिक ए० लिं० मा० में अपने ढंग से कहा गया है। इतिहास-प्रसिद्ध तथ्य[1] यह है कि जीवन के अन्तिम दिनों में महाराणा कुम्भा को मानसिक विकृति हो गई थी। एक बार वे कुम्भलगढ़ से एक-लिङ्ग जी के दर्शनार्थ गये। जैसे ही मन्दिर के पास पहुँचे, वहाँ खड़ी एक गाय जोर से रम्भाने और नाचने लगी। इस प्रकार नाचना गायों के उल्लास का सूचक होता है। महाराणा ने उस समय तो कुछ नहीं कहा, किन्तु कुम्भलगढ़ लौट कर वे बार-बार 'कामधेनु तण्डव करिय'—यही एक वाक्य दोहराने लगे। किसी भी बात का उत्तर वे इसी वाक्य से देते। सब लोग इससे घबरा गये और महाराणा के छोटे पुत्र रायमल ने साहस बटोर कर उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे मेवाड़ से निकल जाने को कहा। रायमल ईडर में अपने ससुराल चला गया। किसी ज्योतिषी ने महाराणा को बता रखा था कि वे चारण के हाथ से मारे जायेंगे। इसलिये उन्होंने पूरी चारणजाति को मेवाड़ से बहिष्कृत कर दिया और उनकी भूमि जब्त कर ली। किसी प्रकार एक चारण राजपूत के वेश में एक राजपूत सरदार के साथ रहने लगा। उसने सरदार को बताया कि महाराणा के वाक्य का कारण वह जानता है और इस वाक्य का दोहराना बन्द करवा सकता है। सरदार उसे महाराणा के पास ले गया और अपने सम्बन्धी के रूप परिचय कराया। महाराणा ने पुनः वही वाक्य दोहराया। तुरन्त ही वह चारण उठ खड़ा हुआ और महाराणा की ओर मुख करके उसने निम्नलिखित छप्पय पढ़ा—
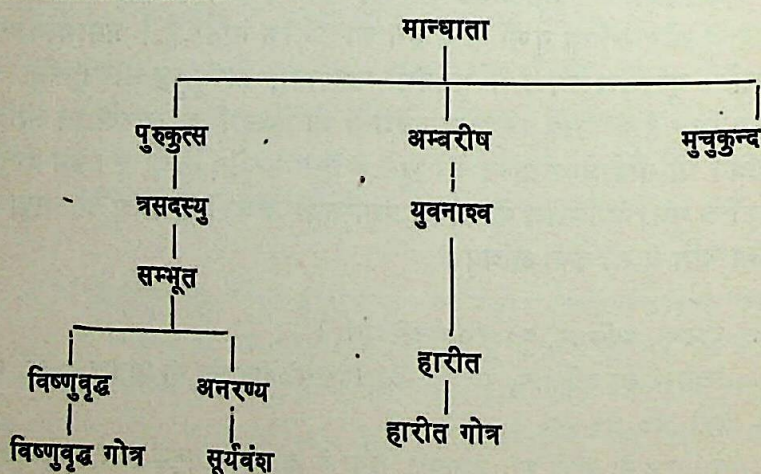
१. हरविलास शारदा कृत 'महाराणा कुम्भा', पृ० १०७–१११।

जद धर पर जोवती दीठ नागोर धरन्ती।
गायत्री संग्रहण (संघरण) देख मन माँहि डग्न्ती।
सुर कोटी तेतीस आन नीरन्ता चारो।
नहि चरन्त पीवन्त मनः करती हुंकारो।
कुम्भेण राण हणिया कलम आजस उर डर उतरिय।
तिण दीह द्वार शङ्कर तणय, कामधेनु तण्डव करिय॥

अर्थात् गायत्री (गाय) जब धरती पर (विशेष रूप से नागौर पर), दृष्टि डालती तब गायों का संहार देख कर मनमें बहुत डरती थी। तेतीस कोटि देवता उसके सामने चारा और पानी लाते। किन्तु वह भय के कारण न कुछ खाती, न पीती। राणा कुम्भा ने अब मुसलमानों को मार कर गायों की रक्षा की है, और अब गायत्री का डर उत्तर गया है। इसलिये वह शङ्कर के द्वार पर हर्ष से ताण्डव कर रही है।

महाराणा कुम्भा इस पद्य को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और राजपूत वेशधारी से बोले कि तुम राजपूत नहीं, चारण हो। उसने नम्रता-पूर्वक यह स्वीकार किया और बहिष्कृत चारणों को वापस बुला लेने की याचना की। महाराणा ने उसकी बात मान ली। उस दिन से उन्होंने 'कामधेनु तण्डव करिय' यह वाक्य बोलना छोड़ दिया। किन्तु उनके मस्तिष्क में किञ्चित् विकार आ चुका था। ऐसी स्थिति में एक दिन वे कुम्भलमेरु में कटारगढ़ के उत्तरपूर्व मामदेव कुम्भस्वामी के मन्दिर के पास एक तालाब के किनारे बैठे हुए थे, उस समय उनके ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह ने चुपके से आकर तलवार से उनकी हत्या कर दी। इस हत्या के दो कारण हो सकते हैं। एक तो उदयसिंह को यह भय रहा होगा कि उसका छोटा भाई रायमल, जो बहिष्कृत हो चुका था, पुनः कृपा-पात्र बन कर उसके उत्तराधिकार को छीन न ले। दूसरे यह हो सकता है कि महाराणा कुम्भा के शत्रुओं ने उसे माध्यम बनाया हो। जो भी हो, प्रजा ने उसके इस अपराध को कभी क्षमा नहीं किया होगा, क्योंकि उसका नाम ही 'ऊदा हत्यारा' प्रसिद्ध हो गया था।

कुम्भा की हत्या के बाद जो अव्यवस्था और अराजकता फैली होगी उसका सङ्केत पौराणिक ए० लिं० मा० ने इस प्रकार यह कर दिया है कि कुम्भकर्ण (कुम्भा) जब योगमार्ग से अपना शरीर छोड़ कर सायुज्य को प्राप्त हुआ तब उसके पुत्र परस्पर विरोधी हो गये। और नीच-सङ्ग के कारण शूद्राचार-परायण हो गये। भवानी के शाप से धर्म से च्युत

होकर वे ब्राह्मणों को क्लेश देने लगे। दिये हुए दान और 'देव-स्व' का अपहरण करने लगे। और क्रूर तथा चौर बन गये। इसी बीच म्लेच्छों ने आकर उन्हें क्लेश देना शुरू किया। घोर युद्ध के बाद वे लोग (कुम्भा के पुत्र) हारीत के शिष्य विद्याचार्य को शरण में गये और उससे प्रार्थना की कि वे लोग भ्रष्ट-राज्य हो गये हैं, उन्हें पुनः स्वराज्य में प्रतिष्ठा दिलाई जाय। आचार्य ने उनसे कहा कि वे शिवा और एकलिङ्ग की यथाविधि पूजा करें। उन लोगों ने शूद्राचार से पूजा की) उनका नेता था राजमल्ल। एकलिङ्ग ने उस पूजा को भी अङ्गाकार किया और राष्ट्रश्येना को बुला कर उनकी सहायता करने की आज्ञा दी। आदेश पाकर उस देवी ने उनकी सहायता की और चित्रकूट (चित्तौड़) में उन्हें पुनः स्थापित किया। तब से वे लोग शूद्राचार-परायण रह कर क्षात्राभास के रूप में राज्य करने लगे। जब-जब वे शिव भक्ति नहीं करते तब-तब उपद्रव होते और वे म्लेच्छाधीन हो जाते। (पृ० १३३-३४, श्लो० ४५-५९)।

कुम्भा की हत्या की घटना को सर्वथा छिपा जाना और पूर्ववर्ती राजाओं की भाँति योगमार्ग से शरोर छोड़ने को बात कहना—यह वश की प्रतिष्ठा की रक्षा को प्रवृत्ति का सूचक है। कुम्भा की मृत्यु के पश्चात् वंश का शूद्राचार और क्षात्राभास के रूप में वर्णन यह सङ्केत करता है कि जिसने भी यह अंश लिखा होगा वह कुम्भा के समय तक ही वंश की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण मानता था। यह अश कुम्भा की मृत्यु के बाद भले हा लिखा गया होगा किन्तु इसका लेखक प्रत्यक्ष रूप से कुम्भा का आश्रित रहा होगा। पृ० ९ पर श्लो० १६–१७ में भी यह कहा गया है कि पार्वती ने नन्दो से कहा था कि बाष्प के रूप में तुम इन्द्र की तरह राज्य करोगे और अन्त में स्वर्ग प्राप्त करोगे। यद्यपि तुम्हारे वंश का कभी विच्छेद नहीं होगा तथापि तुम्हारे वंशज धीरे-धीरे वर्णाश्रम-निन्दकों के संसर्ग से धर्मरहित, श्रुतिविहित आचार के निन्दक शूद्र जैसे हो जायेंगे, क्योंकि कलि ही शूद्र रूप है। काव्यमय ए० लि० मा० में तो वंश-वर्णन कुम्भा तक ही है, और उसको मृत्यु को काई चर्चा नहीं है।

### ४. एकलिङ्ग माहात्म्य में अन्य विविध सामग्री

#### (क) पात्र-नाम

ए० लि० मा० में जितने पौराणिक पात्रों के नाम आये हैं उनका संकलन द्वितीय परिशिष्ट के अन्तर्गत प्रथम सूची में है। ऐतिहासिक नाम इस सूची में नहीं रखे गये हैं, अपवाद केवल बाष्प, भोज और

सुषमाण है। बाष्प तो बाप्पा का संस्कृत रूप है और पूरी कथा का केन्द्र है, अतः ऐतिहासिक होते हुए भो इस ग्रन्थ में पौराणिक बन गया है। भोज और सुषमाण बाष्प के पुत्र और पौत्र हैं। और उनके विषय में कुछ विस्तार से वर्णन है, इसलिये उन्हें भी इस सूचो में सम्मिलित कर लिया गया है।

## (ख) भूगोल

ए० लिं० मा० में जिन भौगोलिक नामों का ग्रहण हुआ है उनका सङ्कलन परिशिष्ट २. के अन्तर्गत स्थान नाम-सूत्री में और विवेचनात्मक विवरण परिशिष्ट ३. में हम ने प्रस्तुत किया है। यहाँ केवल इस विषय में कुछ सामान्य टिप्पणी देना इष्ट है।

स्थान नामों के सम्बन्ध में सर्व-प्रथम यह बात ध्यान में आती है कि प्रणेता ने इस सम्बन्ध में कोई योजनाबद्ध काम नहीं किया है। अधिकांश नाम तो तृतीय अध्याय के आरम्भ में (पृ० ४ पर) इस प्रसङ्ग में यों ही गिना दिये गये हैं कि जैसे इतने देशों का परिचय दिया जा चुका है वैसे ही 'मेदपाट' का भी परिचय दिया जाय। स्पष्ट है कि इस नाम-संकलन में कोई क्रम अथवा योजना अभिप्रेत नहीं है। अन्य नाम अधिकतर एकलिङ्ग की कथा से ही किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हैं, कुछ तो भौगोलिक दृष्टि से उक्त मन्दिर के बिल्कुल आस-पास के स्थल हैं जैसे नागह्रद, इन्द्रसर। इस प्रसङ्ग में कुटिला नदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, एकलिंग की कथा के साथ यह नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, और भौगोलिक दृष्टि से भी यह नदी उक्त मन्दिर के सान्निध्य में होनी चाहिये ऐसा पूरी कथा से समझ में आता हैं। किन्तु मेवाड़ प्रदेश में जो भी नदियाँ हैं उन में से किसी का भी नाम कुटिला से मिलता-जुलता नहीं है। केवल एक नाम में थोड़ा-सा सादृश्य दिखायी देता है, और वह है कोटेसरी नदी। "इसे कोटारी भी कहते हैं। यह अरबली की पर्वत श्रेणो से निकल कर दीवेर से दक्षिण में ९० मील बहने के पश्चात् नन्दराय से दो मील की दूरी पर बनास से जा मिलती है।"[1] कुटिला को गङ्गा के तुल्य बताना उस सामान्य प्रवृत्ति का द्योतक है, जिसके अनुसार नदी मात्र में गङ्गा सदृश पवित्रता का आधान कर लिया जाता है। लोक-व्यवहार में नदी-मात्र के लिए गङ्गा संज्ञा स्वीकृत है।

---

१. ओझा—उदयपुर का इतिहास, पृ०—४

कुल मिला कर इस विषय में यही कहा जा सकता है कि हमारे लेखक की भगोल-मम्बन्धी कल्पना एकलिङ्ग की कथा में ही यत्किञ्चित् दिखायी देती है किन्तु वहाँ भी वस्तुस्थिति से पूरा-पूरा ताल-मेल नगण्य-सा है।

'मेदपाट' नाम पर ए० लिं० मा० के आरम्भ में हो प्रश्नोत्तर हैं। यह नाम पूरे ग्रन्थ का एक प्रकार से केन्द्र है। अतः इसे भूगोल-सम्बन्धी तृतीय परिशिष्ट में रखना उचित नहीं लगा। इसके सम्ब्रन्ध में निम्न-लिखित जानकारी यहां प्रासंगिक होगी।

"इस देश पर पहले 'मेद' अर्थात् 'मेव' या 'मेर' जाति का अधिकार रहने से इस का नाम मेदपाट (मेवाड़) पड़ा। मेवाड़ का एक हिस्सा अब तक मेवल कहलाता है, जो मेवों के राज्य का स्मरण दिलाता है। मेवाड़ के देवगढ की तरफ़ के इलाके में और अजमेर-मेरवाड़े के मेरवाड़ा प्रदेश में, जिसका अधिकतर अंश मेवाड़ से ही लिया गया है, अब तक मेरों को आबादी अधिक है। क़ितने एक विद्वान् मेर (मेव, मेद) लोगों की गणना हूणों में करते हैं, परन्तु मेर लोग शाकद्वीपी ब्राह्मणों की नाईं अपना निकास ईरान को तरफ़ के शाकद्वोप (शकस्तान) से बतलाते हैं और मेर (मिहिर) नाम भी यही सूचित करता है, अत एव संभव है कि वे लोग पश्चिमी क्षत्रपों के अनुयायी या वंशज हों।" (ओझा, उदयपुर का इतिहास पृ० १, पादटिप्पणो १ में उद्धृत नागरीप्रचारिणीपत्रिका भाग २ पृ० ३३५)।

"चित्तौड़ के किले से ७ मील उत्तर में मध्यमिका नाम की प्राचीन नगरी के खण्डहर हैं, उसे इस समय 'नगरी' कहते हैं। वहाँ से मिलने वाले कई ताँबे के सिक्कों पर वि० सं० के पूव की तीसरी शताब्दी के आसपास की ब्राह्मो लिपि में 'मझिमिकाय शिबिजनपदस' (शिबिदेश की मध्यमिका का सिक्का)—ऐसा लेख है। इससे अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ (या उसका चित्तौड़ के आसपास का अंश) शिबि नाम से प्रसिद्ध था। पीछे वही देश मेदपाट या मेवाड़ कहलाया और उसका प्राचीन नाम (शिबि) लोग भूल गये"। (वहो पृ० ३३४–३५)।

"करनबेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसङ्गवशात् मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन आया है जिसमें उनको 'प्राग्वाट' के राजा कहा गया है। अतएव प्राग्वाट मेवाड़ का ही दूसरा नाम होना चाहिए। संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में 'पारवाड़' महाजनों के लिए 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है और

वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' कस्बे से बताते हैं, जिससे संभव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाटवंशी कहते रहे हों" ।
(वही, पृ० ३३६)

इस प्रसंग में यह तथ्य रोचक होगा कि नन्दलाल डे ने अपने भौगोलिक कोश में हारीत आश्रम के साथ एकलिङ्ग का तादात्म्य स्थापित किया है ।

### (ग) वनस्पति एवं पक्वान्न

ए० लिं० मा० में उल्लिखित वनस्पतियों के नामों का संग्रह द्वितीय परिशिष्ट के अन्तर्गत तृतीय सूची में है । ये नाम मूल ग्रन्थ में मुख्य रूप से पृ० २८, ६५, और १३८ पर क्रमशः हारीतस्तुति, गौतमाश्रम-वर्णन और पूजा-पद्धति-वर्णन के प्रसङ्ग में आये हैं ।

पक्वान्नों के नाम उसी परिशिष्ट की चतुर्थ सूची में संगृहीत हैं । ये नाम मूल ग्रन्थ में पृ० ८८ पर बाष्प द्वारा एकलिङ्ग की पूजा के प्रसङ्ग में आये हैं ।

### (घ) आयुध

आयुधों के नाम उक्त परिशिष्ट के अन्तर्गत पञ्चम सूची में संकलित हैं । इन नामों का उल्लेख मूलग्रन्थ में पृ० २९ पर हारीत-स्तुति में हुआ है ।

## (५) एकलिङ्गमाहात्म्य की पूजापद्धति

कहना न होगा कि पूजा-पद्धति के प्रसङ्ग में केवल पौराणिक ए० लिं० मा० ही विचारणीय है । पञ्चम परिशिष्ट में हमने ए० लिं० मा० की पूजा पद्धति का संक्षिप्त विवरण एवं तुलना के लिए शारदातिलक और लिङ्गपुराण में से कुछ अंश प्रस्तुत किये हैं । इस तुलनात्मक विवरण से यह स्पष्ट है कि ए० लिं० मा० में वर्णित पूजा-पद्धति किसी प्रसिद्ध परम्परा के अनुसार नहीं है । इसके स्रोत के सम्बन्ध में जो संभावनायें हमें दिखाई दीं उनका परीक्षण करने पर कोई स्पष्ट सादृश्य सामने नहीं आया । सामान्य रूप से प्रचलित विधियों का भी ए० लिं० मा० में व्यतिक्रम मिलता है । उदाहरण के लिये २४वें अध्याय के आठवें श्लोक में पञ्चामृत के प्रसङ्ग में दधि, क्षीर, सिता, मधु और घृत यह क्रम दिया है किन्तु प्रचलित क्रम इस से भिन्न है, यथा—दुग्ध, दधि, घृत मधु, शर्करा । कहना कठिन है कि यह व्यतिक्रम केवल छन्द के अनुरोध से हुआ है

अथवा इस में कोई विधि भेद अन्वित है अथवा विधि की कठोरता के प्रति अनवधान-मात्र इस का कारण है।

पञ्चवक्त्र पूजा चतुर्विंश अध्याय में वर्णित है। उसका विवरण पंचम परिशिष्ट में द्रष्टव्य है।

पञ्चवक्त्र पूजा की परम्परा एकलिङ्गजी के अतिरिक्त नेपाल में पशुपतिनाथ के मन्दिर में है। इन दोनों मन्दिरों की पूजा पद्धति में क्या समानता और भिन्नता है, यह स्वतन्त्र अनुसन्धान का विषय है, दोनों मन्दिरों का परस्पर सम्बन्ध अनुमान-सिद्ध है, क्योंकि नेपाल के राजवंश से मेवाड़ के राजवंश का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।[१] किन्तु दोनों मन्दिरों की प्रचलित पूजा पद्धति की तुलना सुगम नहीं है, क्योंकि रहस्यात्मकता का आवरण दुर्भेद्य है।

पशुपतिनाथ के तत्त्व-निरूपण का विशद रूप ब्रह्मर्षि दैवरात के लघु ग्रन्थ 'पशुपति-हृदयम्' में प्राप्त है। 'पञ्चवक्त्र' का तत्त्व एकलिङ्गजी के सन्दर्भ में भी उसी प्रकार समझा जा सकता है। इस दृष्टि से हम यहाँ उक्त ग्रन्थ में से कुछ पद्य उद्धृत कर रहे हैं।

**पञ्चमुखानां पञ्चप्राणात्मकत्वम्**

सर्वान्तर्यामिणोऽन्तर्हृदयचितिमतो रुद्रहृद्यात्मनस्ते
पञ्च प्राणाः प्रमुख्या मुखवदभिहिता दिक्स्थिता द्वारपालाः।
प्राणः पूर्वस्त्वपानो वरुणदिशिहितो दक्षिणो व्यानसंज्ञः
सोमाख्यो वै समानो ह्युपरितनमुखः सन्नुदानः श्रुताष्टः ॥१३॥

**पूर्वमुखम्**

रुद्रः पूर्वामुखस्तत्पुरुष इति नुतः पारमैश्वर्ययोगात्
इन्द्रः सन् सर्वदेवाद्यधिपतिरमलो वैद्युतः पूरुषोऽयम्।
प्राच्यामन्तः स इष्टः सकलचिदुदयाद् ब्राह्मशक्त्या प्रपन्नो
नाम्ना धाम्ना महिम्ना भुवि भवति भवो भद्ररूपस्त्रिनेत्रः ॥७॥

**दक्षिणमुखम्**

रुद्रो घोरोऽप्यघोरो भवति पशुपतौ दक्षिणास्यः परः सन्
दक्षः कालाग्निरुद्रः शिव इह यमराडुग्ररूपस्त्रिनेत्रः।
वामे सर्पावतंसादपि तदितरतः कुण्डलाद् वृत्तरूपाद्
घोराघोरस्वरूपो लसति पशुपतिर्भीषणः शर्वनामा ॥८॥

---

१. द्रष्टव्य 'उदयपुर का इतिहास' पृ० १३९९, १४००।
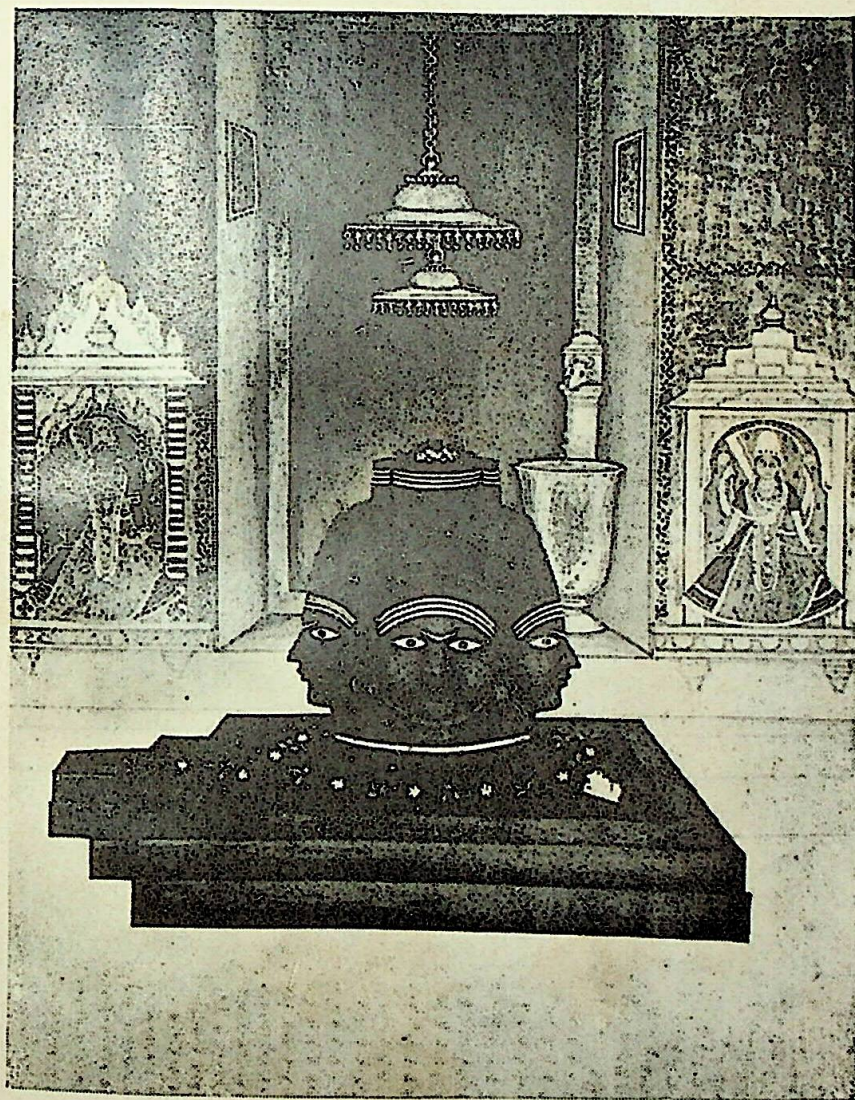
श्रीमदेकलिङ्ग का अर्चा-विग्रह

**उत्तरमुखम्**

रुद्रोऽसौ वामदेवः परशिव उदगादुत्तरास्यः स सोमः
उग्रो वामार्धभागे स भवति जटया कुण्डलान्नागरूपात् ।
दक्षार्धे स्त्रीविलासाभरणगुणकलाभूषितः सन् विचित्रः
संसिद्धः सुन्दरोऽयं पृथगुदितकचाच्छक्तिवृत्तावतंसात् ॥९॥

**पश्चिममुखम्**

सद्योजातोऽयमीशो जगति समुदितः पश्चिमास्यः प्रचेताः
सिद्धोऽयं बालभावात् प्रथमगुणदशायोगतो निर्विशेषः ।
दिव्यः सोऽयं किरीटी त्रिनयनलसितः पद्ममत्कुण्डलाप्तः
श्रुत्योद्दिष्टः प्रतीच्यां भवति पशुपतिः पूरुषः प्रत्यगात्मा ॥१०॥

**प्रत्येकस्मिन् मुखे हस्तद्वयम्**

प्रत्येकं श्रीमुखं तत् करयुगकलितं सत् स्वरार्णै रसार्णैः
पूर्णं वाक्प्राणशक्तिप्रणिहितकरयुक् साक्षमालोदकुम्भम् ।
वाक्छक्त्या गङ्गया च प्रतिदिशमुदितः सोऽष्टशक्तिप्रपूर्णः
वेदास्यो ब्रह्ममूर्त्तिः पशुपतिरुभयैः संहितः सोऽष्टमूर्त्तिः ॥११॥

**ऊर्ध्वमुखं लिङ्गरूपम्**

ऊर्ध्वंज्योतिः स लिङ्गात्मकमुखतनुभृत् सर्वविद्येश्वरोऽसौ
ईशानः शक्तपूर्णस्त्रिजगदधिपतिस्त्र्यम्बकस्त्रीक्षणः सः ।
मध्ये बिन्दौ स्थितः सन् दशदिगनुगतज्योतिषैकादशात्मा
श्रीरुद्रो रोरवीति श्रुतिवचनमुखाज्ज्ञानसञ्जीवनीयम् ॥१२॥

पञ्चवक्त्र–वर्णन में पूर्व-दक्षिण-उत्तर-पश्चिम-क्रम रखा गया है। इसमें प्रदक्षिणा-क्रम का भङ्ग है, किन्तु 'शिवस्यार्द्धपरिक्रमा' इस प्रचलित रीति के अनुसार यह उचित ही है। एकलिङ्ग की पूजा-पद्धति में भी पञ्चवक्त्रों में प्रदक्षिणा-क्रम का भङ्ग तो है, किन्तु वहाँ आरम्भ पश्चिम मुख से किया गया है। पश्चिम-उत्तर-दक्षिण पूर्व और ऊर्ध्व यह क्रम वहाँ है।

## ६. साम्प्रदायिक स्थिति

एकलिङ्ग का साम्प्रदायिक सम्बन्ध लकुलीश पाशुपत मत से माना जाता है। म० म० ओझा का कहना है "एकलिङ्ग मन्दिर के दक्षिण में कुछ ऊँचाई पर यहाँ के मठाधिपति ने ईस्वी सन् ९७१ में लकुलीश का मन्दिर बनवाया था, इस मन्दिर के कुछ नीचे विन्ध्यवासिनी का मन्दिर

है। बापा का गुरु नाथ (साधु) हारीत राशि एकलिङ्ग के मन्दिर का महन्त था। और उसके पीछे पूजा का कार्य उसकी शिष्य-परम्परा के अधीन रहा। इन नाथों का पुराना मठ एकलिङ्गजी के मन्दिर से पश्चिम में बना हुआ है। पीछे से नाथों का आचरण बिगड़ता गया और वे स्त्रियाँ भी रखने लगे। जिससे उनको अलग कर संन्यासी मठाधिपति नियत किया गया। तभी से यहाँ के मठाधीश संन्यासी ही होते हैं और वे गोसाईं जी कहलाते हैं। गोसाईं जी की अध्यक्षता में तीन-चार ब्रह्मचारी रहते हैं, वे ही पूजन करते हैं।" (उदयपुर का इतिहास पृ० ३३)

प्रस्तुत उद्धरण में 'लकुलीश' पर निम्नलिखित पादटिप्पणी ओझा जी ने दी है—

"लकुलीश या लकुटीश शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है। प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) संप्रदायों में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब तक सारे राजपूताने, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिण आदि में लकुलीश मूर्त्तियाँ पायी जातो हैं। मूर्त्ति के सिर पर जैन मूर्त्तियों के समान केश रहते हैं, दो भुजायें रहती हैं। बायें हाथ में लकुट (दण्ड) और दाहिने हाथ में बिजौरा (बीजपूर) रहता है। जो शिव की त्रिमूर्त्तियों के मध्य के दो हाथों में से एक में पाया जाता है। यह मूर्त्ति पद्मासन से बैठी होती है।

न (ल) कुलीशमूर्ध्वमेढ्रं पद्मासनसुसंस्थितम्।
दक्षिणे मातुलिङ्गं (?) च वामे दण्डं प्रकीर्तितम्॥
(विश्वकर्मावतार—वास्तुशास्त्र)

"लकुलीश की किसी-किसी मूर्त्ति के नीचे नन्दी और कहीं कहीं दोनों तरफ़ एक-एक जटाधारो साधु भी बना होता है। लकुलीश ऊर्ध्वरेता माना जाता है; जिसका चिह्न (ऊर्ध्वलिङ्ग) मूर्त्ति पर स्पष्ट होता है। इस समय इस प्राचीन सम्प्रदाय का अनुयायी कोई नहीं रहा, परन्तु प्राचीन काल में इस के मानने वाले बहुत थे जिनमें मुख्य साधु होते थे। माधवाचार्य के सर्वदर्शनसंग्रह में इसके सिद्धान्त का कुछ विवरण है। विशेष वृत्तान्त प्राचीन शिलालेखों तथा विष्णुपुराण आदि में मिलता है। इस सम्प्रदाय के साधु कनफड़े (नाथ) होते हैं ऐसा अनुमान होता है।"

अन्य एक स्थल पर म० म० ओझाजी ने कहा है, "इस सम्प्रदाय वाले शिव के कई अवतार मानते हैं, जिनमें से लकुलीश अवतार का प्रभाव मेवाड़ में विशेष रहा। एकलिङ्ग, मेनाल, तिलिस्था, बालोड़ी

आदि स्थानों के प्राचीन शिव-मन्दिर इसी सम्प्रदाय के हैं। इन मन्दिरों के पुजारी कनफड़े साधु होते थे, जो शरीर पर भस्म रमाते और आजीवन ब्रह्मचारी रहते थे। लकुलीश के चार शिष्यों-कुशिक, गार्ग्य, मित्र (मैत्रेय) कौरुष-से चार सम्प्रदाय चले। उनमें से एकलिङ्गजी के मठाधीश कुशिक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। कई शैव सम्प्रदायों के मन्दिरों के द्वार पर लकुलीश की मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं।........इस सम्प्रदाय के साधु वर्तमान समय में लकुलीश का नाम तक भूल गये हैं और वे (कनफड़े नाथ) अपने को गोरखनाथ आदि के शिष्यों में मानने लग गये हैं।"

(उ० पु० का इति० पृ० १४१५)

लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के सम्बन्ध में डॉ० विश्वम्भरशरण पाठक कृत अंग्रेजी पुस्तक 'History of Shaiva Cults in Northern India'—में कुछ अधिक व्यवस्थित विवरण मिलता है। गोरखनाथ का इस सम्प्रदाय से क्या सम्बन्ध माना जा सकता है इस विषय में गवेषणात्मक विवेचन डॉ० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय की पुस्तक 'गोरक्षनाथ—नाथ-सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में' में उपलब्ध है। इस सम्प्रदाय का कनफड़े नाथों से कुछ न कुछ सम्बन्ध था ऐसा तो ओझाजी के उद्धरणों से ही स्पष्ट है। इधर हाल की गवेषणाओं से इस विषय पर अधिक प्रकाश पड़ा है। संक्षेप में एतद्विषयक नवीनतम विचार यहाँ प्रस्तुत हैं।

पहले डॉ० पाठक द्वारा प्रस्तुत विवरण का सारांश उपयोगी होगा।[1] आदि मध्ययुग में उत्तर भारत में शैवोपासना अत्यधिक प्रचलित रही। गहढवाल, चेदी, चन्देल्ल और उड़ीसा के शासक परम माहेश्वर कहलाते थे। आसाम के हर्जर वर्मा और वैद्यदेव, बङ्गाल के विजय सेन और बल्लाल सेन, पश्चिम भारत के देवपाल, परमार, और भर्तृवढचाहमान भी इस उपाधि द्वारा अलंकृत थे। अनेक शासकों ने अपने राज्य शिव को अथवा शैव साधुओं को समर्पित किये थे, इस प्रकार मत्तमायूर क्षेत्र के अवन्तिवर्मन् और दाहल के एक चेदिराजा ने शैव-सिद्धान्त मत के गुरुओं को अपने राज्य समर्पित कर दिये थे। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में यह उल्लेख है कि किसी सोलंकी शासक ने पूरा मालव-प्रान्त उज्जैन के महाकालेश्वर को भेंट कर दिया था और उसकी शासन-व्यवस्था के लिये परमारों को नियुक्त किया था। शैव सिद्धान्त मत की गुहा-वासी परम्परा के कुछ साधुओं ने पंजाब के वर्मन् राजवंश को और मध्यदेश

---

1. History of Shaiva cults in Northern India pp. 1–18.

के चेदि, परमार और चन्देरी प्रतिहार राजवंशों को इस मत में दीक्षित किया था। इस परम्परा ने अपनी शाखा-प्रशाखाओं को सुदूर दक्षिण में तमिल, आन्ध्र तक भेजा और तदन्तर्गत साधुओं ने वहाँ राजगुरुओं का स्थान ग्रहण किया। चेदि राजाओं के शैव राजगुरुओं की प्रायः २५० वर्ष तक की अविच्छिन्न परम्परा शिलालेखों में सुरक्षित है।

कभी-कभी पुराणों में शैव मत का तीन कोटियों में विभाजन मिलता है। १—वैदिक २—तान्त्रिक ३—मिश्र।[1] इनमें से मिश्र मत तो स्मार्त अथवा पञ्चदेवोपासना ही है। वैदिक कोटि में लकुलीश पाशुपत आता है ऐसा लगता है, और तान्त्रिक के अन्तर्गत कालानन, कापालिक आदि को माना जा सकता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि लकुलीश पाशुपत भी मूलरूप में आगमिक ही था किन्तु इसे पुराणों में वैदिक कहा गया है क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक परम्परानुयायी था और आरम्भ में इसने वैदिक वर्णव्यवस्था को स्वीकार किया था। शैवसिद्धान्त मत आगमिक था।

अनेक प्रमाणों के आधार पर डॉ० पाठक ने यह कहा है कि चार मुख्य सम्प्रदाय और उनके उपसम्प्रदाय देश में प्रचलित थे।

१. शैव अर्थात् शैव-सिद्धान्त मत।

२. कालानन जिसका अपर नाम कारुक भी था।

३. पाशुपत—जिसकी एक शाखा थी लाकुलीश पाशुपत।

४. कापालिक—और उसका सहसम्प्रदाय सोम।

कहीं-कहीं दाक्षिणात्य शिलालेखों में ६ आम्नाय अथवा सम्प्रदाय कहे गये हैं—१. भैरव २. वाम ३. कालमुख ४. महाव्रत ५. पाशुपत ६ शैव। इनमें से प्रथम दो नाम ही नये हैं जो शायद कापालिक के अन्तर्गत आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ नामावलियाँ मिलती हैं।

---

१. श्रीकरभाष्य में उद्धृत कूर्मपुराण के निम्नलिखित वचन का डॉ० पाठक ने प्रमाण दिया है।

तान्त्रिकं वैदिकं मिश्रं त्रिधा पाशुपतं शुभम्।
तप्तलिङ्गाङ्कशूलादिधारणं तान्त्रिकं मतम्॥
लिङ्गरुद्राक्षभस्मादिधारणं वैदिकं भवेत्।
रविं शम्भुं तथा शक्तिं विघ्नेशं च जनार्दनम्।
यजन्ति समभावेन मिश्रं पाशुपतं हि तत्॥

महाभारत में पाशुपत को पाँच मतों में से एक कहा है।[१] श्रीकण्ठ को इसका प्रवर्तक माना गया है; यह उल्लेख देश के विभिन्न भागों में प्रणीत शैव मत के अनेक ग्रन्थों में समान रूप से मिलता है। यथा तन्त्रालोक, शिवदृष्टि, बृहद्यामल, पिङ्गलामत और शिवपुराण इत्यादि। श्रीकण्ठ द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का भी यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिये तन्त्रालोक में माङ्गल्यशास्त्र के प्रणेता के रूप में श्रीकण्ठ का उल्लेख है।

लकुलीश, गोरक्ष इत्यादि मानव-देहधारी गुरुओं को जिस प्रकार देव माना गया है, वैसा ही श्रीकण्ठ के विषय में भी समझना चाहिये। त्रिक मत में उन्हें कई स्थानों पर देवता के रूप में कहा गया है। कभी-कभी उन्हें पञ्चमुख सदाशिव के साथ अभिन्न माना जाता है क्योंकि उन्होंने पञ्चस्रोतोरूप सिद्धान्त का प्रवर्तन किया था। पञ्चमुख श्रीकण्ठ को लकुलीश सम्प्रदाय में भी मान्यता मिली है।

लकुलीश का पाशुपत मत की शाखा विशेष के प्रवर्तक के रूप में सर्वदर्शनसंग्रह में उल्लेख है। पुराणों में उन्हें शिव का अवतार कहा गया है।[२] अनेक शिलालेखों में भी उनका नाम मिलता है। पाशुपतसूत्र, जिनका नाम पञ्चाध्यायी है, को लकुलीश-कृत माना गया है। इस प्रकार थोड़ा-सा मतिभ्रम उत्पन्न होना है कि पाशुपत मत का प्रवर्तक श्रीकण्ठ को माना जाय अथवा लकुलीश को। तन्त्रालोक ने दोनों को यह श्रेय दिया है। उसमें द्वादश आह्निक पृ० ३९६ पर लकुलीश और श्रीकण्ठ दोनों को शिव-शासन में 'आप्त' कहा है। उसी ग्रन्थ में लकुलीश को शिव के अन्य अवतारों के अन्तर्गत रखकर श्रीकण्ठ के यश का उद्घोषक बताया है। (वही, पृ० ३४०)

---

१. शान्तिपर्व अध्याय ३४९ में से निम्नलिखित श्लोक डॉ० पाठक ने उद्धृत किये हैं—

सांख्यं योगं पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै ॥६४॥
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः।
उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥६७॥

२. वायुपुराण अध्याय २३, लिङ्गपुराण अध्याय २४ का सन्दर्भ डॉ० पाठक ने दिया है।

किन्तु लकुलीश को श्रीकण्ठ का प्रत्यक्ष शिष्य नहीं माना जा सकता। किसी ग्रन्थ में अथवा शिलालेख में दोनों का गुरुशिष्य-सम्बन्ध उल्लिखित नहीं है। डॉ० पाठक का अनुमान है कि पाशुपत मत के प्रवर्तक तो श्रीकण्ठ ही थे, बाद में उसमें से अनेक शाखायें निकलीं। लकुलीश द्वारा प्रवर्तित शाखा उन्हीं के नाम से लाकुलीश पाशुपत कहलायी।

लकुलीश का समय ई० पू० द्वितीय शताब्दी अथवा प्रथम शताब्दी ईस्वी माना जाता है। इस सम्बन्ध में अभी कोई सर्वमान्य मत नहीं बना है। इस की चार शाखाओं का उल्लेख हम ऊपर म० म० ओझाजी के उद्धरण में कर चुके हैं। वि० सं० १०२८ (=९७८ ई०) के नरवाहन (उदयपुर) शिलालेख में इन चार में से प्रथम कुशिक का उल्लेख है और यह कहा गया है कि उस धारा के साधु भस्म रमाते, वल्कल पहनते और जटा धारण करते हैं। संभवतः इसी आधार पर म० म० ओझाजी ने एकलिङ्ग का सम्बन्ध इस धारा से बताया है।[1]

लाकुलीश पाशुपत मत के दर्शन को पञ्चार्थ दर्शन अथवा पञ्चाध्यायी अथवा पञ्चार्थ लाकुल आम्नाय इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है। इस मत के एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ गणकारिका में भी आठ गण तो पञ्चकों के हैं, केवल नौवाँ त्रिक का है।[2] इस से ऐसा लगता है कि पाँच

१. यहाँ तक डॉ० पाठक के आधार पर लाकुलीश पाशुपत मत का परिचय दिया गया।

२. गणकारिका का मूल पाठ केवल आठ श्लोकों में है, जो ये हैं—

पञ्चकास्त्वष्ट विज्ञेया गणश्चैकस्त्रिकात्मकः।
वेत्ता नवगणस्यास्य संस्कर्ता गुरुरुच्यते ॥१॥
लाभा मला उपायाश्च देशावस्थाविशुद्धयः।
दीक्षाकारिबलान्यष्ट पञ्चकास्त्रीणि वृत्तयः ॥२॥
गुरुभक्तिः प्रसादश्च मतेर्द्वन्द्वजयस्तथा।
धर्मश्चैवाप्रमादश्च बलं पञ्चविधं स्मृतम् ॥३॥
अज्ञानहान्यधर्मस्य हानिः सङ्गकरस्य च।
च्युतिहानिः पशुत्वस्य शुद्धिः पञ्चविधा स्मृता ॥४॥
व्यक्ताव्यक्तं जयच्छेदो निष्ठा चैवेह पञ्चमी।
द्रव्यं कालः क्रिया मूर्त्तिः गुरुश्चैवेह पञ्चमः ॥५॥
गुरुर्जनगुहादेशः स्मशानं रुद्र एव च।
ज्ञानं तपोऽथ नित्यत्वं स्थितिः सिद्धिश्च पञ्चमी ॥६॥

की संख्या का इस मत में विशेष महत्त्व रहा होगा, जिसके साथ शिव की पञ्चमुखोपासना का सम्बन्ध समझा जा सकता है।

गोरक्षनाथ का उक्त संप्रदाय से क्या सम्बन्ध था, यह हमारे ग्रन्थ की दृष्टि से विचारणीय है क्योंकि म० म० ओझाजी ने एकलिङ्ग के साथ कनफटे साधुओं के घनिष्ठ सम्बन्ध की चर्चा की है। इस सम्बन्ध में डॉ० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय की पुस्तक 'गोरक्षनाथ' में विस्तृत विवेचना मिलती है। हम यहाँ उनके कुछ निष्कर्षों को ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

१. प्राचीन माहेश्वर सम्प्रदाय में अनक उपसम्प्रदाय थे जिनमें पाशुपत मत भी एक था। इस मत में श्रीकण्ठ और लकुलीश के साथ ही गोरक्ष की भी गणना होती थी, किन्तु गोरक्षनाथ पाशुपत मत के किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे इसका उल्लेख नहीं मिलता। यदि यह मान लिया जाय कि पाशुपत मत में नाथ सम्प्रदाय जैसा काई सम्प्रदाय था तो मत्स्येन्द्रनाथ के काल तक केवल गोरखनाथ ही उसके प्रतिनिधि रह जाते हैं।

२. लाकुलीश सम्प्रदाय के सिद्धान्त प्रायः पाशुपतों के ही हैं, केवल साधना में थोड़ा अन्तर माना गया है।

३. यह कहा जा सकता है कि त्र्यम्बक द्वारा प्रवर्त्तित एवं श्रीकण्ठ और वसुगुप्त द्वारा अद्वैतवादी शैव दर्शन से पुष्ट पाशुपत मत की योग प्रधान शाखा के प्रसिद्ध अनुयायियों में गोरक्षनाथ की गणना अधिक समीचीन है।

४. पाशुपत संन्यासियों में गोरक्षनाथ अपने को माहेश्वर घोषित करते थे। इसका प्रमाण उनकी रचनाओं से मिलता है। दूसरी ओर गोरक्षनाथ को नाथ सम्प्रदाय के प्रधान उपदेष्टा अथवा संगठनकर्ता के रूप में भी स्मरण किया जाता है। इन दोनों तथ्यों के संयोग के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि परम माहेश्वर गोरक्षनाथ ने प्राचीन माहेश्वर मतों का पुनर्गठन किया था, जिसमें शङ्कराचार्य के संगठन में आने से अवशिष्ट उन विभिन्न शैव सम्प्रदायों का अन्तर्भाव हो गया जो वैदिक नहीं थे अपितु आगमानुयायी थे।

---

वासश्चर्या जपध्यानं सदा रुद्रस्मृतिस्तथा।
प्रसादश्चैव लाभानामुपायाः पञ्च निश्चिताः ॥७॥
मिथ्याज्ञानमधर्मश्च सक्तिहेतुश्च्युतिस्तथा।
पशुत्वमूलं पञ्चैते तन्त्रे हेयाधिकारिकाः ॥८॥

५. प्राचीन काल में प्रचलित माहेश्वर शब्द पाशुपत का पर्याय ही है। इसी प्रकार और आगे चलकर यह शब्द लकुल और शैव सम्प्रदायों के लिये व्यवहृत होने लगा था। कापालिक लोगों का घनिष्ठ सम्बन्ध कनफटा लोगो से स्वीकार किया जाता है। औघड़ लोगों को प्रायः अघोरी से सम्बद्ध किया जाता है। नाथपन्थी योगियों के दो वर्गों में एक कनफटा है दूसरा औघड़। औघड़ लोग नाथ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण दीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं होते और अपने नाम के अन्त में वे नाथ के स्थान पर दास शब्द का प्रयोग करते हैं। फिर भी ये अपने आप को नाथ-पन्थी कहते हैं तथा गोरखनाथ के प्रति श्रद्धा रखते हैं।[1]

कान फाड़ने की क्रिया के बारे में डॉ० नागेन्द्रनाथ का कथन है कि कनफटा लोग गोरक्षनाथ को अपना आदि गुरु बताते हैं। इन्हें दर्शनी और गोरखनाथी नाम भी दिये जाते हैं। दशन = कुण्डल। इस दर्शन को योगी लोग दीक्षा के समय धारण करते हैं जिसका अथ है कि साधक ने परमात्मा का दर्शन कर लिया है। कर्णभेद से सम्पन्न विशिष्ट नाड़ी के भेदन से योगज सिद्धियाँ मिलती हैं ऐसा कहा जाता है।[2]

ऊपर उद्धृत निष्कर्षों के आधार पर यह प्रबल अनुमान किया जा सकता है कि गोरक्षनाथ माहेश्वर अथवा पाशुपत मत की किसी उपधारा से सम्बद्ध थे। किन्तु एकलिङ्ग मन्दिर के साथ कनफटा जोगियों का जो सम्बन्ध ओझाजी ने बताया है और साथ ही इस मन्दिर का लाकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय से जो सम्बन्ध प्रमाणों द्वारा सिद्ध है इन दोनों पर एक साथ विचार करने से कुछ प्रश्न उठते हैं जो इस प्रकार हैं—

१. लाकुलीश पाशुपत और गोरखनाथी साम्प्रदायिक धारा में भेद और अभेद की सीमारेखा क्या मानी जाय ? यदि ओझाजी का यह कथन सत्य हो कि एकलिङ्गजी के मन्दिर के पुजारी आरम्भ में कनफटे योगी होते थे तो क्या ऐसा मान लिया जाय कि ये योगी लाकुलीश सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त थे अथवा भिन्न सम्प्रदाय के होते हुए भी किसी प्रकार वहाँ प्रतिष्ठित हो गये थे ?

२. गोरखनाथ और कनफटे योगियों का सम्बन्ध तो पूरे देश में विश्रुत है। ओझाजी एक ओर तो यह कहते हैं कि एकलिङ्ग मन्दिर के पुजारी कनफटे होते थे, दूसरी ओर यह कहते हैं कि आज वहाँ के पुजारी लाकु-

---

१. निष्कर्ष 'गोरक्षनाथ' के पृ० ७१–७७ में से प्रस्तुत किये गये हैं।

२. वही पृ० ४, ५।

लीश सम्प्रदाय को भूलकर गोरखनाथ से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। इन दोनों बातों में विरोध प्रत्यक्ष है। यदि कनफटे योगी गोरखनाथ से अपना सम्बन्ध जोड़ें तो यह उचित ही है, किन्तु इस से लकुलीश और गोरखनाथ के परस्पर सम्बन्ध की गुत्थी और उलझ जाती है। स्पष्ट है कि ओझाजी इन दोनों की साम्प्रदायिक धारा को भिन्न मानते हैं।

३. ए० लिं० मा० में लकुलीश का नाम केवल एक बार आया है (पृ० ९५ श्लो० ५९) और उसकी साम्प्रदायिक धारा का कहीं कोई वर्णन नहीं है। पृ० ४४ श्लो० ६-८ में कई सम्प्रदायों के नाम अव्यवस्थित रूप से दिये गये हैं। इस अंश से निश्चित रूप से ऐसा लगता है कि लेखक को अपने सम्प्रदाय का ज्ञान नहीं है। जहाँ लकुलीश का नाम आया है, वहाँ भी शङ्कराचार्य की गुरु परम्परा से ला कर सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। यहाँ भी साम्प्रदायिक धारा की शुद्धि के दर्शन किञ्चित् भी नहीं होते।

ऐसा लगता है कि एकलिङ्ग माहात्म्य का सम्प्रदाय सम्बन्धी अंश जब लिखा गया होगा तब तक लकुलीश की धारा से एकलिङ्ग मन्दिर का सम्बन्ध विच्छिन्न हो चुका होगा। शङ्कर सम्प्रदाय के दशनामी संन्यासियों को इस मन्दिर की सेवा पूजा में कभी स्थान मिला होगा ऐसा नहीं लगता। सम्भवतः आगमानुयायी संन्यासी ही वहाँ प्रतिष्ठित रहे होंगे। आज एकलिङ्ग मन्दिर के पुजारी संन्यासी नहीं किन्तु ब्रह्मचारी ही होते हैं और गुमाईं कहलाते हैं। ब्रह्मचारियों का चुनाव 'पञ्चद्राविड़' ब्राह्मणों में से ही होता है, जिनके नाम हैं—१. श्रीमाली २. नागर ३. औदोच्य ४. सांचोरा ५. आमेटा। बाद में 'पञ्चद्राविड़' में दो और नाम भी सम्मिलित कर लिए गये १. वटमेवाड़ा २. चोइशा।

ए० लिं० मा० में पौराणिक रीति से, एकलिङ्ग की पूजा की व्यवस्था उच्छिन्न होने का सशक्त उल्लेख अवश्य मिलता है। २६ वें अध्याय में कुम्भा की मृत्यु के बाद की अव्यवस्था के वर्णन के बाद श्लोक ६१ से ८७ तक एकलिङ्ग की पूजा के अधिष्ठाताओं की परम्परा टूटने की बात कही गयी। हारीत के शिष्य विद्याचार्य को परम तपस्वी और सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ कहा गया है। हो सकता है कि ये लकुलीश सम्प्रदाय के अन्तिम आचार्य रहे हों। वे शिष्य-प्रशिष्यों सहित मठ में रहते थे और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों को विद्या देते थे। कुम्भा आदि राजा उनकी आज्ञा के परिपालक थे। वे लोग हाथ में यष्टि (लाठी) ले कर और अपना औद्धत्य छोड़ कर प्रतिहार की भाँति आचार्य के द्वार पर रहते थे और अपनी राजधानी में पहुँच कर राजचिन्हों को धारण करते थे। आचार्य

काल-वश निधन को प्राप्त हुए। उनके अनेकों शिष्य-प्रशिष्य मठ में रह कर श्रुति-स्मृति विहित आचरण करते हुए ब्राह्मणादियों को अपने-अपने धर्म-पालन की प्रेरणा देते रहे। इस प्रकार बहुत वर्ष बीत गये। इस बीच कलि का आविर्भाव हो गया। कलि ने राजा के हृदय में प्रवेश कर के उस की मति को अन्यथा कर दिया। यहाँ राजा का नाम नहीं दिया गया है। सम्भव है यह कुम्भा का हत्यारा उदय ही रहा हो। "वह राजा एकलिङ्ग के निकट आ कर शम्भुनारायण नामक गुरु का उपहास करने लगा। शिव ने उसे रोका भी, किन्तु वह उसी प्रकार बोलता रहा। तपस्वी गुरु ने क्रोध से रक्त नेत्र हो कर उसे राज्य भ्रष्ट होने का शाप दिया। शाप दे कर गुरु देश छोड़ कर शिष्यों-सहित काशी चले गये। इस बीच छ मास के भीतर ही म्लेच्छों से घोर युद्ध हुआ। १२ वर्ष तक राज्य में सुख नहीं रहा। इसी प्रकार कुछ वर्ष बीतने पर उस राजा की सन्तति में फिर से कोई धर्मनिष्ठ प्रतापवान् राजा होगा जो पूर्वजों के राज्य का पालन करेगा और परम्परागत गुरु मार्ग का अनुगमन करने वालों का सम्मान करके उन्हें मठ में स्थापित करेगा। शम्भुनारायण के शिष्यों को बुलाकर यथा पूर्व महती पूजा करायेगा। वे शिष्य यथा शास्त्र एकलिङ्ग का विधिपूर्वक जीर्णोद्धार करायेंगे।" इस विवरण से ऐसा अवश्य लगता, है कि कुम्भा की हत्या के बाद एकलिङ्ग की सेवा पूजा के अधिष्ठातृ-वर्ग में कोई भारी उथल-पुथल हुई होगी।

एकलिङ्ग-मन्दिर की सेवा-पूजा के अध्यक्षों का सम्प्रदाय-परिवर्तन कब-कब और कैसा-कैसा हुआ—यह स्वतन्त्र अनुसन्धान का विषय है। हमने तो केवल कुछ सूत्रों का सङ्केत-मात्र किया है। ए० लिं० मा० के रचयिता का सम्बन्ध किसी भी साम्प्रदायिक धारा से रहा हो ऐसा नहीं लगता। शङ्कर-सम्प्रदाय के प्रति उसका कुछ अभिनिवेश अवश्य लगता है।

### ७. स्थलपुराण-परम्परा में ए० लिं० मा० का स्थान

इस प्रसंग में केवल पौराणिक ए० लिं० मा० विचारणीय है। नीलमत-पुराण, चिदम्बर-माहात्म्य[1] और कारवण-माहात्म्य इन तीन स्थल पुराणों

---

१. चिदम्बर माहात्म्य चिदम्बर-पुराण के पाँच भागों में से प्रथम है। शेष चार भाग हैं—पुण्डरीकपुर, व्याघ्रपुर, हेमसभानाथ और तिल्ववन के माहात्म्य। ये चारों अभी अप्रकाशित हैं।

(चिदम्बरमाहात्म्य की भूमिका पृ० ५)

के साथ तुलना करने पर ए० लिं० मा० की दो विशेषताएँ उभर कर सामने आती हैं—(१) ऐतिहासिक राज-वंश के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध और (२) स्पष्ट तान्त्रिक प्रभाव। इन दो विशेषताओं को लेकर कोई अन्य स्थलपुराण भी बने होंगे, यह सर्वथा सम्भव है, किन्तु अभी तक ऐसी कोई अन्य रचना हमारे देखने में नहीं आई है। अतः एकलिङ्ग माहात्म्य स्थल-पुराण-परम्परा के एक विशिष्ट अङ्ग के रूप में प्रकाशित हो रहा है। भविष्य में इस परम्परा के जो भी अंग प्रकाशित होंगे उनके अध्ययन के लिए ए० लिं० मा० दिग्दर्शक के रूप में उपयोगी होगा, इस में सन्देह नहीं। ए० लिं मा० की कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) जनश्रुति अथवा स्थानीय लोक-कथाओं की विपुलता। आरम्भ में पार्वती द्वारा शंकर से मुनि पत्नियों का चित्तभ्रंश करने की प्रार्थना किसी पौराणिक कथा से नहीं, अपितु जनश्रुति से ही प्रभावित लगती है। तद्वत् राष्ट्रसेना नाम की देवी भी स्थानीय भालों की देवी हो सकती है।

(२) पौराणिक परम्परा के अनुसार चतुर्युग का विशद वर्णन, विशेषतः कलि के दोषों का निरूपण और कलि का आविर्भाव कुम्भा की मृत्यु के बाद के काल में मानना। यह उस काल में व्याप्त अनाचार, अव्यवस्था का सूचक है, साथ ही कुम्भा के राज्यकाल की प्रशंसा इस में ध्वनित है।

(३) दुर्गासप्तशती का विशेष प्रभाव[1] और श्रीमद्भागवत का कहीं-कहीं स्पष्ट प्रभाव।[2]

(४) दशावहार-वर्णन पर गीतगोविन्द का सामान्य प्रभाव। किन्तु दशावतारों में दत्तात्रेय का ग्रहण विचित्र लगता है। यहाँ वर्णित दशावतार इस प्रकार हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथिराम, कृष्ण, दत्तात्रेय, वेदव्यास।[3] अन्यत्र (पृ० ३७, श्लोक ४३) दत्तात्रेय और वेदव्यास के स्थान पर बुद्ध और कल्कि का ही ग्रहण है। इस से ऐसा लगता है कि एक ओर तो लेखक को गीतगोविन्द के दशावतार का स्मरण है और दूसरी ओर श्रीमद्भागवत के चतुर्विंशति लीलावतारों का।

---

१. द्रष्टव्य : पृ० २, श्लोक ७—१३ तथा पृ० ३१, श्लोक १८, १९।

२. द्रष्टव्य : पृ० १३, श्लोक २०, २१। यहाँ एकलिङ्ग के आविर्भाव का वर्णन श्रीमद्भागवत के कृष्ण-जन्म के वर्णन से मिलता-जुलता है।

३. पृ० १९, श्लोक १८ में दत्तात्रेय के बाद बुद्ध और कलि का नामोल्लेख है, किन्तु स्तुतिपरक पद्यों में ये दोनों प्राप्त नहीं हैं। गीतगोविन्द में रघुपति राम, के बाद बलराम, बुद्ध और कल्कि का ग्रहण है।

श्रीमद्भागवत में "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" (श्रीमद्भागवत १।३।२८) इस वचन से अवतारी रूप से वर्णित कृष्ण को दशावतारों में रखना कुछ विचित्र लगता है।

(५) दार्षदी (पत्थर की) मूर्तियों की गाँव-गाँव में स्थापना की नवीन कल्पना। (पृ० १८, श्लोक २, ३ तथा पृ० ५३, श्लोक ५३)।

(६) जन्म की अपेक्षा कर्म की महिमा का ख्यापन। (पृ० ४१, श्लोक ११०, १११) इस सन्दर्भ में वृद्धहारीतस्मृति (अध्याय १ श्लो० २०, २६) और लघुहारीतस्मृति (७।१५-१६) के वचन तुलनीय हैं जिनमें क्रमशः यह कहा गया है कि जो ब्राह्मण नारायण का दास न हो, वह चाण्डालवत् है। और ब्राह्मण के विहित कर्म से जिसका अन्यथा व्यवहार हो वह जाति से पतित हो जाता है। (स्मृति सन्दर्भ, द्वितीय भाग, प्रकाशक-मनसुखराय 'मोर', सन् १९५२)।

(७) श्रीमद्भगवद्गीता का स्पष्ट प्रभाव। यथा—पृ० ७०, ७१ पर श्लोक ८–१५ तक गौतम-स्तुति में गीता के विश्वरूप का प्रभाव दिखाई देता है।

(८) मन्त्र साधना के प्रसंग में तो तन्त्र का विशद प्रभाव है ही, अन्यत्र भी यह प्रभाव विकीर्ण है। यथा—अहोरात्र में षड्ऋतुओं की कल्पना अर्थात् दिन को संवत्सर मानने की तान्त्रिक दृष्टि। (पृ० ९१, श्लोक ३, ४)

(९) स्त्रियों का ब्रह्मकर्म में अधिकार-ख्यापन—

यथाऽधिकारः श्रौतेयो योषितां कर्मसु स्मृतः।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणि ब्रह्मवादिनीम् ॥

(पृ० ११२, श्लोक १९)

(१०) जिस राजवंश का वर्णन अभिप्रेत है, उसके मूलपुरुष बप्पा का का संस्कृत नाम बाष्प कल्पित कर के उसे केन्द्र में रख कर कथा-योजना और हारीत के साथ उसके साहचर्य का नर-नारायण के प्रसिद्ध पौराणिक युग्म के सदृश वर्णन।

(११) गोमाता की महिमा का वर्णन (पृ० १६, १७ श्लोक ५१–५५) गो की अवध्यता का वर्णन तत्कालीन अवस्था का सूचक है, क्योंकि मुसलमान शासन में गोवध के कारण यह समस्या प्रासङ्गिक थी।

(१२) वाल्मीकि रामायण का किञ्चित् प्रभाव (पृ० ९७, श्लोक ९२–९५)। यत्र-तत्र अन्य पुराणों, स्मृतियों आदि का प्रभाव।

## ८. उपसंहार

पुराण, जनश्रुति, स्थानीय लोक-परम्परा, तन्त्र, स्मृति आदि का जो सम्मिश्रण पौराणिक ए० लिं० मा० में उपलब्ध है, उसमें अध्ययन की विपुल सामग्री निहित है। पुराण के पञ्चलक्षण[1] इसमें घटित नहीं होते। यह बात सभी स्थलपुराणों के लिये सत्य है। पौराणिक शैली का और अनेक पौराणिक पात्रों (यथा हारीत, नारद, सूत, शौनक, वायु आदि) का ग्रहण इस रचना को निश्चित रूप से पुराण-परम्परा की बृहती धारा की उपधारा में प्रतिष्ठित करता है। पुराण के साथ मध्य-युगीन इतिहास का योग, उसमें स्थानीय परम्परा का प्रबल पुट, तन्त्र का विशद प्रभाव इत्यादि इस ग्रन्थ के वैशिष्ट्य के साधक हैं। काव्यमय ए० लिं० मा० इतिहास के अध्येताओं के लिये उपयोगी है। इन दोनों कृतियों का एकत्र प्रकाशन मध्ययुगीन इतिहास और पुराण-परम्परा के तत्कालीन स्वरूप के अध्ययनार्थ मूल्यवान् सिद्ध होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। पद्धति और सिद्धान्त को लेकर जो अव्यवस्था पौराणिक ए० लिं० मा० में दिखाई देती है वह उस ह्रासोन्मुख काल की द्योतक है जिसमें इसका प्रणयन हुआ होगा। यह अव्यवस्था भी आज के अध्येता के लिये सर्वथा अनुपयोगी नहीं कही जा सकती। भविष्य में इस कोटि का अन्य साहित्य जब प्रकाश में आयेगा तब प्रस्तुत प्रकाशन का समीचीन मूल्याङ्कन हो सकेगा। पुराण की उपर्युक्त उपधारा के अध्ययन का सूत्रपात इस प्रकाशन से हो सकेगा, इसका हमें सन्तोष है।

---

१. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥
(मार्कण्डेयपुराण १३४/१३)

# मूलग्रन्थः

श्रीमदेकलिङ्गो जयति ।। श्रीगणेशाय नमः ।।

# अथ एकलिङ्गमाहात्म्यं लिख्यते

## तत्र प्रथमोऽध्यायः

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति सूर्यो निधिर्धाम्नाम् ।। १ ।।
जयति जगति ज्ञानकरी तस्करदुर्गंहरी [हंस] वाहनी ।
सुवहा मोक्षस्य कृतौ या सा स्याद्विदुषामलङ्करणम् ।। २ ।।

**नारद उवाच—**

भुवनत्रितयं दृष्टं त्वया वायो समन्ततः ।
तेषां यथा यथा वृत्तं विस्तरात् कथितं मम ।। ३ ।।
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं सशैलवनकाननाम् ।
त्वदुक्तां श्रुतवानस्मि यतस्त्वं सर्वतोगतिः ।। ४ ।।
त्वया सर्वं जगद् व्याप्तं त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
त्वत्सृष्टं मोदते विश्वं त्वद्युक्तमथ पावनम् ।। ५ ।।
सर्वज्ञस्त्वमतो वायो संशयं छिन्धि मेऽनघ ।
कस्मात् पृथ्वीति विख्याता मेदिनीति कथं स्मृता ।। ६ ।।

**वायुरुवाच—**

कथयिष्याम्यहं ब्रह्मन् यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।
अतीन्द्रियज्ञाननिधे यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।। ७ ।।
तथापि कथयाम्यद्य सर्वलोकहिताय वै ।
भृगुगोत्रोद्भवः श्रेष्ठः शौनको नाम विश्रुतः ।। ८ ।।
तस्यैव वर्तमानेऽत्र यज्ञे द्वादशवार्षिके ।
तत्रागच्छन्मुनिगणा आहूता ब्रह्मवादिनः ।। ९ ।।
तपःकृशाः संयमिनो गृणन्तः परमव्ययम् ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भगवान् मुनिः ।।१०।।
गालवो जमदग्निश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
भारद्वाजोऽङ्गिराश्चैव कृष्णाद्वैपायनः शुकः ।।११।।
पराशर ऋचीकश्च दुर्वासा गर्ग एव च ।
उद्दालकस्तथा कङ्कः कचः कण्वोऽथ देवलः ।।१२।।

अगस्तिर्लोमशो रैभ्यो याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः ।
उशनाः पुलहश्चैव पुलस्तिः कपिलस्तथा ॥१३॥
आसुरिर्वामदेवश्च हारीताद्या महर्षयः ।
इन्द्राद्याः सकला देवा यक्षविद्याधरादयः ॥१४॥
तत्रागच्छन्मुनिगणा आहूताः शौनकेन ह ।
आसनेषूपविष्टेषु सतां संसदि ते तदा ॥१५॥
सूतं योगिषु मान्यं च शौनको वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्य प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

**शौनक उवाच—**

अष्टादश पुराणानि कथितानि त्वयानघ ।
इतिहासानि सर्वाणि रामस्य चरितं महत् ॥ १ ॥
भारतानां कथाश्चित्रा यथावत् परिकीर्तिताः ।
पौराणिको भवान् तात वरदानान्न संशयः ॥ २ ॥
वायोः पुराणमखिलं त्वयोक्तं सूतनन्दन ।
जगत्त्रयस्य यद्वृत्तं कथितं च समासतः ॥ ३ ॥
कथं पृथ्वीति विख्याता मेदिनीति कथं द्विज ।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि श्रुतं यच्चरितं महत् ॥ ४ ॥

**सूत उवाच—**

पुराणमेतद्विपुलं वायुना परिकीर्तितम् ।
तदहं कथयिष्यामि यथाज्ञातं यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥
एकार्णवे पुरा भूते जगत्स्थावरजङ्गमे ।
तत्र सुप्तो जगन्नाथः शेषमास्तीर्य वीर्यवान् ॥ ६ ॥
मधुकैटभौ महादैत्यौ विष्णुकर्णमलोद्भवौ* ।
नाभिपङ्कजसंस्थौ तौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥ ७ ॥
पितामहस्ततो दृष्ट्वा दुष्टभावं दुरात्मनोः ।
तुष्टाव योगनिद्रां तां तया मुक्तो जनार्दनः ॥ ८ ॥
उत्तस्थौ भगवान् विष्णुर्बाहुयुद्धमथाकरोत् ।
पञ्चवर्षसहस्राणि बहुमायापरो विभुः ॥ ९ ॥
ततो विमोहितौ दैत्यौ मायया पद्मयोनिना ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥१०॥

---

* द्रष्टव्य दुर्गा-सप्तशती १।६८

**श्रीभगवानुवाच—**

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि।
किमन्येन वरेणात्र एतावद् विवृतं मया ॥११॥

**सूत उवाच—**

तावूचतुर्हरिं दैत्यौ महामायाविमोहितौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानौ दुःप्रधर्ष्यौं सुरैरपि ॥१२॥
प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाध्यस्त्वं मृत्युरावयोः।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१३॥

**सूत उवाच—**

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥१४॥
ततो वै मेदसाप्लाव्य पूरितेयं वसुन्धरा।
मेदिनीति च विख्याता पृथ्वीसंज्ञामतः शृणु ॥१५॥
पृथुर्वेन्योऽभवद् राजा धार्मिको यज्ञकृच्छुचिः।
मधुकैटभ-देहोत्थैर्मेदोऽसृग्भिस्तथाऽस्थिभिः ॥१६॥
पूरितामवनीं दृष्ट्वा समां चक्रे पृथुस्तदा।
तस्या मह्याः स्वकं रूपं प्रादुश्चक्रे पृथुः पुरा ॥१७॥
धेनुरूपं समास्थाय वरदेत्यब्रवीन्नृपम्।

**धेनुरुवाच—**

वरदाऽहं नृपश्रेष्ठ वृणीष्वावहितो वरम् ॥१८॥

**पृथुरुवाच—**

यदि प्रसन्ना वरदे सस्यं देहि ममाथ वै।
मम नाम्ना सुता भूत्वा ख्यातिं यातुं त्वमर्हसि ॥१९॥

**वायुरुवाच—**

एवं नारद तद्वाक्यं मेदिनी हर्षसंयुता।
तथेत्युक्त्वा नृपश्रेष्ठं वरदानेन तोषितम् ॥२०॥
अन्तर्द्धानं ययौ धेनुः पृथुः पृथ्वीं शशास ह।
इति पृथ्वीति नाम्नेयं मेदिनीति बभूव ह ॥२१॥
किमन्यत् कथयाम्यद्य तद् भवान् वक्तुमर्हसि ॥२२॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः।

## अथ तृतीयोऽध्यायः

**शौनक उवाच—**

जम्बुद्वीपस्य माहात्म्यं प्रमाणं कथितं त्वया।
यानि तीर्थानि ये देशा यथावत् परिकीर्तिताः ॥ १ ॥
अङ्गबङ्गकलिङ्गाश्च शूरसेनाश्च केरलाः।
महाराष्ट्रास्तथान्ध्राश्च कार्णाटा कुङ्कुणास्तथा ॥ २ ॥
मागधाश्च कुरूषाश्च विदेहाः कैंकणाश्च ये।
कौशलाः कुरवश्चैव चैद्या द्रविडपुण्ड्रकाः ॥ ३ ॥
कुन्तिभोजप्रभृतयः सर्वे ते परिकीर्तिताः।
मेदपाटं कथं प्रोक्तं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ४ ॥

**सूत उवाच—**

जम्बुद्वीपस्य मध्ये तु जातं दारुवनं महत्।
सदाफलं सदापुष्पं कान्तं चैव वनं महत् ॥ ५ ॥
वसन्ति तत्र मुनयः सदा संयममास्थिताः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कश्यपः ॥ ६ ॥
वशिष्ठो ह्यङ्गिरास्त्वत्रिः पुलस्तिश्च तपोधनाः।
न तत्र वातदण्डः स्यान्न शोषयति भास्करः ॥ ७ ॥
कामवर्षी सदा मेघो न चाग्निस्तत्र बाधते।
सत्त्वानां न विरोधोऽस्ति मैत्रीं सत्त्वानि भेजिरे ॥ ८ ॥
मुनीनां नियमान् मत्तः शृणुष्वावहितो द्विज।
सदा त्रिषवणस्नाताः सदाशौचा दयालवः ॥ ९ ॥
पञ्चयज्ञरता नित्यं नित्यं चातिथिपूजकाः।
पितृदेवमनुष्याणां सदा तृप्तिकरा मुने ॥१०॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्था वर्षासु स्थण्डिलेशयाः।
आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपस्युग्रे व्यवस्थिताः ॥११॥
एकाशिनो निराहारा दन्तकुट्टाश्मकुट्टकाः।
पर्णाशिनोऽम्बुभक्षाश्च वायुभक्षास्तपस्विनः ॥१२॥
तद्वनं मुनिभिः पूर्णं शुशुभे मुनिसत्तम।
एकदा तद्वनं प्राप्य (प्राप्तः) शङ्करः पार्वतीयुतः ॥१३॥
भावित्वात् पार्वती देवी शङ्करं वाक्यमब्रवीत्।

**देव्युवाच—**

तत्ते शम्भो वनं रम्यं मुनीनामिव मानसम्।
ऋषिपत्न्यः प्रकाशन्ते पातिव्रत्यं समाश्रिताः ॥१४॥

पतिभक्तिपरा नित्यं नित्यं पतिपरायणाः ।
चित्तमासां यथा भ्रश्येत्तथा कार्यं त्वया विभो ॥१५॥

**ईश्वर उवाच—**

मैवं वदस्व कल्याणि ब्रह्मतेजो महत्तरम् ।
शपेयुर्मां महाकोपादकृत्यं क्रियते कथम् ॥१६॥

**देव्युवाच—**

यदि कृत्यमकृत्यं वा क्रियतां वचनान्मम ।
कथं शपेयुर्मुनयो भवन्तं विश्वरूपिणम् ॥१७॥

**सूत उवाच—**

इत्यादिष्टो जगन्नाथः कामरूप इवाभवत् ।
संविन्मयो ह्यरुणभानुसहस्रकान्तिः
पाशाङ्कुशप्रवरकार्मुकपञ्चबाणान् ।
ध्येयस्त्रिलोकविजयी स्वकरैर्दधानः
श्रीसुन्दरो मणिविभूषणभूषिताङ्गः ॥१८॥
विचचार वने तस्मिन् मुनीनां भावितात्मनाम् ।
कुशेध्माहरणे याताश्चैकचित्ता बभूविरे ॥१९॥
वृद्धास्तरुण्यो मोहेन तद्दर्शनपरायणाः ।
चित्तमासां समादाय जगामादर्शनं विभुः ॥२०॥
मुमूर्च्छुस्ता मुहुः स्वस्था ददृशुश्च दिशो दश ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् मुनयस्ते समागताः ॥२१॥
स्वपत्न्यो विधुरा दृष्टाः प्रोचुस्ते च परस्परम् ।
ध्यानेन कारणं ज्ञात्वा सर्वे चैकमते स्थिताः ॥२२॥
अशपन् शङ्करं देवं क्रोधयुक्तास्तपस्विनः ।
यस्मान्मोहयसे शम्भो भार्याचारित्रमाश्रिताः ॥२३॥
अस्मच्छापान्महीपृष्ठे तव लिङ्गं पतिष्यति ।
एवं शप्तो मुनिगणैर्गतः शम्भुर्यथागतः ॥२४॥
नातिव्यग्रा मुनिगणास्तेपुस्ते परमं तपः ।

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

## अथ चतुर्थोऽध्यायः

**वायुरुवाच—**

अथ तारकनामाऽभूद् दैत्यः परमकोपनः ।
लुप्ताधिकारास्त्रिदशास्तेनेशं शरणं गताः ॥ १ ॥

तुष्टुवुः संयता देवास्तं देवं वृषभध्वजम् ।
पुत्रार्थं दैत्यनाशाय गौर्या चैकान्तमास्थितम् ॥ २ ॥
भित्त्वा ते समयं देवा औत्सुक्याच्च समागमन् ।
पिनाकी तान् स्थिरान् दृष्ट्वा त्यक्त्वा तल्पं समुत्थितः ॥३॥
ततो रेतोऽपतत्तस्य तद्रेतोऽग्निरगृह्यत ।
पारावतेन रूपेण जाह्नव्यामुत्क्षिपन् स ह ॥४॥
ततो देवी विरेतस्कं शङ्करं वीक्ष्य चामरान् ।
गर्भहीनेति मत्वा सा व्यशपत्तान् दिवौकसः ॥ ५ ॥
यस्माद्रहोषितं शम्भुं याचितारोऽत्र बालिशाः ।
अहं गर्भेण हीनाऽथ कृता काठिन्यमाश्रितैः ॥ ६ ॥
तस्मादपत्यरहिता आरभ्येतो भविष्यथ ।
काठिन्यादचिरादुर्व्यां दृषत्त्वं प्राप्स्यथामराः ॥ ७ ॥
यदीश्वरोऽपि मां त्यक्त्वा भवदन्तिकमागतः ।
अतो मुनिगणैः शप्तो लिङ्गभ्रंशो भविष्यति ॥ ८ ॥
तदद्य सत्यतां यातु मम शापान्न संशयः ।

सूत उवाच—

ततो हाहा कृते शब्दे देवानां सर्वतो दिशि ।
वासुदेवो जगद्धात्रीं सान्त्वयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

कोपं मातः संहराशु त्वदीयः पुत्रो भावी जाह्नवीतीरसंस्थः ।
सेनानीस्ते भाव्यसौ शत्रुहन्ता गाङ्गेयो वै वह्निभूः षण्मुखो यः १०

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ।

## अथ पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच—

अनुनीता तदा ब्रह्मन् वासुदेवेन चण्डिका ।
त्यक्त्वा शोकं सुतं लब्ध्वा नारायणमुवाच ह ॥ १ ॥

देव्युवाच—

नानृतं वचनं मेऽद्य यथा भवति मारिष ।
तथा कार्यं मया विष्णो शापो हि दुरतिक्रमः ॥ २ ॥
मेदिनी मेदसां पूरैः पूर्णा सम्प्रति वर्तते ।
मान्धातुश्चेति नगरी शुभकर्यतिसुन्दरी ॥ ३ ॥

लिङ्गं पततु तत्रास्य न चिरात् शङ्करस्य च।
देशेऽस्मिन् कण्टकाख्ये तु तूलराशाविव स्फुटम् ॥ ४॥
भूमिं भित्त्वाऽथ तत्रापि पातालं तद्गमिष्यति।
मेदपाटे पुनर्धन्वा स्मृतं प्रादुर्भविष्यति ॥ ५॥
पाषाणत्वं सुरा यान्तु लिङ्गस्यास्य समीपतः।
कुटिलत्वादियं गङ्गा मम गर्भापहारिणी ॥ ६॥
कुटिलेति नदी तस्मात्तत्समीपे भविष्यति।
सर्वतीर्थानि सरितः सागराश्च दिवौकसः ॥ ७॥
मुनयो गणगन्धर्वा उरगाश्च सहस्रशः।
लिङ्गाभ्यर्णे भविष्यन्ति शापानुग्रहकारणात् ॥ ८॥
नारायणोऽथ भविता गण्डक्यां मुनिपूजितः।
विशेषेण कलौ प्राप्ते शालग्रामाख्यतां गतः ॥ ९॥
यादृशं यस्य देवस्य रूपमायुधवाहनम्।
तादृशीं दार्षदीं मूर्तिं प्राप्य पूज्या भविष्यथ ॥१०॥
ये मानवा भवन्मूर्तिमर्चयिष्यन्ति सर्वदा।
शिष्येभ्यः सहिता विप्राः क्षत्रवैश्याश्च भक्तितः ॥११॥
तेषां यथा यथाकामं पूरयध्वं दिवौकसः।
कलौ न दृष्टिविषयं देवा यास्यन्तु कर्हिचित् ॥१२॥
तस्मान्मानवपूजाभिः प्रीताः कामान् प्रयच्छथ।
अहं स्नेहार्चितं लिङ्गं परिवेष्ट्य समन्ततः ॥१३॥
स्थास्यामि भक्तलोकस्य चतुर्वर्गफलप्रदा।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणा सर्वाभरणभूषिता ॥१४॥
रक्तवस्त्रपरीधाना सदा षोडशवार्षिकी।
अपरां मूर्तिमास्थाय विन्ध्यवासेति विश्रुता ॥१५॥
सर्वकामप्रदा देवी कुटिलातीरवासिनी।

**सूत उवाच—**

तथेत्युक्त्वा प्रणम्यैनां देवा जग्मुर्यथागताः।
सापि देवी मेदपाटे स्थानं चक्रेऽतिसुन्दरम् ॥१६॥
शापस्यानुग्रहं कृत्वा प्रत्येवं सा दिवौकसः।
विन्ध्यवासाऽभवद्देवी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥१७॥
इत्येतत् कथितं ब्रह्मन् किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥१८॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः।

## अथ षष्ठोऽध्यायः

**शौनक उवाच—**

विचित्रमिदमाख्यानं त्वयोक्तं सूतनन्दन ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तराद् वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
कथं तदपतल्लिङ्गं शङ्करस्य महात्मनः ।
कस्मिन् देशे महाभाग कथ्यतामनुपूर्वशः ॥ २ ॥

**सूत उवाच—**

ततोऽपतच्छङ्करस्य लिङ्गं तस्य महात्मनः ।
ब्रह्मशापान्मुनिश्रेष्ठ कम्पयत् सकलं जगत् ॥ ३ ॥
चचाल वसुधा देवी सशैलवनकानना ।
सूर्यबिम्बमिव व्योम्नो वज्रं शक्रकरादिव ॥ ४ ॥
उल्केव नभसस्तूर्णं धूम्रकेतुरिवापरः ।
विद्युज्ज्वालेव नभसो मेरुश्रृङ्गमिव च्युतम् ॥ ५ ॥
ब्रह्माण्डमिव कल्पान्ते यथा भौम इव ग्रहः ।
चकिता विस्मिता दृष्ट्वा किमेतदिति ऊचिरे ॥ ६ ॥
देवासुरमनुष्यैश्च यक्षविद्याधरोरगैः ।
भ्रमद्वात्याभिसंयुक्तैः पतन्नक्षत्रसंयुतैः ॥ ७ ॥
दिशोऽचलन् विकम्पेन प्राचलन्मकरालयाः ।
पतितं तस्य तल्लिङ्गं पातालमगमत् क्षणात् ॥ ८ ॥
पतिते शङ्करो देवो व्रीडापीडासमन्वितः ।
गोलोकमगमच्छीघ्रं गर्भवासाय स प्रभुः ॥ ९ ॥
तत्र गर्भगतो धेनौ स्रष्टा यो जगतां प्रभुः ।
कामधेनुस्ततो जज्ञे नीलं वृषभसंज्ञकम् ॥१०॥
लोहितोऽथ सुवर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डु रः ।
श्वेतं (तः) खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥११॥

**वायुरुवाच—**

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नन्दिनं प्रथमं बाष्पं सृजन्ती तमुवाच ह ॥१२॥
यस्माद् बाष्पं सृजाम्यद्य वियोगाच्छङ्करस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मे शापाद् बाष्पो राजा भविष्यसि ॥१३॥
कलौ प्राप्ते द्विजाग्र्याणां कुले महति पूजिते ।
तव वंशस्य विच्छित्तिर्न कदाचिद् भविष्यति ॥१४॥

आराध्य तं जगन्नाथं तीर्थे नागह्रदे शुभे ।
राज्यं शक्र इव प्राप्य ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥१५॥
तव वंश्याः शनैश्चाथ वर्णाश्रमविनिन्दकैः ।
संसर्गाद् धर्मरहिताः श्रुत्युक्ताचारगर्हकाः ॥१६॥
शूद्रा एव भविष्यन्ति शूद्ररूपः कलिर्यतः ।
जयां च विजयां प्राह देवी बाष्पाकुला सती ॥१७॥
जये त्वं वर्णनाशाच्च वर्णनासा सरिद्वरा ।
भविष्यसि कलौ प्राप्ते मेदपाटेऽघनाशिनी ॥१८॥
विजयां चाशपद् देवी क्रोधेन कलुषानना ।
गाम्भीर्यरक्षणे त्यक्ते गम्भीरा त्वं नदी भव ॥१९॥
मा कुरुष्वेत्यतः कोपमित्युवाच सरिद्वरा ।
तां शशापातिरोषेण कुटिलेति सरिद्भव ॥२०॥

गङ्गोवाच—

किमर्थं मां शपस्यद्य सखि शङ्करवल्लभे ।
हितोपदेशदां देवि शापान्मोचय सुन्दरि ॥२१॥

पार्वत्युवाच—

एकलिङ्गस्य पुरतो वारुण्यां दिशि नित्यशः ।
प्रवाहेण प्रवर्तस्व लोकानां च हिताय वै ॥२२॥
तत्र त्वं त्रिकुटागेन्द्रमध्ये धारास्वरूपिणी ।
निःसर स्वर्गसंसिद्ध्यै त्वन्माहात्म्यं भविष्यति ॥२३॥
तत्राविच्छिन्नधारा ते दानहोमजपादिकम् ।
करिष्यत्यक्षयं सर्वं शम्भोः सान्निध्यदं सदा ॥२४॥
तत्रैकलिङ्गसामीप्ये कुटिले ते सहस्रशः ।
धाराश्च सम्भविष्यन्ति प्रायशो गुप्तभावतः ॥१५॥
कूपे वाप्यां च नद्यां च सरसि निर्झरे तथा ।
गुप्तभावं समासाद्य वर्तयिष्यन्ति सर्वतः ॥२६॥
तत्र धारेश्वरं तीर्थं त्वन्नाम्ना सम्भविष्यति ।
तत्र यो मातृपितॄणां तर्पणं च करिष्यति ॥२७॥
तस्य ते पितरस्तुष्टा दास्यन्ति पुत्रपौत्रकान् ।
वैशाखे तु विशेषेण पूर्णिमायां विधानतः ॥२८॥
यास्यन्त्यमुक्ताः सन्मुक्तिं गयापिण्डप्रदानतः ।
किं बहूक्तेन मेदिन्यां गङ्गासागरसङ्गमात् ॥२९॥
विन्दन्ते यां गतिं लोकाः सा गतिस्तत्र तोयतः ।

भूमण्डलमभिव्याप्य तोयेनान्तःप्रवर्तिनी ॥३०॥
पुनीष्व सर्वतीर्थानि राहुस्पर्शे विशेषतः ।

सूत उवाच—

एवं सा स्वगणान् शप्त्वा गोधामारुह्य सत्वरम् ।
सुधाढ्यकलशं हस्ते गृहीत्वा द्विजसत्तम ॥३१॥
भक्तत्राणपरा नित्यं वरमालां करद्वये ।
कृत्वा चान्येन हस्तेन वरं दातुमिहैव सा ॥३२॥
सर्वालङ्कारसंयुक्ता सर्वदेवनमस्कृता ।
रक्ताम्बरधरा देवी पार्वती सुमहत्तपः ॥३३॥
विन्ध्याद्रिशिखरे रम्ये तीर्थे नागह्रदे शुभे ।
चचार लोकजननी लोकानां हितकाम्यया ॥३४॥
एकलिङ्गस्य चाभ्यर्णे विधिना न परेच्छया ॥३५॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

## अथ सप्तमोऽध्यायः

शौनक उवाच—

ततः किमभवत्सूत धेनौ जाते वृषे शिवे ।
विन्ध्याद्रौ विन्ध्यवासायां गतायां तद्वदस्व नः ॥ १ ॥
कौतूहलमिदं सूत नारदाय महात्मने ।
वायुनोदीरितं यादृक् तादृग् नो वद विस्तरात् ॥ २ ॥

सूत उवाच—

कामधेन्वां हरे जाते सर्वे देवाः सवासवाः ।
सगणाः सहगन्धर्वा ऋषिभिः पन्नगैर्युताः ॥ ३ ॥
तुष्टुवुस्तत्र गत्वा ते सुरभीं (भिं) नीलसंयुताम् ।
प्रणम्य शिरसा धेनुं कामदोग्ध्रीं यशस्विनीम् ॥ ४ ॥
ताम्रकर्णां च कपिलां पीनोघ्नीं पीवरस्तनीम् ।
द्वितीयेन्दुसमां लेखां ललाटे बिभ्रतीं सदा ॥ ५ ॥
बालेन्दुनेव सहितां सन्ध्यां पापप्रणाशिनीम् ।

सूत उवाच—

देवाः सिद्धाऽथर्षयस्तां प्रणेमुर्मातर्विश्वं पाहि पाहीत्युदीर्य ।
रुद्राणां वै वेदमाता वदन्ति सा नो धेनुः सर्वलोकस्य माता ॥ ६ ॥

अब्धौ जातां मन्थने रत्नहेतोः प्राहुश्चैके दक्षपुत्रीति भूयः ।
द्रोणोद्भूतां केचिदन्ये वदन्ति शश्वद्भूतां त्वां परे ज्ञानवन्तः ॥ ७ ॥

सूत उवाच—

एवं देवान् स्तूयमानान् विलोक्य हृष्टा वाक्यं व्याजहाराथ विद्वन् ।

धेनुरुवाच—

किं वः कार्यं करणीयं यदस्ति तन्नो देवा वीतशङ्का वदन्तु ॥८॥
नाहं दोग्ध्री केवलं पायसानां सर्वान् कामान् दातुमिच्छामि तुष्टा ।
यो यः कामो यस्य यस्यास्ति देवास्तं तं कामं प्रार्थयध्वं समेताः ॥९॥

सूत उवाच—

एवमुक्ते तया धेन्वा मुमुदुस्ते दिवौकसः ।
प्रणम्य तां जगद्धात्रीमूचिरे वचनं तदा ॥१०॥

देवा ऊचुः—

शङ्करस्यापि तल्लिङ्गं तीर्थे चामरकण्टके ।
मुनिशापाज्जगन्मातः पातालमगमत्क्षणात् ॥११॥
नीलग्रीवस्त्वयि जातो नीलो वृष इति श्रुतः ।
अतो माता च रुद्राणामस्माकं तु पितामही ॥१२॥
लिङ्गमुद्धर कल्याणि पातालाद् भुवनेश्वरि ।
भुवस्तले तु तल्लिङ्गं स्थितिमाप्नोति सुन्दरि ॥१३॥
तथा कार्यं च पार्वत्या वचनाद् दार्षदं भवेत् ।
श्रुत्वैतद्वचनं धेनुर्वाक्यं तान् प्रत्यभाषत ॥१४॥
मेदोऽस्थिपूरितां भूमिं मत्वा दैत्यवरस्य ह ।
कृष (श) या पातितं लिङ्गं पार्वत्याऽमरकण्टके ॥१५॥
पातालमगमत्, शीघ्रमुद्धरिष्ये दिवौकसः ।
गच्छन्त्वथ पुनर्देवा ऋषिकिन्नरपन्नगाः ॥१६॥
प्रदेशं कथयाम्यद्य सुकुमारं च पावनम् ।
मेदसां पाट इत्यासीद् देशो लोकेषु विश्रुतः ॥१७॥
मेदपाट इति ख्यातः कोमलस्तूलराशिवत् ।
तत्र गच्छाम्यहं देवाः स्थाने नागह्रदे शुभे ॥१८॥
भवद्भिस्तत्र भाव्यं वै दार्षदीमूर्तिभिः सह ।
शापो भवान्याः सत्योऽस्तु मा विलम्बं कृथाः सुराः ॥१९॥

सूत उवाच—

ततो ययौ कामदुधा जयवाद्यादिपूजिता ।
मेदपाटमनुप्राप्य तीर्थे नागह्रदे शुभे ॥२०॥

सर्वतीर्थमयं ब्रह्मन् सर्वदेवमयं शुभम् ।
नानापुष्पलताकीर्णं मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥२१॥
किं बहूक्तेन सर्वेष्टदायि नित्यं न संशयः ।

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

## अथाष्टमोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

सर्वगस्त्वं सदा वायो सततं पश्य मेऽनघ ।
कियन्तो देवतास्तत्र दार्षदीं मूर्तिमाश्रिताः ॥ १ ॥
तेषां पराक्रमं चापि पृथक्त्वेन वदस्व मे ।

**वायुरुवाच—**

भवान्या वचनाद् ब्रह्मन् सर्वे पाषाणतां गताः ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च शक्रो वैश्रवणो यमः ।
वरुणो वायुरग्निश्च ग्रहाः सर्वे सतारकाः ॥ ३ ॥
सिद्धा गणाश्च गन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साध्याश्च मुनयः सर्वे दार्षदीं प्राप्नुवंस्तनुम् ॥ ४ ॥
पर्वताः पर्वतेष्वासन् मेरुप्रभृतयोऽचलाः ।
पारिजातादयो वृक्षा वृक्षेषु स्थितिमाप्नुयुः ॥ ५ ॥
गङ्गाद्याः सागराद्याश्च वापीकूपसरित्सु च ।
सर्वं जगदिदं दृश्यं तत्रासीद् यत्र शङ्करः ॥ ६ ॥
तेऽप्यूचुस्तां तदा सर्वे सुन्दरीं शिववल्लभाम् ।
त्वद्वाक्यादेव श्रीमातः सर्वे दार्षत्त्वमाश्रिताः ॥ ७ ॥
त्वमप्यस्मिन् प्रदेशे वै दार्षदीं मूर्तिमाश्रिता ।
वरदा भव सर्वेषां लोकत्राणहितेऽनघे ॥ ८ ॥

**श्रीदेव्युवाच—**

स्थास्यामि वो यथाभीष्टमेकलिङ्गस्य सन्निधौ ।

**सूत उवाच—**

तत्र गत्वा तु सा धेनुः सर्वदेवसमन्विता ।
सस्मार शङ्करं देवं पयःप्रस्रवणी तदा ॥ ९ ॥
मातृस्नेहादतो ब्रह्मन् शङ्करस्य महात्मनः ।
पातालादुत्थितं लिङ्गमेकलिङ्गमिति श्रुतम् ॥१०॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि भजतां सर्वसिद्धये ।
ज्वलद्वह्निप्रतीकाशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥११॥

पातालादेव निष्क्रान्तं दिव्यं रत्नचयत्विषम् ।
बडवाया मुखादेव बडवानलमुत्थितम् ॥१२॥
वहद्गङ्गाम्भसः स्रोतः शशाङ्ककृतशेखरम् ।
सुरभीपयसा स्नातममृतेनेव सिञ्चितम् ॥१३॥
गजचर्मपरीधानं महावृषभवाहनम् ।
भस्मालिप्तं चलत्सर्पकुण्डलाङ्गदभूषणम् ॥१४॥
पञ्चवक्त्रं चतुर्बाहुमुमया सहितं प्रभुम् ।
शूलं कपालं वरदं त्रिनेत्रमभयप्रदम् ॥१५॥
दिव्याम्बरस्रगालेपदिव्याभरणभूषितम् ।
कस्तूर्यगरुकर्पूरकुङ्कुमोदकचन्दनैः ॥१६॥
मृगमदादिकैर्दिव्यैर्दिव्यभूषणविग्रहम् ।
रत्नसिंहासने दिव्ये विमानान्तर्गतं शिवम् ॥१७॥
श्रिया च परया युक्तं सर्वलोकहिते रतम् ।
प्रेक्ष्य तं मुदिता देवा जयपूर्वं प्रणम्य च ॥१८॥
पुष्पवृष्टिं तदा चक्रुर्वादित्राणि त्ववादयन् ।
मृदङ्गपणवाः शङ्खा भेरीदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥१९॥
झल्लरीपटहादीनि वादित्राणि प्रदध्मिरे ।
सरितो मार्गवाहिन्यो दिशो नैर्मल्यमाययुः ॥२०॥
सुखस्पर्शस्तथा वातो बभूव विमलं नभः ।
शुभमासीज्जगत्यस्मिन्नाविर्भूते जगत्पतौ ॥२१॥

**सूत उवाच—**

अथ देवा नमस्कृत्य शङ्करं लोकशङ्करम् ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरर्थ्याभिर्बृहस्पतिपुरोगमाः ॥२२॥

**देवा ऊचुः—**

लोकानां त्वं सृष्टिकर्ता महेशः
पाताऽमीषां भुवनानां हिताय ।
सर्वस्यादिस्त्वं न कोऽपि त्वदादि-
रीशो नेशस्त्वदृतेऽन्योऽस्ति भूयः ॥२३॥
स्थूलः सूक्ष्मो व्यक्तव्यक्तेतरश्च
दीर्घत्वेऽपि त्वं गुरुत्वे वृतोऽसि ।
त्वं वै वन्द्यो नो तवैवास्ति वन्द्य
आराध्यस्त्वं न त्वदाराधनीयः ॥२४॥

धाता विश्वस्यापि धाता न तेऽस्ति
पाता लोकस्यापि पाता न तेऽभूत् ।
संहर्ता त्वं संहरेत्त्वां न कश्चित्
सर्वज्ञस्त्वं सर्वदा सर्वगोऽसि ॥२५॥

विद्यां वेत्थ त्वां न विद्या विदन्ति
दाता त्वं वै नैव दाता तवास्ति ।
स्तुत्यो लोके स्तुत्य एवास्ति नो ते
पूज्यो लोके नैव पूज्यस्तवास्ति ॥२६॥

त्वं वै ब्रह्मा विष्णुरूपोऽमरेन्द्र–
स्त्वं वै सूर्यस्त्वं च सोमो नभस्वान् ।
पृथ्वी व्योम ह्यग्निरूपः प्रचेता
भूतात्मा त्वं विश्वरूपस्त्वमेव ॥२७॥

एतन्मुक्त्वा पावनं नैव कश्चिद्
भोज्यं भोक्ता ज्ञानवान् ज्ञानमग्र्यम् ।
शास्ता शास्यं सृष्टिकर्ता च सृज्यं
हव्यं होता यज्ञयाज्यस्त्वमाहुः ॥२८॥

एतद् हीनं विद्यते नैव किञ्चिद्
हीनस्त्वं वा केनचिन्नैव शम्भो ।
विद्यापूर्णस्तद्गुणैस्तानपूर्णं (गुणैः स्तादपूर्णः)
सर्वं पश्ये[स्]त्वां न पश्यन्ति केचित् ॥२९॥

विश्वं तेऽन्तस्त्वं न तस्यान्तरीश
तस्यादिस्त्वं नैव किञ्चित्तवादिः ।
आधारस्त्वं न त्वदाधारतास्ति
विश्वं रूपं नैव रूपं तवास्ति ॥३०॥

एको रुद्रो न द्वितीयस्तथाऽऽहुः
पाताले वा चान्तरिक्षे च नाके ।
वृक्षे तोये खे तडित्तोयदेषु
कूपे वाथो सागरे ह्रत्सरित्सु ॥३१॥

देशे देशे लिङ्गरूपेण सर्वं
गुहापाथः पर्वतेष्वाटवीषु ।
क्षेत्रे सस्ये सर्ववस्तुस्वरूपं
विश्वं धत्से सर्वमूर्त्ते नमस्ते ॥३२॥

सर्गादौ ये कर्मकारादयोऽपि
शिल्पा ये त्वां नित्ययुक्ता यजन्ते ।
आसंख्येयैरात्मभिश्चैव सृष्टा
यज्या [ : ] पुत्रा औरसा विश्वमूर्ते ॥३३॥

तथा विप्रान् क्षत्रियान् वैश्यशूद्रान्
अन्यान् स्वे स्वे कर्मणि त्वं नियु(यो)ज्य ।
राज्ञो नीत्या पालने यत्प्रजानां
चातुर्वर्ण्यं वेदमार्गे निवेश्य ॥३४॥

ये ये भक्त्या त्वामुपासन्त ईश
नेशं पापा मन्यमानाः कुतर्कैः ।
ते ते स्वैः स्वैः कर्मभिः पुण्यपापै–
र्लिप्यन्ते वै नाभवत्तेष्वभेदः ॥३५॥

त्वं वै ज्येष्ठो नैव ज्येष्ठास्तु ते ते
वाचामीशस्त्वं न ते वाच ईशाः ।
काव्ये काव्ये त्वं कविर्नैव चान्यः
कस्ते विन्द्यादेवमन्यो (मन्तं) महिम्नः ॥३६॥

दुष्टान् सर्वान् संहराश्वेकलिङ्ग
पुष्पैर्बाणैः पञ्चकैराशु शम्भो ।
म्लेच्छान् पापान् धर्ममार्गस्य शत्रून्
बद्ध्वा शीघ्रं नागपाशेन दूरे ॥३७॥

क्षिप्त्वा सर्वा देवताः सौम्यरूप
त्राहि प्रीत्या सेवकान् विश्वमूर्ते ।
संसाराब्धौ पातितं विश्वमीक्ष्य
धृत्वा हस्ते चाङ्कुशं तेन पाहि ॥३८॥

**सूत उवाच—**

एवं स्तुतश्चामरैरेकलिङ्गः
प्रीतो देवान् व्याजहारेति वाणीम् ।
यस्माच्छप्ता हैमवत्या भवन्तो
वस्तव्यं मे सन्निधाने भवद्भिः ॥३९॥

**श्रीमदेकलिङ्ग उवाच—**

दार्षदीं मूर्तिमास्थाय वस्तव्यमकुतोभयैः ।
इह वासोऽस्तु देवानां मत्समीपे समन्ततः ॥४०॥

कुटिलायां च विधिना स्नात्वा इन्द्रसरस्यथ ।
वृषं पूर्वं समभ्यर्च्य द्वारदेशे विधानतः ॥४१॥
मत्पूजानन्तरं पूज्या यूयं चात्र मदाज्ञया ।
मदावृत्तित्वमायातु मद्भक्तानां हिताय वै ॥४२॥
अर्चयिष्यन्ति भक्त्या ये मानवा भुवि मत्पराः ।
तेषां कामान् प्रयच्छध्वं भुक्तिमुक्त्यादिकान् बहून् ॥४३॥
गीतैर्नृत्यैस्तथा वाद्यैर्धूपगन्धानुलेपनैः ।
दीपैश्च बलिनैवेद्यैः सुमनोभिः सुगन्धिभिः ॥४४॥
ददध्वं तेषु कामांश्च भुक्तिमुक्त्यादिकांस्तथा ।
सदा मूर्तिषु वस्तव्यं नान्यलोष्टेषु देवता (:) ॥४५॥
रेवामृते गण्डकीं वा एष वोऽनुग्रहः कृतः ।

सूत उवाच—

ततोऽब्रवीत्स तां धेनुमेकलिङ्गो जगत्पतिः ॥४६॥

श्रीमदेकलिङ्ग उवाच—

यस्मात् स्मृतो भवत्याऽहं पातालादिह सुव्रते ।
तस्माद् भवस्व रुद्राणां माता त्वं वचनान्मम ॥४७॥
चरस्व जगतीं कृत्स्नां जम्बुद्वीपे विशेषतः ।
न च प्राप्स्यन्ति मां लोका एकलिङ्गं विदूरतः ॥४८॥
बहुलिङ्गं तु मां धेनो कुरुष्व वचनान्मम ।
अविच्छिन्नप्रसूतिस्त्वं वरदानाद् भविष्यसि ॥४९॥
इति तस्यै वरान् दत्वा मातृस्नेहात् स्तुतिं व्यधात् ।
अधीशोऽपि परानन्द एकलिङ्गो जगत्पतिः ॥५०॥
त्वं धेनो पावनी सत्यं स्नानं त्वत्पादपांशुना ॥५१॥
दुग्धं मूत्रं गोमयं वै घृतं च दध्ना युक्तं पञ्चगव्यं वदन्ति ।
त्वत्सम्भूता धेनवो या भवेयुर्यज्ञानां ता अग्र्यमङ्गं प्रधानम् ॥५२॥
सीमायां त्वं शासने ब्राह्मणानां मूर्ति प्राप्यालङ्घनीया भवस्व ।
क्षेत्रे ग्रामे देवदायेऽथ सीम्नि त्वामुल्लङ्घ्य ब्रह्मघ्नास्ते भवन्ति ॥५३॥
ये वै पापा गोचरं रोधयन्ते ते ते यान्ति तामसा रौरवं वै ।
धेनुग्रासं यो ददाति द्विजो वै भक्त्या नित्यं प्रीतये कामधेनो ।
स स्यात् सत्यं सर्वसम्पत्प्रदायी भोक्ता भोगान् धैनवं प्राप्य लोकम् ॥५४॥
तृणमन्नजलं यद्यत्तत्सर्वं स्वल्पमप्युत ।
स विधूयेह पापानि प्रेत्यानन्दसुखं लभेत् ॥५५॥

अवध्या त्वं भवस्वाद्य गच्छ कामगतिः सुखम् ।

**सूत उवाच—**

एवमुक्ता ततो धेनुस्तमापृच्छ्य सुरेश्वरम् ॥५६॥
जगाम त्वरिता देवी तीर्थं चामरकण्टकम् ।
गत्वा सा पूर्वविधिना स्मृतो देवो वृषध्वजः ॥५७॥
( ऽस्मरद् देवं वृषध्वजम् )
उत्तस्थौ भगवान् रुद्रो अमरेश इति प्रभुः ।
कुण्डमध्यान्महादेवः प्रादुर्भूतो जगद्धितम् (तः) ॥५८॥
तस्मिन् कुण्डे नर्मदा च ज्योतिष्मत्यथ सर्वदा ।
शोणभद्र इति ख्यातो नदो हिरण्यगर्भजः ॥५९॥
प्रत्यक्षतां हितार्थाय अद्यापि मुनिसत्तम ।
वर्तन्ते तत्र चान्येऽपि दृषद्रूपा दिवौकसः ॥६०॥
तस्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा चतुर्वर्गानवाप्नुयात् ।
ततो ययौ कामधेनुर्यमोङ्कारं विदुर्बुधाः ॥६१॥
ऊँकारे यो नरः स्नात्वा रेवाकपिलसङ्गमे ।
पितॄन् सन्तर्प्य विधिना श्राद्धं यः कुरुते शुचिः ॥६२॥
नमस्कृत्य तथोंकारं ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
वाराणस्यां जले मुक्तिरुज्जयिन्यां जले स्थले ॥६३॥
मञ्चस्थोऽपि न मञ्चस्थ ॐकारेऽमरकण्टके ।

**शौनक उवाच—**

ॐकारादथ सा धेनुः क्व गता सूतनन्दन ॥६४॥
शृण्वन्न मे मनस्तुष्टिमुपयाति कुतूहलात् ।

**सूत उवाच—**

संक्षेपाद् वच्मि ते ब्रह्मन् कामधेनुर्यथा यथा ॥६५॥
चचार पृथ्वीमेनां सप्तकृत्वः प्रदक्षिणा (:) ।
ततोऽगमन्महाकालमुज्जयिन्यां च पूर्ववत् ॥
गोवर्द्धनं ततो गत्वा गोदावर्यास्तटे शुभे ॥६६॥
ततोऽगच्छत्कपालेशं रामलक्ष्मणसंयुतम् ।
सीतया सहितं रामं गोदावर्यास्तटे पुनः ।
ततो ब्रह्मगिरिं गत्वा त्र्यम्बकं चागमत् पुनः ॥६७॥
सोमनाथं च सौराष्ट्रे सरस्वत्यास्तटे पुनः ॥६९॥

कामधेनुस्तमामन्त्र्य ययौ द्वारवतीं पुनः ।
ततोऽगच्छत् सरस्वत्यां रुद्रं द्रष्टुं महामते ॥
अर्बुदं च ततो गत्वा शारणेश्वरमेव च ॥६८॥
ततो जगाम केदारं स्मर्तुकामा पिनाकिनम् ।
गङ्गाकूलद्वयं तीर्त्वा प्रयागमगमत् क्षणात् ॥७०॥
दृष्ट्वा च माधवं देवं वाराणस्यां ययौ पुनः ।
विश्वनाथं ततो दृष्ट्वा कोटिलिङ्गानि तत्र सा ॥७१॥
या पुरी भूमिसंस्थाऽपि त्रिशूलस्थेति गद्यते ।
यस्यां तु जन्तवः प्राणांस्त्यक्त्वा मोक्षं व्रजन्ति हि ॥७२॥
अनन्तान्येव लिङ्गानि ततोऽदर्शत् ( पश्यत् ) सहस्रशः ।
बाहुल्यान्नैव कथ्यन्ते संक्षिप्य कथितं मया ॥७३॥
एवं सा कामधेनुश्च चचार पृथिवीमिमाम् ।
सप्तकृत्वो भगवती तमापृच्छ्य खमुद्ययौ ॥७४॥
इति सम्यक् कामधेनोश्चरित्रं कीर्तयेत्तु यः ।
शृणुयाद्वा प्रयत्नेन सर्वानिष्टानवाप्नुयात् ॥७५॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये
कामधेनुवरदानो(नं)नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

## अथ नवमोऽध्यायः

**सूत उवाच—**

तस्यां धेनौ गतायां च गोलोकं शङ्करः प्रभुः ।
देवस्तान् स्थापयामास मूर्तिभिः स्वसमीपतः ॥ १ ॥

**ईश्वर उवाच—**

भवद्भिरिह वस्तव्यं मेदपाटे विशेषतः ।
जम्बूद्वीपेऽथ वै देवा यत्र यस्य रुचिर्भवेत् ॥ २ ॥
ग्रामे ग्रामे तथाऽरण्ये पत्तने खेटपल्लिषु ।
पर्वतेषु च दुर्गेषु मत्समीपे विशेषतः ॥ ३ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रणम्याथ त्रिलोचनम् ।
तद्विसृष्टास्तथेत्युक्त्वा तेऽपि देवाः खमुद्ययुः ॥ ४ ॥

**वायुरुवाच—**

एवं स एकलिङ्गोऽपि बहुलिङ्गोऽभवद्विभुः ।
लोकानां कृपया ब्रह्मन् भक्तानां वरदो हरः ॥ ५ ॥

आराधितः कृतयुगे शक्रेणेह महात्मना ।
नन्दिन्या च तथा धेन्वा त्रेतायां पार्वतीपतिः ॥ ६ ॥
द्वापरे तक्षकेणेह बाष्पहारीतयोः कलौ ।
श्रुत्वैतच्छौनको वाक्यं सूतमाह सविस्मयः ॥ ७ ॥
विस्तरेणेदमाख्यानमनुपूर्वं वदस्व नः ।

सूत उवाच—

वायुना कथितं ब्रह्मन् नारदाय महात्मने ।
तस्माज्ज्ञातं मया पूर्वं मयोक्तं शृणु शौनक ।
त्वष्टा प्रजापतिश्चासीद् देवश्रेष्ठो महातपाः ॥ ९ ॥
स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्रुहमथासृजत् ।
तस्याशयमनु ज्ञात्वा शक्रो बलनिषूदनः ॥१०॥
वज्रं मुमोच पुत्राय त्वष्टुस्त्रिशिरसे रुषा ।
तेन वज्रप्रहारेण छिन्नमूर्द्धाऽभवत् क्षणात् ॥११॥
हते तस्मिन् पिता तस्य पुत्रमन्यमजीजनत् ।
इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्व सदैव मम तेजसा ॥१२॥
एवमुक्तोऽत(भ)वत्पुत्रो वृत्रो नामेति विश्रुतः ।
वृद्धिस्तस्य महत्यासीच्छक्रं जेतुं प्रचक्रमे ॥१३॥
स गत्वा तरसा नाकं शक्रं जित्वाऽमरान्वितम् ।
इन्द्रोऽभूदथ वृत्रोऽसौ कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥१४॥
कृतश्चान्यतमः सूर्यः सोमोऽन्या वह्निरेव च ।
स्वाहाकारवषट्कारै रहितं भूमिमण्डलम् ॥१५॥
दिशो नैव विकाशन्ते विपरीतं तदा जगत् ।
अथ देवाश्च मुनयो गुह्यकिन्नरयक्षकाः ॥१६॥
साध्याः सगणगन्धर्वा बृहस्पतिपुरोगमाः ।
जग्मुर्नारायणं देवं प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥१७॥

देवा ऊचुः—

मत्स्यः कूर्मो वामनस्त्वं नृसिंहो
रामो विष्णुः शूकरो भार्गवश्च ।
दत्तात्रेयो बुद्धरूपोऽथ भावी
कल्किरूपः पालयामास विश्वम् ॥१८॥
भूमेर्भारं त्वदृते कः समर्थो
वोढुं दैत्यान् हन्तुमन्यो न चास्ति ।

मात्स्यं रूपं यो विधायार्णवाम्भ-
स्तूर्णं भित्त्वा सर्वविद्यामयत्वम् ॥१९॥
नावं कृत्वा तत्र विश्वं निधाय
वेदान् यो वै ब्रह्मणे तान् ददौ हि।
कूर्मो भूत्वा स्वस्य पृष्ठे निधाय
क्षोणीं न्यस्य तत्र चैनं शिरस्सु ॥२०॥
विश्वं दध्रे विश्वकर्ता य एकः
कस्ते पारं ज्ञातुमन्यः समर्थः।
कृत्वा रूपं शूकरं यो महात्मा
मग्नां पृथ्वीं हेलयोच्चैश्चचार ॥२१॥
सैंही मूर्त्तिः कशिपुं यो हिरण्य-
पूर्वं दद्रे पाणिजैर्वक्षसीह।
अजो जातो वामनो वामनः सन्
ह्रस्वाद्ध्रस्वं यो विधायाच्छरूपम् ॥२२॥
धाताऽदित्यां पुत्रतां प्राप्यमानः
पाताले वैरोचनं चच्छलेन।
रामेण त्रिःसप्तकृत्वो रुषा तु
हन्तुं क्षत्रं हैहयं वै विजित्य ॥२३॥
ह्रदं कृत्वाऽसृग्भिराशु स्वकीयान्
यो वै पितॄनतर्पयद् रामकूपे।
दशग्रीवं यो निहत्याजिभूमौ
रामौ भूत्वा लक्ष्मणेनानुयुक्तः ॥२४॥
बध्वा सेतुं वानरैः सागरेऽपि
पौलस्त्यं यो वै मैथिलीमानिनाय।
देवक्यां यः पुत्रतामेति भूयः
कंसं जित्वा भूमिभारस्य हर्ता ॥२५॥
हत्वा चैद्यान्नारकादींश्च सर्वान्
इन्द्रे राज्यं कल्पयामास नाके।
योगं यो [ऽ] गा [द्] यो बुधस्यैव रूपो
निर्व्यापारो विश्वकृद्विश्वरूपः ॥२६॥
ध्यानं चक्रे योगमालां गृहीत्वा
योगिध्येयो नास्ति पूज्योऽस्य कश्चित्।

स्मर्तुं वेदानत्रिपुत्रो भवांश्च
दत्तात्रेयो विश्वयोनेः सकाशात् ॥२७॥
हृतान् मत्वा मायया विप्रपुत्रान्
भूयोऽदाद्वै ब्राह्मणेभ्यो महात्मा ।
यो वेदानां बहुमार्गं व्यधत्त
पाराशर्यो विश्वमुख्यस्य हेतोः ॥२८॥
विस्तारत्वं यश्चकाराथ वेदे
संसाराब्धौ पातितं विश्वमीक्ष्य ।
एवं विश्वं यो बिभर्ति स्वरूपै-
रासंख्येयैस्तस्य सङ्ख्यां न विद्मः ॥२९॥
त्राहि-त्राहि त्रातुमेकः समस्तान्
देवान् वृत्राल्लुप्तसर्वाधिकारान् ।

**सूत उवाच—**

इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा विष्णुस्तानब्रवीत्ततः ।
सुरा वः सर्वदा कार्यं कार्यं च हितमिच्छताम् ॥३०॥
गन्तव्यं तत्र युष्माभिर्यत्रासौ वर्ततेऽसुरः ।
सन्धिः कार्योऽथ तेनैव यथा वक्ति तथा तथा ॥३१॥
साहाय्यं वः करिष्यामि समयः प्रतिपाल्यताम् ।
छलेन हन्यतां देवा त्वष्ट्राऽसौ वलवान् कृतः ॥३२॥
इति श्रुत्वा ततो देवा वासुदेवस्य तद्वचः ।
प्रणम्य तं तथेत्युक्त्वा कर्तुं सन्धिमनन्तरम् ॥३३॥
गत्वा तस्य समीपं तु मुनिभिः सहिताः सुराः ।
अब्रुवंस्तं मदोन्मत्तं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥३४॥

**देवा ऊचुः—**

त्वया वशीकृतं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
निर्जितास्तु तथा देवा निःसत्त्वास्ते त्वदोजसा ॥३५॥
सख्यं कर्तुमिहेच्छन्ति त्वया साकं बलीयसा ।
अतो भवान् वचोऽस्माकमनुमन्तुमिहार्हसि ॥३६॥

**वृत्र उवाच—**

किं तेजसां भवेत्सख्यं तैजसाश्चेह देवताः ।
मया हृतं भवद्राज्यं तेन यूयं समत्सराः ॥३७॥
मयोक्तेनैव विधिना सख्यं वो यदि रोचते ।
तदा कार्यं मया साकं भवद्भिः कृतनिश्चयैः ॥३८॥

महास्त्रेण न शस्त्रेण न काष्ठेन न चाश्मना ।
न दिवा न च वा रात्रौ शुष्केनार्द्रेण मुष्टिना ॥३९॥
अवध्योऽहं च भविता युष्माकं च सदाऽमराः ।
तदा सख्यं भवत्वद्य सहास्माकं सुरैः पुनः ॥४०॥

**सूत उवाच—**

एवमस्त्विति ते तस्य वचः स्वीकृत्य पूर्ववत् ।
सख्यं चक्रुस्ततो देवाः सह दिव्यैर्महर्षिभिः ॥४१॥
तयोर्जाते तदा सख्ये वृत्रवासवयोर्दिवि ।
शशास भुवनं दैत्यो नातिविश्वस्तमानसः ॥४२॥
अथैकस्मिन्नवसरे तत्र स त्रिदशैः सह ।
सन्ध्यां स्मर्तुं जलनिधौ विवेश परवीरहा ॥४३॥
वासवोऽवसरं ज्ञात्वा हन्तुकामश्छलेन तम् ।
फेनं दृष्ट्वाद्रिकूटाभं स्मरन् विष्णोर्वरं हृदि ॥४४॥
नैतच्छस्त्रं न शुष्कं हि नार्द्रमश्म न दारु वा ।
न दिनं न च रात्रिश्च हन्तव्योऽयं मयाऽधुना ॥४५॥
वासुदेवमनुस्मृत्य फेनमादाय सत्वरम् ।
मुमोचासुरनाथाय चक्रवज्रान्वितं रुषा ॥४६॥
वैष्णवेन प्रभावेण भिन्नो भूमिं पपात्त ह ।
निहते दानवास्तत्र शेषाः पातालमाययुः ॥४७॥

**वायुरुवाच—**

एवं हत्वा रिपुं ब्रह्मन् वासवो ब्रह्महत्यया ।
पराभूतज्वरोऽभूत् स वृत्रहन्तु (न्ता) निहत्य तम् ॥४८॥
छद्मना निहतस्तेन वृत्रः ( : ) स्वामित्वमास्थितः ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा बृहस्पतिमुवाच ह ॥४९॥

**इन्द्र उवाच—**

वाचस्पते ज्वरो मेऽद्य ब्रह्महत्यासमुद्भवः ।
किं करोमि क्व गच्छामि शाधि त्वं मां बृहस्पते ॥५०॥

**बृहस्पतिरुवाच—**

पृथिव्यां भारते क्षेत्रे मेदपाटेऽतिविश्रुते ।
कुटिलायास्तटे रम्ये सर्वतीर्थमये शुभे ॥५१॥
कल्पवृक्षवनान्तस्थे रत्नमण्डपमध्यगे ।
देवदानव—गन्धर्वयक्षकिन्नर—सेविते ॥५२॥

तत्र कलिङ्गदेवोऽस्ति तमाराधय सत्वरम् ।
विन्ध्याद्रिवासिनीं देवीं पूर्वमाराध्य भक्तितः ॥५३॥
ततस्तुष्टे जगन्नाथे हत्याया न भयं तव ।
इत्युक्तः स जगामाशु तीर्थं नागह्रदं मुने ॥५४॥
तत्र गत्वाऽथ तां दृष्ट्वा विन्ध्यवासामथाम्बिकाम् ।
सौवर्णाम्बुजमध्यस्थां त्रिनेत्रां च तडित्प्रभाम् ॥५५॥
शङ्खचक्रवराभीतीर्दधतीं मुकुटोज्ज्वलाम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तां दिव्यवस्त्र-परिष्कृताम् ॥५६॥
पञ्चाननस्य पार्श्वस्थां हसत्सखीभिरावृताम् ।
प्रणम्य तां च तुष्टाव शक्रः सूनृतया गिरा ॥५७॥

**इन्द्र उवाच—**

देवि श्रीस्त्वं शारदा सिद्धिरूपा
बुद्धिस्मृतिर्ज्ञानभूता त्वमेव ।
जाया कीर्तिः सुखदा मोक्षदा च
धात्री पृथ्वी द्यौस्तथा चान्तरिक्षम् ॥५८॥
प्रज्ञा मेधा पार्वती कालरात्रि-
र्निशानिद्रासौम्यरूपाऽप्यरूपा ।
लज्जा मूर्तिर्दिव्यरूपाभया च
प्रीतिः शान्तिस्तुष्टिदा च क्षुधा च ॥५९॥
स्वाहा स्वधालंवषड्योगनिद्रा
कान्तिर्मोहा पापनाशा तथासि ।
कला काष्ठाऽनन्तरूपा च तृप्ता
दयारूपा ब्रह्मयुक्ता तृषा च ॥६०॥
अस्मिन् वै ते[ऽ]दृश्यरूपं तथाऽन्यद्
दृश्यं रूपं विद्यते देवि यच्च ।
सर्वं ते वै रूपमाहुर्मुनीन्द्रा-
स्त्वया हीनं नास्ति नास्त्यद्य किंचित् ॥६१॥
हते शुम्भे माहिषे वै निशुम्भे
त्वया दैत्याः कोटिशो निर्जिताश्च ।

**सूत उवाच—**

एवं स्तुताथ शक्रेण विन्ध्यवासा महामुने ।
प्रीता तमब्रवीदिन्द्रं वरदास्मीति तं वृणु ॥६२॥

**इन्द्र उवाच—**

यदि तुष्टासि मे देवि ब्रह्महत्या न बाधते ।
तथा कार्यं त्वया मातरुपायं तं वदस्व मे ॥६३॥

**देव्युवाच—**

एकलिङ्गं मया सार्धमाराधय शतक्रतो ।
तुष्टेऽस्मिन् सकलं विश्वं तुष्टं स्याच्च मया समम् ॥६४॥
तपः कृत्वा महाशान्तमेकलिङ्गस्य सन्निधौ ।
विधूतपापो भविता (भूत्वा वै) पुनः शक्रत्वमाप्स्यसि ॥६५॥

**सूत उवाच—**

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रस्तपस्युग्रे व्यवस्थितः ।
एकलिङ्गस्य पुरतः पूर्वस्यां दिशि वृत्रहा ॥६६॥
कृत्वा पर्णकुटीं रम्यां सरस्तत्र निखन्य च ।
वज्रेण सितधारेण स्वकीयेन महात्मना ॥६७॥
शिवं ध्यायन् शिवां तद्वत् तत्र संस्मृत्य वासवः ।
तपसा तोषयित्वा तमेकलिङ्गं तदा मुने ॥६८॥
प्रार्थयामास विप्रेन्द्र लोकानां हितकाम्यया ।
एतत्सरसि यो मर्त्यः स्नानसन्ध्यादिकं तपः ॥६९॥
करिष्यतीह देवेश तस्याशु वरदो भव ।
इतीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्योवाच शङ्करः ॥७०॥

**श्रीमदेकलिङ्ग उवाच—**

तव नाम्ना सरश्चेदं ख्यातिमेष्यति वासव ।
अस्मिन् सरसि यः स्नात्वा सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥७१॥
यत्किञ्चित् क्रियते पुण्यं तदक्षयफलं भवेत् ।

**सूत उवाच—**

इति श्रुत्वाऽथ देवेन्द्रः स्तुत्वा नत्वा प्रहर्षतः ॥७२॥
स विधूयेह पापानि पुनः स्वर्गं जगाम ह ।
इति ते कथितं ब्रह्मन् सर्वपापप्रणाशनम् ।
यत्पृष्टं च त्वया सर्वमन्यच्छ्रोतुं किमर्हसि ॥७३॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये इन्द्रवरदानं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

## अथ दशमोऽध्यायः

**वायुरुवाच—**

त्रेतायां नन्दिनी धेनुर्वशिष्ठस्य महात्मनः।
आरराधैकलिङ्गं सा विश्वामित्रकृताद् भयात् ॥ १ ॥

**नारद उवाच—**

विश्वामित्रात् कथं भीता नन्दिनी सा प्रभञ्जन।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे ॥ २ ॥

**वायुरुवाच—**

पुरा त्रेतायुगे ब्रह्मन् वशिष्ठो भगवानृषिः।
तपश्चचार सुमहदरुन्धत्या सहैव सः ॥ ३ ॥
तस्य सा नन्दिनी धेनुः कामधेनुरिवापरा।
एकान्ताराधिता धेनुः सर्वकामदुघा किल ॥ ४ ॥
कामदोग्ध्रीत्वमस्यास्तु विश्वामित्रो नृपात्मजः।
श्रुत्वा धेनुसहस्रेण प्रार्थयामास तं मुनिः ॥ ५ ॥
नैच्छद् दातुं सहस्रेण गवां स भगवान् मुनिः।
विश्वामित्रः क्रूरभावादपहर्तुमियेष ताम् ॥ ६ ॥
सा तस्य क्रूरभावं हि विदित्वाऽथ त्वरान्विता।
एकलिङ्गमगाच्छीघ्रं विश्वामित्रकृताद् भयात् ॥ ७ ॥
हन्तुं शक्या न तेनेयं न देवैरसुरैरपि।
ततोऽस्य व्यत्ययो मा भूदिति मत्वा जगाम ह ॥ ८ ॥
एकलिङ्गं च देवीं सा भक्त्या गन्धादिभिस्तथा।
आराध्य रक्ष रक्षेति विश्वामित्रकृताद् भयात् ॥ ९ ॥
तज्ज्ञात्वा देवदेवोऽपि विहस्य च वरान् ददौ।
मा भैषीर्नन्दिनी तस्माद् भयं ते न भविष्यति ॥१०॥
मत्प्रभावेण त्वं भूयो ह्यजेया सर्वजन्तुषु।
इति श्रुत्वा ततो देवी नन्दिनी हर्षसंयुता ॥११॥
एकलिङ्गं प्रणम्याथ सहितं विन्ध्यवासया।
ताभ्यां सा साधिता धेनुः पुनः प्राप्ता मुनेर्वनम् ॥१२॥
विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं जित्वा सा शृङ्गपट्टिशैः।
वशिष्ठं तोषयामास नन्दिनी मुनिनन्दिनी ॥१३॥
एवमाराधितो देवस्त्रेतायां शङ्करः प्रभुः।
नन्दिन्या चैकलिङ्गोऽसौ सहितो विन्ध्यवासया ॥१४॥

द्वापरे तक्षकेणेह भयादाराधितस्तथा ।
श्रृणुष्वावहितो ब्रह्मन् यथावृत्तं पुरा युगे ॥१५॥
सोमवंशोद्भवो राजा पाण्डवो जनमेजयः ।
सर्पसत्रे वर्तमानो तक्षकोऽस्य भयान्वितः ॥१६॥
एकलिङ्गं ययौ भीतः कुटिलायां निखन्य च ।
कुण्डं चकार सुमहत्तत्र स्थित्वा सुसंयतः ॥१७॥
त्रिकालं पूजयन्नित्यं भक्त्या परमया पुनः ।
त्राहि त्राहीति सम्प्रार्थ्य जनमेजयतः प्रभो ॥१८॥
इत्युदीर्य ततो ब्रह्मन् विनयेन प्रणम्य च ।
स्थितः शिवस्य पुरतस्तस्य तुष्टो महेश्वरः ॥१९॥
ददौ वरं भक्तियुक्तं वाक्यं चैनमुवाच ह ।
हे तक्षक वरो मेऽद्य तव भक्तिमतः सतः ॥२०॥
सदा सर्पेषु मे प्रीतिः सान्निध्यं मे भविष्यति ।
भागिनेयो हि भवतो ह्यास्तीको वै भविष्यति ॥२१॥
रक्षिता सर्पसत्रादवस्तस्मात् क्षेममवाप्स्यथ ।

सूत उवाच—

प्रणम्य शङ्करं सोऽथ समयं प्रतिपालयन् ।
भागिनेयं तमास्तीकं प्राप्याऽसौ रक्षितो मखात् ॥२२॥
अथ सर्पाश्रितं स्थानं सर्वतश्चाभिपूरितम् ।
न दुष्टा मनुजेष्वासन् तस्मिन्नागह्रदे किल ॥२३॥
तेन नागह्रदं नाम जातं तक्षककुण्डतः ।
नागह्रदं द्विजाग्रेभ्यो नृपैर्दत्तं युगे युगे ॥२४॥
तत्रागत्य नरो यस्तु स्नात्वा नागह्रदे शुचिः ।
विप्रान् सम्पूज्य भक्त्या तान् तेभ्यश्चाशिषमानतः ॥२५॥
एकलिङ्गप्रसादो यः सुलभो जायते चिरात् ।
अथान्यदपि ते वच्मि सावधानतया श्रृणु ॥२६॥
कलौ प्राप्ते यथावृत्तमेकलिङ्गप्रसादजम् ।
पुरा शप्तौ रुषा ब्रह्मन् भवान्या चण्डनन्दिनौ ॥२७॥
भवेतां मनुजौ तत्र मेदपाटे उभावपि ।
हारीतबाष्पनामानौ चेरतुस्तावितस्ततः ॥२८॥
भावित्वात् कर्मणां प्राप्तावेकलिङ्गं महेश्वरम् ।
सिद्धसाधकधर्मज्ञौ गुरुशिष्यस्वरूपिणौ ॥२९॥

तत्र तेपे तपो ब्रह्मन् हारीतो मुनिसत्तमः ।
वाष्पः सु (शु) श्रूषणं चक्रे हारीतस्य शिवस्य च ॥३०॥
चक्रे त्रिषवणं स्नानं सदा संयममाश्रितः ।
क्षमावान् कृपया युक्तः सर्वभूतहिते रतः ॥३१॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते भक्त्या चक्रे महत्तपः ॥३१॥
एवमाराधयामास विन्ध्यवासां महेश्वरम् ।
तयोर्भक्त्या कृपाञ्चक्रे विन्ध्यवासा कृपान्विता ॥३३॥
अहो कलियुगे प्राप्ते तपस्तप्तुं न शक्यते ।
एवं मत्वा तु सा देवी प्रादुर्भूत्वा (य) वचोऽब्रवीत् ॥३४॥

**देव्युवाच—**

गच्छ हारीत वेगेन गद्यैस्तोषय शङ्करम् ।
मत्प्रसादाच्च ते वाणी गद्यपद्या भविष्यति ॥३५॥

**सूत उवाच—**

तां नमस्कृत्य हारीतः स्तुतिं गद्यैश्चकार ह ।

**शौनक उवाच—**

तानि गद्यानि सूत त्वं पवित्रं श्रावयाशु माम् ।
यैर्गद्यैस्तोषयित्वेशं हारीतो हरतां गतः ॥३६॥

**सूत उवाच—**

तद्गद्यं त्वां प्रवक्ष्यामि सद्यः पापहरं परम् ।
यत्स्तोत्रपठनादेव देवदेवोपमो भवेत् ॥३७॥

**हारीत ऋषिरुवाच—**

इन्द्रः सर्वसुरेश्वरः कृतयुगे भक्त्या यमाराधयत्
त्रेतायां सकलाभिलाषफलिनी धेनुस्तथा द्वापरे ।
नागेशः किल तक्षकः कलियुगे हारीतनामा मुनिः
सोऽयं सर्वजगद्गुरुर्विजयते श्रीदैकलिङ्गः प्रभुः ॥३८॥
कुटिलासरित्समीपे त्रिकूटगिरिगहनभूषणी नित्यम् ।
अभिमतफलप्रदात्री देवी श्रीविन्ध्यवासिनी जयति ॥३९॥
घनवंशकदम्बकमध्यगतं रसकूपमवेहि दुरापतरम् ।
परिगृह्य रसं सरसं वपुषः स्थिरतां कुरु तापसवीर ततः ॥४०॥
जयति जगत्त्रयनाथो जयति परिपूजितः सदा शम्भुः ।
वाञ्छितफलप्रदोऽयं श्रीमानित्येकलिङ्गाख्यः ॥४१॥

जयत्येकशराघातविदारितपुरत्रयः ।
धनुर्धराणां धौरेयः पिनाकी भुवनत्रये ॥४२॥
न स्वर्धुनी न फणिनो न कपालदाम
नेन्दोः कला न गिरिजा न जटा न भस्म ।
यत्रास्ति नान्यदपि किञ्च विचित्रहेतो
रूपं पुराणमुनिसेवितमीश्वरस्य ॥४३॥

**ॐ नमः शिवाय—**

जयत्यखिललोकशङ्करः शिवः सर्वसर्वपसर्वदप्रणतजनपशुपाशपटलपाटनलम्पटप्रसादशीलतालंकृतशरीरः,दक्षदक्षमखमथनधातृमुखकुहरनिर्झरदखिलवेदविद्यासुरसरिज्जात्कारमुखरितत्रिदशकुलशैलराजः, मालतीमलयमन्दारकुटजकुन्दकदम्बोन्मत्तकेतकीकल्हारकर्पूरपारिजातकमधुरमधुकरकनकचम्पकमल्लिकाबिल्वपत्रपाटलीशतपत्रिकार्ककिंशुकबकुलकमलकर्णिकारत्रिसन्ध्यागस्त्यबर्बरिकाकंकोलकाञ्चनारकरवीरागरु-श्रीखण्डयक्षकर्दमलिप्ताङ्गशरीरः,सततसंयुक्तकिन्नरकामिनीभृङ्ग(वृन्द)गीतनृत्यवंशवाद्यवीणावेदध्वनिभरितभुवनकैलाशशिखरशिखराग्रशैलराजः, पञ्चार्थतीर्थरतरतिभुवनरतितृप्तयोग-योगदयोगिनिर्वाणदः, पार्वतीनखव्रणचिह्नितशरीरनिर्मलनिष्कलनिष्कलङ्कः, विषविषमविषयमृत्युमकरकुलाकुलान्दोलितकलिजलजरास्फीतफेनजन्मोर्मिमालासंसारसागरसमुत्तरणैकपोतः, सदसदुत्पत्तिपालनविलयकारणधराद्यष्टतनुपरिपालितजगत्त्रितयसकलसुरासुरकराकर्षणजनितजवमन्दरपरिवर्तितघोराघातनिर्मथितदुग्धोदधिजातकालकूटचटुलानलकवलनकृष्णकण्ठः श्रीकण्ठः, ब्रह्मचक्रलब्धलिङ्गावसानपरिपूर्णः, परितृप्तदशवदनप्रचण्डदोर्दण्डमण्डपोत्कलितकैलाशशृङ्गचलनभयचकितरणरणितरमणीयमणिखचितकनकनूपुरमधुररवमुखरित - चरणकमलःगौरीकुचकलशकुङ्कुमपङ्कलाञ्छितशरीरः, विपुलपीनाङ्गः शशिशेखरः शिवः शान्तः शाश्वतः, हरिकरखरनखरसमूहतीव्रकिरणपटलाट्टाट्टहासभासुरकरतलचपेटापाटित्तविकटकरिकुम्भस्थलोच्छलितविमल - मुक्ताफलखचितहरिनारीचर्मविचित्रनितम्बबिम्बः, प्रणतशचीपतिकर्णपूरपल्लवोल्लिखितपादपीठः, कण्ठोल्लुठितकपालमालाभरणभूषितशरीरः, जन्मजरामरणभयवर्जितः, त्र्यम्बको बकुलकुसुमसुरभितमणिशिलातलसमुल्लसितविमलजलविलुलितकलहंसमधुरध्वनिनिर्मलयोनिमधुमथनमधुर - सामध्वनिसंस्तूयमानः, सहजानन्दोऽतिबलोऽणिमादिसिद्धिगुणनिधानः, प्रणतजनवत्सलप्रलयजलदतडिदंशुदुर्धरधगधगितनिर्गतकिरणश्रेणिपिशङ्गितवरललाटलोचनोच्छलच्चटुलशिखानिर्दग्धमकरध्वजशरीरः, हरो निखि-

लदुःखहरस्त्रिदशशेखरः, क्षरज्जलक [च] चक्रवालकवलितसकलदिग्वल-यशूलनिर्भिन्नदुर्द्धरान्धकमहासुरः प्रमथनाथः, सप्तलोकेश्वरप्रवरपिनाकमुक्त कशरनिर्गतविषयविशिखशिखासितप्रतापताप्यमानदनुजेन्द्रकर्णपूरभुज - युगलभस्मीकृतत्रिपुरत्रितयः, रुद्रो रौद्रो रौद्रभूताट्टसंग्रामलम्पटनिशितनि-स्त्रिशशूलपरशुपाशाङ्कुशाशनिशक्तितूणतोमरभल्लिकर्णनालिकनाराचशर - शार्ङ्गचक्रगदावज्रमुद्गरदण्डभिन्दिपालहलमुसलशम्बलखड्ग[च]छुरिका - कर्त्तरीकुणपकुन्तफलकफलिकाभुशुण्डीशङ्कुस्फोटपरिघपट्टिशप्रभृतिवरायु - धधरः,प्रहतपटुपटहतटतटितबधिरितगगनगमनदुर्ललितसकलसुरासुरमौलि-लीनचरणकमललीलालसाङ्गुलीतलनिर्द्दलितदशवदनमुखासुरसेवितविकट-किरीटकोटीरभारः, वलिताङ्गभुजङ्गाभरणो भवो भव्यो भाव्यो भूतेशो विभवप्रदो भवार्तिहरो विशुद्धवदनो भुजङ्गमणिविस्फूर्जितहृदयः, कालकालमहाकालानलकर्णपूरशिरोमणिः, कपालमालाखण्डमण्डितजटाजूटहरिबलवदनकालकूटलेखोद्धटनाङ्कितकण्ठैकदेशः, श्मशानभस्मोद्धूलितस-कलविग्रहो हारीकृतमहाभुजङ्गः, कपिलकृतसकलविग्रहो विग्रहादर्धनारी-धरो भैरवमहाभैरवभैरववैतालमातृपरिवृत्तः, शुभदशनमुखमयूखखचित-हसितदीप्तिविदलितवहुलान्धकारः पितृवनसमारब्धताण्डवप्रसारितभुज-सहस्रदुर्निरीक्षिताकाण्डब्रह्माण्डमण्डपो वरो वरपरशुधरः,परापरः पवित्रः पवमानः पवनकम्पितकनकचम्पकलतापतितकुसुमधूलिधवलितत्रिशूलः पृथु-कैलाशगिरिकन्दरनिवासः, शरणदध्यानदज्ञानदमोक्षदः, शुद्धस्फटिकमणि-सङ्घशुभ्रदेहः, हिमधामधवलितसकलभुवनान्तरालः, शशिकोटिविघटन-विकटकिरीटकोटीरभारः, सजलजलदजलशुद्धज्ञानैकतत्त्वकठिनपापानङ्गाङ्कुरकुट्टनाकुण्ठितकुठारः, सुरकरिकपोलामलविगलितबहुलसमुज्ज्वलगन्ध-लुब्धमधुपपददलितकनकपङ्कजरजःपुञ्जपिञ्जरितगगनगमनमन्दाकिनीप्र-वाहप्रोक्षिततृतीयनयनः, पाञ्चजन्यकुटिलार्द्धलोचनवरवरवृषभस्कन्धरतः, गजासुरकृत्तिवसनो बाणासुररिपुदर्पनाशनः, तत्त्वदृष्टिमार्गानुरतः, क्षुभितलक्ष्मीकरकमलान्दोलितोद्दामहेममणिमयदण्डमण्डितचारुचामर-मरुद्वीजितचरणशतपत्रः, सत्यासत्यवृतः, त्रिभुवनैकनाथप्रभुः ।

श्रीमदेकलिङ्गदेव भक्तजनोपजीव्यमानमोक्षाद्यनन्तकल्पपादप, अभि-ललितनीलोन्मीलितसान्द्रमन्दारकुड्मलोद्दामहेममकरन्दपानमदिरामत्तष-ट्पदकुलसन्दोहसुन्दरसुन्दरीझङ्कारभूषिताङ्घ्रितामरसयुगलाव्ययाक्षयब्रह्म-प्राजापत्यद ! विष्णुचक्रद ! इन्द्रराज्यद ! वज्रिवज्रद ! नन्दिगणाधिपत्यद ! उपमन्युक्षीरोदधिदुग्धद ! नरकोदधिमुह्यमानासिपत्रवनसमुत्तरणैकप्रसाद-पोत ! यमनीतिकालकूट ! जननीजनजीवितैश्वर्यदः (द) शङ्कुकर्णधनदकम-

लजशक्रचक्रधरप्रमुखसुरासुरसेवितमन्दिरद्वारः (र) त्रिविष्टपप्रकटाटन-विजयकरणकृष्णरुक्मिणीयुक्तरथगमनतुहिनपर्वतनितम्बबिम्बचुम्बितसुर-सरिदम्बुप्रवाहधाराधौतधवलोपलतमोपविष्टमुनिजनविशुद्धध्यानसन्तानपू-जितदत्तभैरवहस्तावलम्बनः, (न) भैरवरूपसंत्रासितासुरगणः (ण) अवज्ञालसवामकराङ्गुष्ठनखनिकृन्तितपितामहपञ्चमशिरःकमलः (ल) शरभवच्चञ्चुनखमुखाहतरुषितनरसिंहविग्रहः ह) विग्रहार्द्धनारीधरः (र) पूष्णोः दशनपातनः (न) पातितकृष्णकेशस्तम्भितवज्रिवज्रः (ज्र) बाहुलेयसनत्कुमारयोगापहारकारकः (क) तीव्रतरणिकिरणनिवहविकसि-तकमलदलविपुलनयनः (न) शशिकरनिकरवर्षशतशङ्कुकर्णः (र्णं) हारीतऋषिशोकानलहरो (र) हर नमस्ते हर नमस्ते हर नमस्ते ।

[ इति पूर्वार्द्धः । अथोत्तरार्द्धः ]

कीर्तनेनैकलिङ्गस्य पापं याति सहस्रधा ।
प्रचण्डपवनेनै (ने) व सघनं घनमण्डलम् ॥ १ ॥

इति सुललितमिष्टं यस्तु हारीतगद्यं
परिपठति मनोज्ञं भावयुक्तः प्रशान्तः ।
भवति स इह लोके वल्लभः सुन्दरीणा—
मुपरमति च लोके चेश्वरत्वं प्रयाति ॥ २ ॥

सूत उवाच—

हारीतेन स्तुतश्चैवं तुष्टः प्रादुरभूच्छिवः ।
उवाच वचनं प्रीत्या स्तुत्या भक्त्या च तोषितः ॥ ३ ॥
वरं वरय हारीत यत्ते हृद्यं हृदि स्थितम् ।

वायुरुवाच—

तयोरेको दिवं गन्तुं स्वशरीरेण शङ्करम् ।
विमानेनार्कवर्णेन प्रार्थयामास सत्वरम् ॥ ४ ॥
अपरो बाष्पनामापि राज्यमैच्छदविच्युतम् ।
मेदपाटे च विपुले चित्रकूटे स्थितिं पुनः ॥ ५ ॥

श्रीमदेकलिङ्ग उवाच—

गच्छ हारीत शीघ्रं त्वं विमानेनार्कवर्चसा ।
कैलाशं चण्डरूपेण मोदस्व मम सन्निधौ ॥ ६ ॥
बाष्प त्वमपि भूपृष्ठे चित्रकूटाधिपो भव ।
वदान्यो धार्मिकः श्रीमान् प्रजानां परिपालकः ॥ ७ ॥

सर्वैर्नृपगणैर्युक्तः सत्यवादी सदा शुचिः ।
अविच्छिन्नाऽस्तु ते कीर्तिः सन्ततिश्च भविष्यति ॥ ८ ॥
राज्यं वै मेदपाटस्य मत्प्रसादान्न संशयः ।
सान्निध्यान्मम देशोऽयं हृष्टपुष्टजनः सदा ॥ ९ ॥
गोभिरश्वादिभिः पूर्णो रोगहीनो भविष्यति ।
दुर्भिक्षस्य भयं नास्ति यवनानां न वै भयम् ॥१०॥
सदाफलः सदापुष्पः सदासस्यः सदाजलः ।
कृपालुजनसम्पन्नः परिपूर्णमनोरथः ॥११॥
राष्ट्रसेनेति नाम्नी च देवी रक्षां विधास्यति ।

सूत उवाच—

एवं दत्त्वा तयोः शम्भुर्वनमन्तर्दधे पुनः ।
हारीतोऽप्यगमत्स्वर्गं बाष्पो राजा बभूव ह ॥१२॥
क्षात्रेण कर्मणा पृथ्वीं शशास स द्विजोत्तमः ।
नित्यं शिवे रतिस्तस्य राज्ञोऽमात्यपुरोहितैः ॥१३॥
शिव एव गतिर्यस्य न तस्य विद्यते भयम् ।
अस्मिन् देशे विशेषेण शिवभक्तिपरा नराः ॥१४॥
भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठ शिवाज्ञापरिपालकाः ।
इति ते कथितं सर्वमाख्यानं परमाद्भुतम् ॥१५॥
य इदं कीर्तयेद् भक्त्या शिवलोकं स गच्छति ।
शृणुयाद् वा प्रयत्नेन भक्त्या परमया पुनः ॥१६॥
सर्वा(र्व)बाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ।
पुत्रपौत्रादिकैर्युक्तः सदा भक्त्या शिवो भवेत् ॥१७॥
सर्पतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचिन्न भविष्यति ॥१८॥
ग्रहपीडा न वा तस्य दुष्टाणां न भयं तथा ।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१९॥
सर्वतीर्थफलं तस्य सर्वक्रतुफलं तथा ।
सर्वव्रतफलं तस्य इष्टापूर्तफलं लभेत् ॥२०॥
मोक्षमार्गमवाप्नोति देहान्ते नात्र संशयः ।
तत्र स्नात्वा तु यः श्राद्धं पितॄणां तर्पणादिकम् ॥२१॥
कृत्वाप्नोति सदा मर्त्यो वाञ्छितं शिवशासनात् ।
एकलिङ्गं समभ्यर्च्य विन्ध्यवासासमन्वितम् ॥२२॥

सर्वमेतत्फलं प्राप्य यन्मयोक्तं महामुने ।
प्राप्नोति परमं स्थानं यद्गत्वा न निवर्त्तते ॥२३॥
एकलिङ्गस्य चरितं तापत्रयहरं मुने ।
कीर्तनादपि तत्सर्वं भवेन्नात्र विचारणा ॥२४॥
इह तीर्थे नरो यात्रां कुर्यात् पर्वणि पर्वणि ।
ब्रह्महत्यादिपापानामुपपातककर्मणाम् ॥२५॥
क्षयं करोति भूतेश एकलिङ्गः कलौ युगे ।
न तीर्थैर्न तपोदानैर्न यज्ञैर्बहुविस्तरैः ॥२६॥
यत्फलं प्राप्यते ब्रह्मन्नेकलिङ्गावलोकनात् ।
केदारं विश्वनाथं च माधवं चार्बुदं तथा ॥२७॥
हरिद्वारं प्रयागं च पूर्वसागरमेव च ।
त्र्यम्बकं च तथोङ्कारं महाकालवनं तथा ॥२८॥
द्वारवत्यां हृषीकेशं सेतुबन्धं च नैमिषम् ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः सप्त ये (याः) [शुचयः] स्मृताः ॥२९॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा स्नात्वा फलं च यत् ।
तत्फलं समवाप्नोति चैकलिङ्गे युगे युगे ॥
इष्टापूर्तैर्व्रतैरन्यैर्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥३०॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये तीर्थयात्राफलं नाम दशमोऽध्यायः

## अथैकादशोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

एकलिङ्गस्य माहात्म्यं त्वयोक्तं च श्रुतं मया ।
समीपे यानि लिङ्गानि यानि तीर्थानि शंस मे ॥ १ ॥
राष्ट्रसेनेति या देवी तन्ममाचक्ष्व सर्वग ।

**वायुरुवाच—**

एकलिङ्गे गते तत्र कैलाशः पर्वतोत्तमः ।
स त्रिकूटोऽभवच्छृङ्गी सर्ववृक्षसमन्वितः ॥ २ ॥
मानसं तत्सरो जातं जाह्नवी कुटिलाऽभवत् ।
अथैकलिङ्गस्याग्नेय्यां दिशि कुण्डं महत्तरम् ॥ ३ ॥
भवान्या कामधेनूत्थं पञ्चगव्यं निवेशितम् ।
स्वकरेणैव कुण्डेऽस्मिन् तत्करज इति कथ्यते ॥ ४ ॥

लोकानां पावनार्थाय सर्वतीर्थमयं पुनः ।
तस्मिन् कुण्डस्थतोयेन उद्वृत्तेन समाहितः ॥ ५ ॥
स्नात्वा तत्रैकलिङ्गस्य प्रीतये शुभमाचरेत् ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥
दर्शने करकुण्डस्य यत्फलं समवाप्नुयात् ।
तत्फलं समवाप्नोति स्मरणादेव नित्यशः ॥ ७ ॥
शिवपार्श्वेन्द्रसरसि यज्जलं दृश्यते मुने ।
अग्नीषोमस्वरूपं तज्जानीहि सर्वकामदम् ॥ ८ ॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात् सर्वतीर्थफलं लभेत् ।
तस्मिन् सरसि यः स्नात्वा करोति पितृतर्पणम् ॥ ९ ॥
श्राद्धं कृत्वा नमस्कृत्य विन्ध्यवासां ततो हरम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति रुद्रलोकं स गच्छति ॥१०॥
एकलिङ्गादुदीच्यां वै जातं तीर्थद्वयं परम् ।
केदारकुण्डे यः स्नात्वा स्नात्वा कुण्डेऽमृताख्यके ॥११॥
केदारेश्वरमभ्यर्च्य अमृतेशं तथा मुने ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते ह्यमरत्वमवाप्नुयात् ॥१२॥

सूत उवाच—

अथ सा विन्ध्यवासा तु पूर्वस्यां दिशि नारद ।
पर्वताग्रे ह्यथारामे सर्वर्त्तुकुसुमोद्भवे ॥१३॥
प्राकारान्तर्गते हर्म्ये स्वर्णसिंहासने शुभे ।
स्थित्वा तत्र मतिं चक्रे राष्ट्ररक्षणहेतवे ॥१४॥
स्वदेहाद्राष्ट्रसेनां तां सृष्ट्वा स्थाप्याथ तत्र सा ।
तस्याः स्वरूपे दृष्ट्वा वै हृष्टा वाक्यमुवाच ह ॥१५॥
श्येनारूपं सम्यगास्थाय देवि
राष्ट्रं त्राहि त्राह्यतो वज्रहस्ता ।
दुष्टान् दैत्यान् राक्षसान् वै पिशाचान्
भूतान् प्रेतान् योगिनीजृम्भकेभ्यः ॥१६॥
दुष्टग्रहेभ्योऽन्यतमेभ्य एवं
श्येने त्राणं मेदपाटस्य कार्यम् ।
येऽस्मिन् देशे प्रातियोत्स्यन्ति केचित्
ते हन्तव्या मायया दुष्टरूपाः ॥१७॥
जयः कार्यः स्वदेशीये भूपाले च तथा जने ।
अस्य लोकस्य भूपस्य नित्यं पूजा भविष्यति ॥१८॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां संक्रान्त्यादिषु पर्वसु ।
पूजयेत्तां राष्ट्रसेनां तद्रूपां च स्त्रियं तथा ॥१९॥
ब्राह्मणानपि सम्पूज्य देवी प्रीत्यै विशेषतः ।
तेन तुष्टा राष्ट्रसेना पूजकानां वरप्रदा ॥२०॥
तस्मात् सम्पूजयेद् भक्त्या राष्ट्रसेनां विधानतः ।
चैत्रमास्यसिते पक्षे भक्त्या नित्यं प्रपूजयेत् ॥२१॥
राष्ट्रसेनेति नाम्नीयं मेदपाटस्य रक्षणम् ।
करोति न च भङ्गोऽस्य यवनेभ्योऽपराग(द)पि ॥२२॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये राष्ट्रश्येना-प्रादुर्भावो नामैकादशोऽध्यायः

## अथ द्वादशोऽध्यायः

**शौनक उवाच—**

एकलिङ्गस्य माहात्म्यं त्वयोक्तं विदित्तं मया ।
यानि लिङ्गानि देशेऽस्मिन् यत्र यत्र स्थितान्युत ॥ १ ॥
कथयस्व समासेन मूर्तयश्चात्र याः स्थिताः ।
स्वयंभूतानि लिङ्गानि धेनुसंस्मरणादपि ॥ २ ॥
जातानि कथमन्यानि मूर्तयश्चाभवन् कथम् ।
के देवाः परितस्तस्थुरेकलिङ्गं वदस्व नः ॥ ३ ॥

**सूत उवाच—**

वायुना कथितं ब्रह्मन्नारदाय सुविस्तरम् ।
त्वया पृष्टं च तत्सर्वं कथयिष्याम्यशेषतः ॥ ४ ॥
सर्वविश्वमयो देव एकलिङ्ग इति स्मृतः ।
तस्मिँल्लिङ्गे स्थितो ब्रह्मा वासुदेवो जगद्विभुः ॥ ५ ॥
शक्रो वैश्रवणः सूर्यो वायुर्वरुण एव च ।
वह्निग्रहास्तथा तारा यमो देवा महर्षयः ॥ ६ ॥
यक्षाः सिद्धाः सगन्धर्वाः साध्याः किन्नरपन्नगाः ।
सर्वे देवगणास्तत्र स्थिताश्च परमात्मनि ॥ ७ ॥
द्यौर्भूमिरन्तरिक्षं च तथा पातालमेव च ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तथा सप्तैव सागराः ॥ ८ ॥
महीधरास्तथा सर्वे जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
दर्पणे च यथा तोये प्रतिबिम्बं प्रदृश्यते ॥
तद्वदस्मिन् जगत् सर्वं दृश्यते परमात्मनि ॥ ९ ॥

सर्वदेवमयः शम्भुरेकलिङ्ग इति स्मृतः ।
तत्समीपे गणाध्यक्षः सिद्धिबुद्धिप्रदः प्रभुः ॥१०॥
निवसन्ति सुराः पूज्या यक्षकिन्नरपन्नगाः ।
सर्वकार्यसमारम्भे मन्यन्ते ये सदा बुधैः ॥११॥

प्रथमं प्रार्थयन् सिद्धिमाराध्यः सर्वकर्मसु ।
सेनाधिपत्यं देवानां चक्रे योऽमितविक्रमः ॥१२॥
विजघ्ने तारकं दैत्यं जन्मतः प्रथमेऽह्नि ।
हेलया क्रौंचमभिद(न)त् शक्त्या यो जाह्नवीसुतः ॥१३॥
षण्मुखस्य विशेषेण पूजनाद् भयनाशनम् ।
करिष्यति न सन्देहो भक्त्या तुष्टश्च षण्मुखः ॥१४॥

मयूरवाहनो नित्यमेकलिङ्गस्य सन्निधौ ।
आस्ते ह्यत्रैव सर्वेषां दुःखनाशनहेतवे ॥१५॥
असुरानजयत् संख्ये देवानां हितकाम्यया ।
तत्र ते प्रमथाः सर्वे नन्दिप्रभृतयस्तथा ॥१६॥

वानरास्यास्त्वहिमुखा महिषोष्ट्रमुखास्तथा ।
खरोलूकमृगास्याश्च मकराश्वमुखास्तथा ॥१७॥
नानास्याश्च तथा त्र्यक्षा द्विशीर्षा भयवर्द्धनाः ।
त्रिमुखाश्च चतुर्वक्त्राः पञ्चवक्त्राः षडाननाः ॥१८॥

लम्बोष्ठा दन्तुराः कुब्जा दीर्घजङ्घाः कृशोदराः ।
लम्बग्रीवाश्चलज्जिह्वा ह्रस्वहस्ता दिगम्बराः ॥१९॥
गजचर्मपरीधाना एणसिंहाजिनाम्बराः ।
यादृशं यस्य वदनं तादृशं तस्य वाहनम् ॥२०॥

एवं ते प्रमथा ब्रह्मन्नानारूपाः समन्ततः ।
वसन्ति चैकलिङ्गस्य सामीप्येऽथ सहस्रशः ॥२१॥
तथा भवानी बहुभी रूपैस्तस्य समीपतः ।
उवाच जगतां धात्री बहुनामा(म्न्य)भवद् भुवि ॥२२॥

चामुण्डा विन्ध्यवासेति कालिकाथाम्बिकेति च ।
ग्रामनाम्नी क्वचिद्देवी तीर्थपर्वतगोत्रजा ॥२३॥
विघ्नेभ्यः पाति लोकांस्त्रीन् यथा माता सुतानि च ।
उवाच तत्र मार्तण्डो द्वादशात्मा त्रयीतनुः ॥२४॥

शुभाशुभानां यो देवः सदा साक्षी च कर्मणाम् ।
प्रत्यक्षो दृश्यते व्योम्नि सर्वदेवमयो विभुः ॥२५॥

प्रातः पैतामहं रूपं धत्ते योऽसौ चतुर्मुखः ।
मध्याह्ने शाम्भवं रूपं जटाभस्मास्थिभूषितम् ॥२६॥
आस्ते नारायणं रूपं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
प्रत्यूषे ऋग(ङ्)मयो देवो मध्याह्ने स यजुर्मयः ॥२७॥
अपराह्णे सामरूपस्त्रयीरूपो निगद्यते ।
चतुर्दश तथा विद्या भुवनानि चतुर्दश ॥२८॥
तत्सर्वं विद्यते तस्मिन्नातोऽन्या देवताः क्वचित् ।
आहुत्या[ऽऽ]प्यायते सूर्यस्तस्माद् वृष्टिः प्रजायते ॥२९॥
वृष्ट्या सस्यादिसम्पत्तिः सस्यप्राणा हि जन्तवः ।
कल्पान्ते युगपद् विश्वं तप्त्वा द्वादशमूर्तिभिः ॥३०॥
समुद्रानपि संशोष्य प्रदहत्यखिलं जगत् ।
उदयास्तं व्रजन् विश्वं पाति घातं निवारयन् ॥३१॥
स्वाहा स्वधादिकं कर्म प्रवर्तयति स प्रभुः ।
वह्निरूपेण यो विश्वं पुष्णात्याहारभक्षणात् ॥३२॥
स्वाहाकारवषट्कारैस्तर्पयन् देवतान् पितॄन् ।
स मार्तण्डश्च भगवान् जगत्तिमिरनाशनः ॥३३॥
उवास परितस्तस्य देवो द्वादशमूर्तिभिः ।
अचलायां च सप्तम्यां माघमासे समाहितः ॥३४॥
कुटिलायामथ स्नात्वा सूर्यं सम्पूज्य भक्तितः ।
अर्घ्यादिना विशेषेण प्राप्नोति परमां गतिम् ॥३५॥
गण्डक्यां यः शिलास्थानं धत्ते नारायणो विभुः ।
योगिध्येयः स भगवान् शालग्रामाख्यतां गतः ॥३६॥
अवतारो न मे ग्राह्यः कलाविति शिलामयः ।
पाति विश्वमरूपोऽपि कृपया भक्तवत्सलः ॥३७॥
शालग्रामं तु यो भक्त्या कलावभ्यर्चयेन्नरः ।
राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ॥३८॥
शिलात्रयं तु यो ब्रह्मन्नर्चयेद् भक्तितत्परः ।
मन्येऽहं तेन कृतिना पूजितं भुवनत्रयम् ॥३९॥
शिला द्वादश यः कश्चिदर्चयेद् वा कलौ युगे ।
तस्य पुण्यस्य संख्यां नो चित्रगुप्तोऽपि वेत्त्यलम् ॥४०॥
एवं द्वारवतीचक्रं सहितं त्वर्च्चयेद् भुवि ।
महापापोपपापैश्च वृतो याति न रौरवम् ॥४१॥

शिवनाभं समभ्यर्च्य भक्त्या परमया पुनः ।
हरिहरात्मकः सौ (कोऽसौ) वै भवेदेव न संशयः ॥४२॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की त्वते(त्विमे)दश ॥४३॥
भूमेर्भारावताराय वासुदेवो जगत्प्रभुः ।
अवतारैर्द्दशद्रूपैरवतीर्णो महीतले ॥४४॥
नारायणोऽथ भगवान् दामोदर इति क्वचित् ।
त्रिविक्रमो विश्वरूपो गोविन्दोऽथ इति क्वचित् ॥४५॥
गदाधरो माधवश्च चक्रपाणिरिति क्वचित् ।
एवं रूपैर्बहुविधैर्धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥४६॥
जलशायी क्वचित्तत्त्वात् क्वचिल्लक्ष्म्या युतः प्रभुः ।
ताक्ष्र्यारूढः क्वचिद्देवः शेषे सुप्तः क्वचित्प्रभुः ॥४७॥
नृत्यन् वेणुजनादेन गोपीभिः परिवेष्टितः ।
एवंविधैर्बहुविधैर्धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥४८॥
सोऽवसत्तत्समीपेऽथ एकलिङ्गस्य केशवः ।
इन्द्रोऽग्निर्धर्मराजश्च वरुणो वायुरेव च ॥४९॥
कुबेराद्याः सुराः सर्वे न्यवसंस्तत्समीपतः ।
सिद्धचारणगन्धर्वाः पिशाचोरगकिन्नराः ॥५०॥
मुनयः सागरा नद्यः पर्वताः सकलं च यत् ।
पर्वताः पर्वतेष्वासन् वृक्षा वृक्षेषु संस्थिताः ॥५१॥
तीर्थानि कूपवापीषु नदीषु च सरस्सु च ।
क्षेत्रपालास्तथा सर्वे दिक्षु सर्वासु संस्थिताः ॥५२॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च रक्षां कुर्वन्ति ये सदा ।
उवास हनुमांस्तत्र शाकिनी रक्षसां गणः ॥५३॥
विषमज्वरदुष्टादिभयहन्ता नृणां भुवि ।
एवं मुने जगत्सर्वमेकलिङ्गसमीपतः ॥५४॥
हिताय सर्वभूतानां सर्वकामार्थसिद्धये ।
वसन्ति तत्र चान्येऽपि सूक्ष्मरूपसमाश्रिताः ॥५५॥
एकलिङ्गस्य पुरतः पूर्वस्यां दिशि तीर्थराट् ।
तडागं वर्तते तत्र समीपे शङ्करस्य यत् ॥५६॥
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातमिन्द्रहत्याविनाशकम् ।
यत्र स्नातः कृतयुगे मुक्तो वृत्रस्य हत्यया ॥५७॥

एकलिङ्गं समाराध्य प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।
त्रेतायां नन्दिनी धेनुः स्नात्वा पीत्वा पयोऽथ वै ॥५८॥
प्रणम्य शङ्करं पश्चादजैषीद् गाधिनन्दनम् ।
द्वापरे तक्षको नागस्तत्र स्नात्वा च शङ्करम् ॥५९॥
समाराध्य भयं लेभे सर्पसत्रान्निरामयः ।
ददौ नागह्रदं ग्रामं द्विजाग्रेभ्यः स तक्षकः ॥६०॥
अतो नागह्रदं तीर्थं विख्यातं भुवि सर्वतः ।
ह्रदो नागेन विहितस्तक्षकेण महात्मना ॥६१॥
तत्र स्नात्वा भयं नास्ति विषात् स्थावरजङ्गमात् ।
श्रावणस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां स्त्री नरोऽपि च ॥६२॥
तत्र स्नात्वा तक्षकेशं दृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।
सर्पतो न भयं तस्य दस्युतो वा न रोगतः ॥६३॥
तत्र स्नात्वा प्रदातव्यं सर्पाणां प्रीतये नरैः ।
ततः कलौ तु सम्प्राप्ते वाष्पहारीतकावुभौ ॥६४॥
इन्द्रतीर्थे कृतस्नानौ स्वं स्वं काममवापतुः ।
तस्मिन् सरसि यः स्नानं कृत्वा तु पितृतर्पणम् ॥६५॥
नमस्कृत्यैकलिङ्गं तु विन्ध्यबासां तथाम्बिकाम् ।
सुरानन्यान्नमस्कृत्य शिवलोकं च गच्छति ॥६६॥
माघस्नानं तु यः कुर्यात् प्रातः स्नानमथापि वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते शिवसन्निधौ ॥६७॥
उपोष्य शिवरात्रिं यः स्नात्वा तस्मिन् सरोवरे ।
ब्राह्मणाय वृषं दत्वा रुद्रसायुज्यमश्नुते ॥६८॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चान्योऽपि मानवः ।
स्नात्वा किञ्चित् प्रदत्वा च सर्वमक्षय्यमाप्नुयात् ॥६९॥
महापातकयुक्तोऽपि तथा युक्तोऽपि पातकैः ।
स्नात्वा मुञ्चति पापानि जीर्णत्वचमिवोरगः ॥७०॥
एकलिङ्गस्य पुरतो वेदपारायणं द्विजः ।
अधीत्य पुरतः शम्भो राजसूयफलं लभेत् ॥७१॥
गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कृत्वा पूजादिकं नरः ।
इहलोके भवेद् राजा मृतो रुद्रगणो भवेत् ॥७२॥
भूमिदानहिरण्यादिधेनुवस्त्रान्नमेव च ।
घृतादिकं प्रियं चान्यद् दत्वानन्तफलं लभेत् ॥७३॥

पञ्चामृतेन यो देवं स्नापयेद् भक्तितत्परः ।
गर्भवासं न चाप्नोति न वा रौरवमज्जनम् ॥७४॥
करजे कुण्डके कश्चिदभिषेकं सकृत्कलौ ।
कुरुते न च गर्भेषु मज्जते देवरूपभाक् ॥७५॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां विन्ध्यवासिनी[म्] ।
सम्पूज्य जप्त्वा हुत्वा च चिन्तितं प्राप्नुयात् फलम् ॥७६॥
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्गीतैर्नृत्यैरथाम्बिकाम् ।
अर्च्चयन् ब्राह्मणो विद्यामितरो धनमाप्नुयात् ॥७७॥
कुटिलायां भवेद् येषां देहदाहं शरीरिणाम् ।
गच्छन्ति ते दिवं युक्ताः सगरस्य सुता इव ॥७८॥
अर्द्धोदके योऽनशनं कुर्यात् काष्ठाधिरोहणम् ।
वाराणस्यां प्रयागे वा मरणादधिकं भवेत् ॥७९॥
चातुर्मास्ये तु यस्तत्र वसतीह जितेन्द्रियः ।
वाराणस्यामामरणं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥८०॥
देवीं देवं तु यो भक्त्या परितोष्य प्रदक्षिणाम् ।
कुर्यात्, प्रदक्षिणी भूमिः कृता तेन ससागरा ॥८१॥
शतैः सहस्रैः पुष्पाणां लक्षैर्वा कमलादिकैः ।
अर्च्चयेदेकलिङ्गं यो भवेत्पूज्यो जगत्त्रये ॥८२॥
तृणैः काष्ठैश्च पाषाणैर्यः कुर्याद् देवतालयम् ।
न वसेज्जननीगर्भे मोक्षं याति स निश्चयम् ॥८३॥
जीर्णोद्धारेण द्विगुणं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ।
वापीकूपतडागानामारामाणां विशेषतः ॥८४॥
देवानामर्च्चनायैव कुरुते पुष्पवाटिकाम् ।
इहलोके भवेद् भोगी मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥८५॥
यतिभ्यस्तापसेभ्यश्च दीनानाथेभ्य एव च ।
भैक्ष्यमन्नं तु यो दद्यात् सोऽमृतं पिबते दिवि ॥८६॥
विद्यादानं तु यस्तत्र द्विजातिभ्यः प्रयच्छति ।
अ[I]मोक्षान्न जहात्येव सो नयत्यमृतं पुनः ॥८७॥
यो धर्मपथिनीं शालां कुरुते तत्र मानवः ।
तापत्रयविनिर्मुक्तः स स्वर्गे सुखमेधते ॥८८॥
ये चान्ये कुर्वते दानं जपहोमार्चनादिकम् ।
तेनैव संशयो ब्रह्मन्नेकलिङ्गे परात्मनि ।
विलयं यान्ति कर्मभ्यस्तमः सूर्योदये यथा ॥८९॥
( कर्माणि तमः )

वायुरुवाच—

अथान्यं मेदपाटेऽस्मिन् लिङ्गं स्थावरजङ्गमम् ।
यथा दृष्टं च तत्सर्वं कथयिष्यामि विस्तरम् ॥९०॥
कला द्वादश सूर्यस्य मासे मासे तु याः स्तुताः ।
एकलिङ्गे स्थितिं कृत्वा मूर्तिभिः परितः स्थिताः ॥९१॥
प्रतिमासञ्च या विष्णोमूर्तयः परिकीर्तिताः ।
अनुग्रामं तथैवोक्ताः समन्तात् सर्वदिक्ष्वथ ॥९२॥
विनायकास्तथा ब्रह्मन् दिक्षु सर्वासु संस्थिताः ।
घटितानि तु लिङ्गानि शङ्करस्येह भूतले ॥९३॥
व्याकर्तुं नैव शक्यन्ते मया वक्त्रशतैरपि ।
क्षेत्रपालास्तथा ह्यासन् क्षेत्ररक्षाकरा भुवि ॥९४॥
अनुग्रामं स्थिता देशे मेदपाटेऽभयप्रदा ।
भूतप्रेतपिशाचादिराक्षसानां निवारणे ॥९५॥
आञ्जनेयोऽकरोन्मूर्तिं यो लङ्कामदहद् विभुः ।
हनुमद्भक्तिमात्रेण एकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥९६॥
निवसेन्नैव सन्देहो हनुमत्पूजनात् सदा ।
एकं देवास्त्रयस्त्रिंशत्कोटयो भुवि संस्थिताः ॥९७॥
यक्षा विधाधराः सर्पा मुनयोऽत्र समन्ततः ।
प्रत्यक्षतां न ते जग्मुर्मनुजानां कलौ युगे ॥९८॥
अर्चिता मूर्तिभिस्तत्र भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणाम् ।
रत्नधातुप्रवालादिमूर्तयश्चाश्मजाः शुभाः ॥९९॥
पूजनीया मनुष्यैश्च तथा स्थावरजङ्गमाः ।
जम्बुद्वीपे तु या मूर्त्यो यानि लिङ्गानि भागशः ॥
कथितुं नैव शक्यन्ते मया वक्त्रशतैरपि ॥१००॥

नारद उवाच—

स्वयम्भवानां लिङ्गानां श(स)कलीकरणं कृतम् ।
कामधेन्वा स्वपयसा तथा स्पृष्टा निवेशिताः ॥१०१॥
अन्यासां कथमत्रासीन्मूर्तीनां तु प्रभञ्जन ।
कथयस्व मया पृष्टः सर्वज्ञस्त्वं मतं मम ॥१०२॥

वायुरुवाच—

तपस्तप्त्वाऽसृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये ।
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ॥१०३॥

भूमिदेवास्तथा विप्रास्तेषां वाक्यमुदीरितम् ।
वासुदेववरात्तच्च नान्यथा जायते क्वचित् ॥१०४॥
अतो वेदागमोक्तैश्च पुराणस्मृतिचोदितैः ।
सकलीकरणं विद्धि देवानां मूर्तिधारणम् ॥१०५॥

**नारद उवाच—**

सकलीकरणं ज्ञानं त्वदुक्तं च तथा तथा ।
देवत्वं यदि मूर्तीनां भग्ने तासां कथं भवेत् ॥१०६॥
यवनाग्न्यादिघातानां पतनादिसमुद्भवम् ।
संशयं छिन्धि मे वायो सर्वज्ञस्त्वं मतो मम ॥१०७॥

**वायुरुवाच—**

यथा दैत्यास्तु देवानां हिंसने मतिमादधुः ।
यवनाद्यास्तथा ब्रह्मन् मूर्तिभङ्गे कृतोद्यमाः ॥१०८॥
प्रभावैस्ते शपेयुर्न पूर्ववैरनियन्त्रिताः ।
प्रतिमा यदि भग्ना चेदन्यां स्थाप्य सुलक्षणाम् ॥१०९॥
आवाह्य तत्र चाभ्यर्चेदन्यथा निष्फलं भवेत् ।
अन्ये ये नास्तिकाः क्रूरा वेदबाह्याश्च निन्दकाः ॥११०॥
पाषण्डिनो विकर्मस्था बिडालबकवृत्तयः ।
कर्मतो यवनान् विद्धि विशेषेण कलौ युगे ॥१११॥
प्रभावेणापि देवस्तान्न शापं दत्तवानिह ।
महत्पापेन ते शप्ता नरकानेकविंशति (तीः) ॥११२॥
भुक्त्वाऽति-दुःखं भूयस्ते कुयोनिषु पतन्ति वै ।
काणाः कुब्जाः कुरूपाश्च पङ्ग्वन्धा व्याधिपीडिताः ॥११३॥
दरिद्रा बहुशोकाश्च जातिहीना मृतप्रजाः ।
तापत्रयेण सन्तप्ता दुःखैरन्यैः समन्विताः ॥११४॥
कुयोनिषु च सम्भूय स्थावराः कृमिकीटकाः ।
पच्यन्ते नरकेष्वेव यावदाहूतसम्प्लवम् ॥११५॥
रुद्रो वह्निर्यथा(?)विश्वं कल्पान्ते कालचोदितः ।
तथा मूर्तिजगत् सर्वं नश्यते कालभावतः ॥११६॥

सङ्गत्या वै पापकृन्मानवानां तुल्यं दण्डं साधवः संस्पृशन्ति ।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापैः सङ्गमं नैव कुर्यात् ॥११७॥

मनःप्रसन्नताशौचं देवतां मनसि स्मरन् ।
प्रायश्चित्ती च विधिवद् ब्राह्मणानर्चयेद् भुवि ॥११८॥
स विधूयेह पापानि परं ब्रह्माधिगच्छति ।
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥११९॥

नारद उवाच—

कलौ प्राप्ते तु लोकानां य आचारो भविष्यति ।
तन्ममाचक्ष्व वेगेन भवात्मा यं (त्वं) यतः स्मृतः ॥१२०॥

वायुरुवाच—

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमस्मृतिः ।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पाराशरी स्मृतिः ॥१२१॥
पाराशरीमजानन्तः स्वकर्मपरिपालकाः ।
तेषां न तत्फलं प्रोक्तं विकुर्वाणा द्विजातयः ॥१२२॥
अतः कालभवो मृत्युस्तान् हिनस्त्यखिलान् जनान् ।
ब्राह्मणस्तु कृतः प्रोक्तस्त्रेता च क्षत्रियः स्मृतः ।
द्वापरो वैश्य इत्याहुः कलिः शूद्र उदाहृतः ॥१२३॥
कलौ शूद्रा हि राजानो भविष्यन्ति शनैः शनैः ।
वेदमार्गविहीनाश्च स्वेच्छाचारबहिर्मुखाः ॥१२४॥
वर्णाश्रमाचारधर्मा न (न्न)जानन्तो द्विजातयः ।
उन्मार्गगामिनो नित्यं यथा राजा तथा प्रजाः ॥१२५॥
शूद्रादीनां कलौ प्राप्ते समृद्धिर्जायते भृशम् ।
शूद्राः शूद्रेषु दास्यन्ति बुद्धरूपो जनार्दनः ॥१२६॥
कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मेदसि स्थिताः ।
द्वापरे रुधिरे प्रोक्ताः कलावन्ने प्रकीर्तिताः ॥१२७॥
कृते राष्ट्रं तथा लिप्येत्त्रेतायां ग्राममेव च ।
द्वापरे कुलमेकं च कलौ कर्ता च लिप्यते ॥१२८॥

कलौ प्राप्ते मानवा सत्यहीनाः पापाचारा दुष्टसङ्गाः कुरूपाः ।
स्वल्पायुष्या धर्महीनाः कृतघ्नाश्चौरा दुष्टा नास्तिका दुष्टभावाः॥१२९॥
नो मन्यन्ते मातरं भ्रातरं च पूज्यं ज्येष्ठं पितृदेवादितीर्थम् ।
नैव प्राज्ञं नो गुरुं भ्रातृजायां नो धर्मं नो वेदमार्गं न शास्त्रम् ॥१३०॥
पौराणोक्तं स्मृतिमार्गं न चैव इष्टापूर्तं नैव जानन्ति किञ्चित् ।
तपो व्रतं कृत्यमकृत्यमेव न तेषु वै स्यात् शुभं(भः)कर्मभावम्(वः)॥१३१॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ च दम्भो मात्सर्यं वार(ऽग)म्यगामित्वमेव ।
पैशुन्यं वै दुष्टभावः परेषु येषां तुष्टिर्जायतेऽन्यप्रविघ्ने ॥१३२॥
कीर्ति(र्तें)र्हेतोर्दातुमिच्छा तदीया व्यावृत्या वा कार्यहेतोश्च कामात् ।
लोभान्मोहान्नैव धर्मार्थहेतोः सर्वं दत्तं भस्मसात्तन्नराणाम् ॥१३३॥
जीवनार्थं हि तीर्थस्य यात्रां कुर्वन्ति मानवाः ।
द्विजातयो व्रतं वापि विद्याभ्यासमथापि वा ॥१३४॥

अतिथिं तत्र नाहूय श्राद्धे मित्राभिमन्त्रणम् ।
कन्याया विक्रयश्चैव वेदविक्रय एव च ॥१३५॥
महादानप्रतिग्राही ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
पञ्चयज्ञविहीनश्च सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥१३६॥
असन्मार्गरतो लोको निजमार्गापहारकः ।
जिताश्चौरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥१३७॥
न शास्त्रं शृणुते लोको विटगोष्ठीविशारदः ।
सन्मार्गगामिनो धर्मं तर्कयन्ति विमार्गगाः ॥१३८॥
एवंविधैरनेकैश्च दोषैर्युक्ताश्च मानवाः ।
कलौ प्राप्ते भविष्यन्ति बुद्धरूपे जनार्द्दने ॥१३९॥

**नारद उवाच—**

ध्रियतेऽसौ धरा कस्मात् शेषनागेन मूर्द्धनि ।
पर्ज्जन्यो वर्षते कस्मात् नाब्धिः प्लावयते कथम् ॥१४०॥

**वायुरुवाच—**

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥१४१॥
कृते तु दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन यत् ।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत् कलौ ॥१४२॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥१४३॥
भाराक्रान्ता कलौ भूमिर्गोरूपेण दिवं ययौ ।
पितामहं नमस्कृत्य स्तुत्वोवाच सुदुःखिता ॥१४४॥
नाहं भारसहा ब्रह्मन् लोकानां पापकर्मणाम् ।
रसातलं गमिष्यामि नो चेत् त्राहि पितामह ॥१४५॥

**ब्रह्मोवाच—**

यः कश्चिज् ज्ञानवान् दान्तः शुचिर्दाताऽनसूयकः ।
पञ्चयज्ञरतः शान्तो वेदविद्वेदमार्गगः ॥१४६॥
युगत्रये य आचारस्तेन वर्तेत कर्हिचित् ।
स वोढव्यस्त्वया देवि किमन्यैर्नारकादिभिः ॥१४७॥
इत्येतत् कथितं सर्वं किमन्यत् कथयामि ते ॥१४८॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये कलिस्वरूप-
वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः

## अथ त्रयोदशोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

कलौ प्राप्ते मनुष्येषु जरारोगादिकेषु च ।
संसारार्णवमग्नेषु न स्वमार्गे प्रवर्तिषु ॥ १ ॥
निष्ठुरेषु कृतघ्नेषु पिशुनेषु दुरात्मसु ।
शास्त्रार्थस्यानभिज्ञेषु स्वस्वमत्युपजीविषु ॥ २ ॥
जीवनार्थोपदेशं वै कृत्वा धर्मपरेषु च ।
द्दषे(?)शयोर्मध्यदेशे स्थित्वा [ऽ] धर्मपरेषु च ॥ ३ ॥
ईश्वरस्य च विप्रस्य पूजायां व्युत्क्रमेषु च ।
संसारसागरस्यान्तःपतितेषु समीरण ॥ ४ ॥
एतादृशेषु दृष्टेषु स्वस्वपक्षाश्रितेषु च ।
एकलिङ्गः कृपां चक्रे कथं तेषु वदस्व मे ॥ ५ ॥

**वायुरुवाच—**

सांख्यैर्नैयायिकैश्चैव जैनपाशुपतादिभिः ।
चार्वाकैर्बौद्धमतिभिः पन्थानो बहवः कृताः ॥ ६ ॥
पाषण्डिभिस्तथाल्पज्ञैर्विस्तृताः क्रूरबुद्धिभिः ।
भ्रामितं च जगत्सर्वं रजोवातैरिवोद्धतम् ॥ ७ ॥
अनीश्वरं जगदिति वदन्त्यन्ये कुतार्किकाः ।
तेषां मतं नु विज्ञाय कलौ प्राप्ते महामुने ॥ ८ ॥
एकलिङ्गोऽथ भगवान् मनुष्येष्वकरोत् कृपाम् ।
अष्टभिर्मूर्तिभिश्चाथ धत्ते स्थावरजङ्गमम् ॥
परोपकृतये शम्भुर्भूतनाथो निगद्यते ॥ ९ ॥
गुरूपदिष्टमार्गेण देवं सम्पूज्य बुद्धिमान् ।
शिवसायुज्यमाप्नोति शिवभक्त्या महामुने ॥१०॥
यतेरन्त्याश्रमस्यापि शास्त्रज्ञस्य शिवस्य च ।
गुरुत्वं चाथ नान्येषां कदाचित् सम्भवेद् भुवि ॥११॥
नमः कपर्द्दिने चेति व्युप्तकेशाय चेति च ।
विशिखं (खे) यतिमात्रं (त्रे) तु गुरुत्वं श्रुतिराह च ॥१२॥
असंख्यातैस्तु रुद्रैश्च पाल्यते भुवनत्रयम् ।
कृतादिषु त्रिषु श्रीशो मत्स्योऽभूद् वामनस्तथा ॥१३॥
कूर्मो नृसिंह इत्यासीद्रामो राम इति प्रभुः ।
कलौ प्राप्ते स भगवान् बुद्धो योगीश्वरो हरिः ॥१४॥

योविष्णुः स च वै रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः ।
यो ब्रह्मा स च वै-शम्भुः प्रधानोऽपि स वै स्मृतः ॥१५॥
हत्वा दैत्यान् वासुदेवः श्रान्तः शान्तश्च पालने ।
बुद्धरूपधरो देवः कलौ योगीश्वरोऽभवत् ॥१६॥
बुद्धरूपं हरिं ज्ञात्वा शङ्करो लोकशङ्करः ।
अतः कृपां मनुष्येषु नाथो [ऽ] नाथेषु चाकरोत् ॥१७॥
वैद्यनाथमयैर्लिङ्गैरसङ्ख्येयैरभूद् विभुः ।
सोमनाथ इति ख्यातिं तथा विश्वस्य पालनात् ॥१८॥
वैद्यनाथस्य लिङ्गानि बहून्यासन् समन्ततः ।
मेदपाटेऽन्यदेशेषु जम्बूद्वीपे विशेषतः ॥१९॥
वैद्यनाथ इति ख्यातो रामाख्यो रामरूपधृक् ।
यस्तं पश्यति देवेशं सर्वव्याधिहरं हरम् ॥२०॥
तस्य रोगभयं नास्ति नरकस्य भयं न च ।
दारिद्रस्य भयं नैव न पापस्य न शत्रुतः ॥२१॥
रविवारे च यः शम्भुं पञ्चामृतसमुद्भवैः ।
स्नापयेत्तीर्थपानीयैः पुष्पधूपादिभिस्तथा ॥२२॥
तस्य रोगस्य शोकस्य न भयं विद्यते क्वचित् ।
देहान्ते परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥२३॥

सूत उवाच—

ऋषिशृङ्गस्य माहात्म्यं मयोक्तं शृण्वतः परम् ॥२४॥
पुरा दशरथो राजा सूर्यवंशसमुद्भवः ।
सर्वैर्नृपगुणैर्युक्तो जनं पालयति प्रभुः ॥२५॥
तस्यैवं शासतो भूमिं शरदामयुतं ययौ ।
सन्ततिस्तस्य नैवासीत् ऋषिशृङ्गमतोऽभ्यगात् ॥२६॥
वशिष्ठस्य मतेनैव पुत्रेप्सुः स महीपतिः ।
तत्र तं मृगरूपेण चरन्तं मृगजातिषु ॥२७॥
लोभयामास विविधैर्भक्ष्यभोज्यैरितस्ततः ।
अलङ्कृताभिर्नारीभि - र्वंशवीणादिभिस्तथा ॥२८॥
लोभितस्तेन स मुनिर्विभाण्डकसुतस्ततः ।
एकचित्ततया सर्वं विष्णुरूपमपश्यत ॥२९॥
लोभितस्तेन स मुनिरानीतो निजमन्दिरम् ।
पुत्रेष्टिं कारयामास वशिष्ठानुमतेन च ॥३०॥

चत्वारो य (ज)ज्ञिरे तस्य रामाद्याः कुलभूषणाः ।
चतुर्भिरंशैर्भगवान् वासुदेवो जगत्पतिः ॥३१॥
भावित्वादवतीर्णोऽसौ रावणस्य वधाय च ।
भूमेर्भारं लघुं कर्तुं विश्वस्य स्थितये पुनः ॥३२॥
रामोऽथ भरतः श्रीमान् लक्ष्मणस्तदनन्तरम् ।
शत्रुहा चैव शत्रुघ्नश्चत्वारो नृपसूनवः ॥३३॥
यत्प्रसादात्सुताश्चासंस्तस्य राज्ञो महात्मनः ।
तमापृच्छ्य ततः सोऽथ ऋषिशृङ्गः समागतः ॥३४॥
तेजस्वी ज्ञानसम्पन्नः सर्वभूतहिते रतः ।
ऋषिशृङ्गः स्थितस्तत्र यस्य शृङ्गमभूत्ततः ॥३५॥
एकलिङ्गस्य सान्निध्यमुवास मुनिसत्तमः ।
वायुभक्षोऽभवद्धीमान् निर्द्वन्द्वो निः(निष्)परिग्रहः ॥३६॥
वातातपसहो नित्यं निराहारः सदा शुचिः ।
लोभितोऽहं नृपतिना त्यक्त्वा लोभमथाविशत् ॥३७॥
निर्जले पर्वते ब्रह्मन् फलहीने फलप्रदः ।
भाद्रे मासि मुनिश्रेष्ठ यात्रा तस्य मुनेः स्मृता ॥३८॥
पञ्चम्यां कृष्णपक्षस्य तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् ।
श्राद्धं कृत्वा तथान्यैश्च पायसैर्भोजयेन्नवैः ॥३९॥
ऋषिशृङ्गं तथाऽभ्यर्च्य पञ्चामृतसमुद्भवैः ।
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैः पायसैर्दीपकैस्तथा ॥४०॥
सर्वान् कामानवप्नोति पुत्रान् वंशधुरन्धरान् ।
अथापरो मुनिवरः पाराशर इति स्मृतः ॥४१॥
अनादिर्जगतामादिर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तस्मादभूद् वशिष्ठश्च शक्तिस्तस्मादभून्मुनिः ॥४२॥
ततः स भगवान् शक्तिः पराशर इति स्मृतः ।
तस्माद् व्यासोऽभवच्छ्रीमान् कृष्णद्वैपायनो विभुः ॥४३॥
शुकस्तस्मादभूद् योगी समः सर्वेषु जन्तुषु ।
एवं ब्रह्मकुले विप्रजातोऽसौ मुनिसत्तम ॥४४॥
अतः पराशरमुनिः ख्यातोऽभून्मुनिपुङ्गवः ।
एकलिङ्गं स्थिरं मत्वा वासं तत्र व्यरोचयत् ॥४५॥
पातालादानयामास गङ्गां त्रिपथगामिनीम् ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥४६॥

स्नानं तर्पणश्राद्धं च दानं होमं तथा जपम् ।
सर्वमक्षयतां याति गङ्गोद्भेदे कलौ युगे ॥४७॥
तत्समन्तात् ततो देवा अश्ममूर्तिभिरूषिरे ।
वासुदेवो जगद्व्यापिमार्तण्डाद्या ग्रहास्तथा ॥४८॥
लिङ्गानि तत्र बहुशो देव्यश्चात्र समन्ततः ।
क्षेत्रपालास्तथा तत्र गणेशो विघ्ननाशनः ॥४९॥
मुदमान् मादनोन्मादो हार्दः प्रह्लादनस्तथा ।
प्रह्लादनं नमस्कृत्य सर्वविघ्नच्छिदं भुवि ॥५०॥
सर्वान् कामानवाप्नोति शङ्करस्य गणो भवेत् ।
कस्तूर्यगरुकर्पूरैश्चन्दनैः कुङ्कुमादिभिः ॥५१॥
पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैः शुभैर्मोदकसंचयैः ।
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैः स्तुतिभिश्च गणेश्वरम् ॥५२॥
निर्विघ्नो जायते जन्तुः सदा प्रह्लादनार्च्चकः ।
चतुर्थ्यां यो गणेशं तमर्चयेदतिभक्तिमान् ॥५३॥
तस्य विघ्नभयं नास्ति आजन्ममरणाद् भुवि ।
अनुप्रवाहं नद्याश्च वैद्यनाथः परे तटे ॥५४॥
तत्र स्नात्वा तमभ्यर्च्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वकामप्रदं देवं रोगशोकहरं परम् ॥५५॥
इहलोके सुखं प्राप्य प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।
दुरिताच्च विनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥५६॥
नद्याश्च दक्षिणे कूले लोमशस्याश्रमं महत् ।
तपश्चचार सुमहल्लोमशो मुनिसत्तमः ॥५७॥
चान्द्रायणैर्ययौ कालं कृच्छ्रसान्तपनैस्तथा ।
पराकैस्तप्तकृच्छ्रैश्च पादकृच्छ्रादिकैस्तथा ॥५८॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपोषैरनयत् कालं नित्यं ध्यानपरः शुचिः ॥५९॥
पक्षे गतेऽथवा स्नाति मासे वाऽह्नि चागते ।
यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्वा विलिम्पति ॥६०॥
अक्रुद्धः परितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ॥६१॥
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते रात्रावप्सु वसन्मुनिः ।
वायुभक्षोऽम्बुभक्षश्च पर्णभक्षः क्वचित् क्वचित् ॥६२॥
निराहारः क्वचिदपि अस्थिमात्रकलेवरः ।
तदोजसा वनं दीप्तमाकाशमिव भानुना ॥६३॥

लोमशस्य शरीराच्च महाकल्पे महात्मनः ।
लोमैकं भ्रश्यते ब्रह्मन् तेन वैराग्यमागतः ॥६४॥
न कुटीं कुरुते सोऽथ विनाशित्वान्निराशवान् ।
अथैकस्मिन्नवसरे लिङ्गैः पूर्णां महीमिमाम् ॥६५॥
एकलिङ्गस्य सान्निध्ये कामधेनोः प्रभावतः ।
दृष्ट्वा मुनिवरः श्रेष्ठः शिवलिङ्गं चकार ह ॥६६॥
मत्वाऽविनाशि पाषाणं मह्या सार्द्धं युगक्षये ।
अतः पिञ्जुलिकां बद्ध्वा काष्ठानां मुनिसत्तमः ॥६७॥
लिङ्गं सस्मार स मुनिः शङ्करस्य महात्मनः ।
काष्ठेश्वर इति ख्यातो दृषत्त्वं प्राप्य शङ्करः ॥६८॥
तस्मै वेत्रासनं दत्तं तया नद्या प्रभावतः ।
तेन वेत्रवती नाम्ना ख्यापिता लोमशेन ह ॥६९॥
तस्यां नद्यां नरः स्नात्वा कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
गङ्गायाः फलमाप्नोति सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥७०॥
नमस्कृत्य महेशं तं लोमशं च मुनीश्वरम् ।
स विधूयेह पापानि परं ब्रह्माधिगच्छति ॥७१॥
नद्या उत्तरतो ब्रह्मन् शेषेति जगदम्बिकाम् ।
अपूजयत् परां राजा सुरथो नाम वीर्यवान् ॥७२॥
समाधिश्च तथा वैश्यो भक्त्या परमया युतः ।
शेषेति चास्य विश्वस्य पूज्या देवगणैः सह ॥७३॥
सृष्टयादौ च तथान्ते च मध्ये या सर्वदा परा ।
ध्येया सर्वस्य जननी यस्यामादौ न कर्हिचित् ॥७४॥
वरप्रदा च भक्तानां तेन शेषेति कथ्यते ।
तौ तां महीमयीं मूर्तिमर्चयामासतुः सदा ॥७५॥
समाधिसुरथौ त्यक्तौ बन्धुभिर्लोभमोहितैः ।
तयोस्तुष्टा जगद्धात्री त्रिभिर्वर्षैर्जितात्मनोः ॥७६॥
ददौ यथेप्सितं कामं तेन सा ख्यातिमागता ।
अष्टम्यां च नवम्यां च चतुर्द्दश्यां विशेषतः ॥
नद्यां स्नात्वा प्रणम्यैनामीप्सितं लभते फलम् ॥७७॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये लोमशाश्रमवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

## अथ चतुर्दशोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

वैद्यनाथादिलिङ्गानि त्वयोक्तानि समासतः ।
सोमनाथ इति प्रोक्तः क्वासौ तिष्ठति शङ्करः ॥ १ ॥
सोमनाथः क्व सम्भूतो विश्वनाथः प्रचक्षते ।
एतद् विस्तरतोऽस्माकं कथयस्व प्रभञ्जन ॥ २ ॥

**वायुरुवाच—**

एकलिङ्गा [द्] दक्षिणतो योजनानां च सप्तकात् ।
स्मृतोऽसौ कामधेन्वा च स्वयम्भूतो महेश्वरः ॥ ३ ॥
पुरा दक्ष इति ख्यातो विश्वस्यास्य प्रजापतिः ।
पुत्राणामसृजत् सोऽथ सहस्रं भूरितेजसाम् ॥ ४ ॥
सृष्टयर्थं तु प्रजाः सृष्ट्वा तानुवाचेति पुत्रकान् ।
भुवः प्रमाणं विदितं भवद्भिर्नेति तेऽब्रुवन् ॥ ५ ॥
तेनोक्तं चैव सर्वेभ्यो ज्ञातव्या भूः प्रमाणतः ।
सृष्टिः स्यादधिका ह्येषा पृथ्वी किं वाऽधिका पुनः ॥ ६ ॥
विषमत्वं भवेदद्य तस्मादुर्वीं विलोक्यताम् ।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे दिक्षु सर्वासु जग्मिरे ॥ ७ ॥
अद्यापि न निवर्तन्ते भुवोऽन्तमनवाप्य च ।
ततो दक्षोऽसृजत् पुत्रसहस्रमपरं किल ॥ ८ ॥
तमभ्येत्य मुने ते हि पूर्वमार्गे निवेशिताः ।
तेषां गतिमनु ज्ञात्वा ततो दक्षोऽसृजत् पुनः ॥ ९ ॥
दुहितॄणां सहस्रं च सृष्टयर्थं भगवान् पुनः ।
सोमाय च ददौ सप्तविंशतिं सृष्टिहेतवे ॥१०॥
सोमस्ताभिर्मनोज्ञाभिर्मुमुदे देववल्लभः ।
तथाऽसौ रोहिणीं भार्यामधिचक्रे सुमध्यमाम् ॥११॥
अन्यासु न तथा प्रीतिर्वर्तते तस्य कामिनः ।
ताभिरुक्तं च सर्वं वै ज्ञात्वा तदाऽशपद् विधुम् ॥१२॥
दक्षोऽपि ज्ञानदृष्टया वै बुद्ध्वा क्रुद्धस्त्वरान्वितः ।
गत्वा चन्द्रमसो गेहमित्युवाच महामुने ॥१३॥
यस्मान् मम सुताः सोम व्यक्तिभेदेन पश्यसि ।
तस्मात् क्षयी भवाद्याशु मम शापान्न संशयः ॥१४॥

**सूत उवाच—**

क्षीणीभूते ततश्चन्द्रे जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
क्षीणरूपं तथा ह्यासीत्ततः सोमो जगाम ह ॥१५॥

आरिराधयिषुः शम्भुं सोमनाथं क्षयान्वितः ।
गन्धादिना तमभ्यर्च्य भक्त्या परमया पुनः ॥१६॥

तं तु प्रणम्य देवेशं स्तुतिं चक्रे महात्मनः ।

**सोम उवाच—**

धत्ते विश्वं विश्वकृद् यो विधाय,
मूर्तीरष्टौ पालयन् यो जगन्ति ।
देहे देहे दीपवत् स्वप्रकाशः,
कृत्वा चान्ते संजहाराथ विश्वम् ॥१७॥

यस्य स्मृत्या पातकानाममुष्मिन्,
लोके लोकस्याशु दुःखापहारः ।
दुर्वासा वै मुनिरत्रिप्रसूत–
स्तपश्चक्रे आनसूयत्वमीहन् ॥१८॥

ब्रह्माण्डाद्यां निःसृतां जह्नुकन्यां
दृष्ट्वा चास्या उग्रतापाच्च भूमेः ।
भेदं मत्वा यां व्यधत्ताथ मूर्ध्ना
नमस्तस्मै सोमनाथाय नित्यम् ॥१९॥

रोषात् कामं भस्मसाद् यश्चकार
योषिद्रूपैर्मोहयन्तं जगन्ति ।
कृत्वाऽनङ्गं तं च सृष्ट्यार्थमेव
नमस्तस्मै सोमनाथाय नित्यम् ॥२०॥

कैलाशाद्रिमुज्जिहीर्षुं दशास्यं
यो वै चक्रे पीडितं स्वाङ्घ्रिभारात् ।
उमाभीत्या श्लेषतुष्टोऽस्य नूनं
नमस्तस्मै सोमनाथाय नित्यम् ॥२१॥

ज्ञातुं ब्रह्मा यस्य रूपं तथोदूर्ध्व–
मगाद् विष्णुरप्यधस्ताद् यदन्तम् ।
ताभ्यामन्तस्तस्य न ज्ञात एव
नमस्तस्मै सोमनाथाय नित्यम् ॥२२॥

यज्ञध्वंसं यश्चकारोग्ररूपो
रूपो(?)दक्षस्याशुरोषाद् भवान्याः।
वहूनि रूपाण्यसृजद् य एको
नमस्तस्मै सोमनाथाय नित्यम् ॥२३॥
पुरा देवैर्मन्थने सागरेऽपि
तस्माज्जातेष्वाशु रत्नेषु भूयः।
विषं कोऽन्यस्त्वद्दते भक्षते वा
नमस्तस्मै सोमनाथाय नित्यम् ॥२४॥
कलौ प्राप्तेऽनाथवत्सु जनेषु
नाथो भूत्वा सोमनाथेन नाम्ना।
पङ्गूनन्धान् दद्रुकुष्ठादितप्तान्
रोगग्रस्तान् त्वदृते (कुरुते) यो नवीनान् ॥२५॥

सूत उवाच—

एवं स्तुतः सोमनाथः सोमेन क्षयरोगिणा।
तुतोषास्मै करुणया सोमं वाक्यमुवाच ह ॥२६॥

सोमनाथ उवाच—

यथा क्षयी भवान् जातः सोमे (म) विदितमेव हि।
नद्यां स्वाम्यां समाप्लुत्य समाराधय सत्वरम् ॥
क्षीणशापस्ततो भूत्वा क्षीणोऽक्षीणो भविष्यसि ॥२७॥
कृष्णपक्षे तनुक्षीणः सितेऽक्षीणवपुः पुनः।
ह्रासवृद्ध्या च कलया पक्षे पक्षे भविष्यसि ॥२८॥
दर्शे दर्शे तु मां दृष्ट्वा स्नात्वा स्वाम्यां निशाकर।
मोदयस्व म(मु)दं प्राप्य जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥२९॥
सोमनाथो भविष्यामि त्वन्नाम्नाऽहं युगे युगे।
यो भक्त्याऽऽराधयेन्नित्यं सोमवारे विशेषतः ॥३०॥
तस्य रोगभयं न स्यात् किं वा शोकभयं पुनः।
पापौघमखिलं हन्मि दुःखतोऽथ भयं तथा ॥३१॥
काममन्यमभीष्टं वा दद्यां भक्तस्य चन्द्रमः।
अहं यास्यामि लिङ्गत्वं कलौ प्राप्ते दृषन्मयम् ॥३२॥

वायुरुवाच—

इति श्रुत्वा प्रणम्यैनं तपस्तप्त्वाऽथ चन्द्रमाः।
तत्प्रसादाद् वरं प्राप्य गतो नक्षत्रमण्डलम् ॥३३॥

एवं स भगवान् रुद्रो बह्वीभिश्च स्वमूर्तिभिः ।
पालयामास भुवनं पिता पुत्रानिवौरसान् ॥३४॥
क्वचित् सोमेश्वर इति वैद्यनाथ इति क्वचित् ।
अनीश्वरं जगदिति वाक्यं श्रुत्वा कुतर्किणाम् ॥३५॥
भुवनं पाति विश्वात्मा विशेषेण कलौ युगे ।
विश्वनाथः परानन्दः पाति नित्यं जगत्त्रयम् ॥३६॥
पञ्चक्रोशात्मको भूत्वा वाराणस्यां सदा मुने ।
कृतादिषु त्रिषु हरिरवतीर्य मुहुर्महीम् ॥३७॥
वाति रूपैर्नृसिंहाद्यैर्बुद्धः सोऽद्य कलौ स्थितः ।
अतोऽनीशं कलियुगं मत्वा शास्ति जगत्प्रभुः ॥३८॥
सोमेशविश्वनाथाद्यै रूपैर्व्याप्य महीमिमाम् ।
जन्तून् कुष्ठादिभी रोगैर्ग्रस्तान् दृष्ट्वा पुनर्नवान् ॥३९॥
करोति कृपया शम्भुः स्वभक्तान् भक्तवत्सलः ।
पञ्चामृताद्यैर्यो देवं सोमवारे विशेषतः ॥४०॥
स्नापयन्नैव सो( स ) याति मातुर्गर्भे पुनः क्वचित् ।
शतैः सहस्रैः पुष्पाणां तथा लक्षैः सकृत्कलौ ॥४१॥
सोमेशमर्चयेद् भक्त्या सोऽर्च्यः स्याद् भुवनत्रये ।
गन्धधूपादिगीताद्यैर्नैवेद्यैस्तर्पयेच्छिवम् ॥४२॥
तापत्रयविनिर्मुक्तो वसेद्रुद्रस्य सन्निधौ ।
उपोष्य शिवरात्रिं यो रात्रौ जागरणं(जागृयान्) नरः ॥४३॥
स्वर्गेप्सुः स्वर्गतिं याति मोक्षेप्सुर्मोक्षमाप्नुयात् ।
येन केनैव कामेन सोमेशं पूजयेन्नरः ॥४४॥
तं तं काममवाप्नोति लभेद् वाञ्छाधिकं फलम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी च तथा धनम् ॥४५॥
सुखमारोग्यमृद्धिं च राज्यमायुः शुभां मतिम् ।
सुकलत्रं तथारोग्यमैश्वर्यं लोकपूज्यताम् ॥४६॥
सर्वप्रियत्वं सौभाग्यं सत्कीर्तिं शुभजन्मताम् ।
विद्वत्त्वं च शुभं चान्यत् सर्वं हि प्राप्नुयान्नरः ॥४७॥
एकरात्रं द्विरात्रं च त्रिचतुःपञ्चरात्रकम् ।
वसेत्सोमेशसामीप्ये नरो नार्यथवा शिशुः ॥४८॥
सप्तजन्म भवेद् भोगी होनस्तापत्रयेण च ।
अन्ते मम परं धाम प्राप्नोति स न संशयः ॥४९॥

स्तुतिं करोति देवस्य वेदपारायणं द्विजः।
सप्तजन्म भवेद् विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥५०॥
वेदान्तस्योक्तविधिना मोक्षभाक् (ग्) जायते नरः।
क्षत्रियो राज्यमाप्नोति वैश्यः शूद्रो धनं लभेत् ॥५१॥
अन्योऽपि सोमनाथं तमर्चयित्वा कलौ युगे।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥५२॥
सोमनाथस्य लिङ्गानि वैद्यनाथस्य चैव च।
ग्रामे ग्रामे स्थितिं जग्मुः स्वयम्भूस्थापितानि च ॥५३॥
तत्र तत्र स्थितः शम्भुर्जगतः परिपालनम्।
करोति रोगशोकार्त्तितप्तानां भक्तवत्सलः ॥५४॥
परलोकेऽन्यदेवानामर्चाभिः प्राप्यते फलम्।
परत्रेह च देवस्य सोमेशस्य फलं लभेत् ॥५५॥
कलिना पीडितान् दृष्ट्वा मनुष्यान् सोमशङ्करः।
कृपां मनुष्येष्वकरोद् दीनानाथेषु रोगिषु ॥५६॥
सर्वरोगाभिभूतेषु जनेषु फलदः प्रभुः।
कलौ रोगापहो नित्यमृते नास्तिककिल्विषात् ॥५७॥
जपहोमादिभिर्जातु गन्धधूपैश्च भक्तिभिः।
पापरोगविनिर्मुक्तान् सद्वैद्यश्चौषधैरिव ॥५८॥
हिनस्त्यर्को यथा ध्वान्तं स्मृतः पापमिवाच्युतः।
रोगपापं तथा जन्तोः सोमः शो (सोमेशो) नाशयेत्पुनः॥५९॥
परोपकृतये शम्भुरष्टमूर्तिरिति स्मृतः।
महिमा नैव वाच्योऽस्य मया वक्त्रशतैरपि ॥६०॥

वायुरुवाच—

इदं यः कीर्तयेज्जन्तुः सोमेशचरितं महत्।
पापरोगविनिर्मुक्तः परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥६१॥
तापत्रयभयं नास्ति सुखमत्यन्तमश्नुते।
यत्रैतद् विद्यते लिङ्गं सोमनाथस्य नारद ॥६२॥
तत्र रोगभयं न स्यात् शोकपापभयं नहि।
काले वर्षति पर्जन्यो मही सस्याभिपूरिता ॥६३॥
काले च सफला वृक्षा हृष्टपुष्टा नृपास्तथा।
हृष्टपुष्टजनः सर्वो न भयं तत्र विद्यते ॥६४॥

नारद उवाच—

सोमनाथस्य माहात्म्यं त्वयोक्तं च श्रुतं मया।
स्वामिनाम्नी कथं जाता नदी तत्र वदस्व नः ॥६५॥

वायुरुवाच—

पुरा महिषन्नामाऽभूद् दैत्यो देवबलार्दनः।
विजित्य समरे देवान् प्राप्याथ माहिषं वपुः ॥६६॥
ततो भूमिमनुप्राप्तो मानवानप्यपीडयत्।
पीडयित्वा महीं सर्वां सोमनाथसमीपतः ॥६७॥

गत्वाऽसौ विघ्नमकरोत् (द्) मनुजानां समन्ततः।
तं दृष्ट्वा सोमनाथोऽथ स्कन्दमाह महेश्वरः ॥६८॥
शक्त्यैनं जहि कल्याण लोकविघ्नकरं शठम्।
स्वामिनाऽथ तमुद्दिश्य शक्तिर्विद्युत्प्रभा मुने ॥६९॥

मुक्ता सती तस्य पार्श्वं किञ्चिद् भित्त्वा व्यवस्थिता।
ब्रह्मणो वरदानात्तु न बिभेद शरीरकम् ॥७०॥
महिषोऽथ तथा विद्धः शक्त्या सह पलायितः।
माहेन्द्रीमगमच्छीघ्रं शक्तिवह्निप्रदीपितः ॥७१॥

तापार्त्तश्च प्रहारार्त्तो जलेप्सुः स जलप्रियः।
नद्या ह्रदं चाभ्यपतत् (द्) महिषस्तप्तमानसः ॥७२॥
पातालमगमच्छीघ्रं यत्र ते दानवाः स्थिताः।
जिघृक्षुः शक्तिमगमत् स्कन्दो वेगेन पृष्ठतः ॥७३॥
शक्तिलेखामनुप्राप्य ततो जग्राह तां पुनः।
आचकर्ष करेणैव शक्ति सेनापतिस्तदा ॥७४॥
रेखामन्ववहत्तत्र स्वामिनाम्नी सरस्वती।
भूमिमध्यस्थिता नित्यं वर्ततेऽन्तर्जला नदी ॥७५॥

अतः स्वामीति नाम्ना सा नदी ख्याता महीतले।
तस्यां [ यः ] कुरुते स्नानं सरस्वत्याः फलं लभेत् ॥७६॥
कार्तिकेयोऽथ तां शक्तिं गृहीत्वा शङ्करप्रियः।
वाल्मीकिं तोषयामास माहेन्द्रीतीरवासिनम् ॥७७॥
महिषं शप्तुः (शप्तु) कामं तं तपोव्ययकृतक्षमम्।
वाल्मीकिना दत्तवरः कुमारोऽमितविक्रमः ॥७८॥
आपृच्छ्य तं मुनिवरं पुनरागान्महेश्वरम्।
वाल्मीकिः स्वाश्रमं गत्वा जहौ महिषजं भयम् ॥७९॥
तत्र त्वादिह्रदं नाम तीर्थं माहेन्द्रसम्भवम्।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वसेदिन्द्रस्य सन्निधौ ॥८०॥
माहेन्द्र्यां स्नानमात्रेण लभते वाञ्छितं फलम्।

ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी तत्सङ्गी गुरुतल्पगः ।
माहेन्द्रीस्नानमात्रेण दह्यन्ते तूलराशिवत् ॥८१॥
नद्यां स्नानं तु यः कश्चिन्माहेन्द्र्यां कुरुते नरः ।
माहेन्द्रीस्नानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८२॥
उपपापानि सर्वाणि तथा क्षुद्राण्यनेकशः ।
प्रयागस्य समं प्रोक्तं विशेषेण कलौ युगे ॥८३॥
यथा महेन्द्रो देवानां गरुडश्च पतत्रिणाम् ।
नक्षत्राणां यथा सोमो ग्रहाणां च दिवाकरः ॥८४॥
ह्रदाणामुदधिः श्रेष्ठो मेरुः शिखरिणामिव ।
धातूनां च यथा हेम माहेन्द्री च सरिद्वरा ॥८५॥
कृत्वा स्नानं (च) माहेन्द्रयां तर्पयित्वा पितॄंस्ततः ।
श्राद्धं कृत्वा नरो याति माहेन्द्रस्य च सन्निधौ ॥८६॥
न दानैर्न तपोभिश्च न व्रतैस्तीर्थगाहनैः ।
या गतिः प्राप्यते पुम्भिर्माहेन्द्रयां सा गतिर्भवेत् ॥८७॥
माहेन्द्रीति कलौ प्रोक्ता महत्त्वाच्च विशेषतः ।
सर्वतीर्थाधिका कृत्वा मुनिभिः परिकीर्तिता ॥८८॥
माहेन्द्रयां तु नरः स्नानं कुर्यात् पर्वणि पर्वणि ।
तस्य पुण्यस्य संख्यां नो चित्रगुप्तोऽपि वेत्त्यलम् ॥८९॥
इति ते कथितं सर्वं सोमनाथस्य कीर्त्तनम् ।
स्वामिनद्याश्च माहेन्द्रयाः किमन्यत् कथयामि ते ॥९०॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये सोमनाथमाहात्म्ये माहेन्द्रीवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

## अथ पञ्चदशोऽध्यायः

**शौनक उवाच—**

कथितं च त्वया सर्वं यत्पृष्टं सूतनन्दन ।
एकलिङ्गस्य माहात्म्यं सुराणामपि दुर्लभम् ॥ १ ॥
वैद्यनाथादिलिङ्गानि सोमनाथस्य चैव हि ।
एकलिङ्गात् कथं धेनुर्गता साऽमरकण्टकम् ॥ २ ॥
केन मार्गेण वा सूत दिशि कस्यामथापि वा ।
एतद् विस्तरतो ब्रूहि पुराणस्यार्थविद् भवान् ॥ ३ ॥

**सूत उवाच—**

मुनिना नारदेनैतद् वायुः पृष्टः सविस्तरम् ।
तदहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ४ ॥

एकलिङ्गात्ततो धेनुः पश्चिमां दिशमाश्रिता ।
क्रोशद्वयमितं ज्ञात्वा गर्जयामास सा तदा ॥ ५ ॥
एकलिङ्गं स्मरन् भूमौ न्यखनच्छृङ्गकोटिना ।
तेन सन्तोषयामास, गर्त्तमध्यान्महेश्वरः ॥ ६ ॥
आविर्भूतो मुनिश्रेष्ठ कुण्डेश्वर इति प्रभुः ।
तस्य दर्शनमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ॥ ७ ॥
तत्र सा सुचिरं स्थित्वा उदीच्यां सत्वरं पुरा ।
जगाम मेदपाटान्तं कृत्वा लिङ्गमयं पुरा ॥ ८ ॥
ततोऽभ्यगच्छन्मुदिता स्मृत्वा देवं महेश्वरम् ।
यत्र यत्र च सा धेनुश्चचार पृथिवीमिमाम् ॥ ९ ॥
तत्र तत्राभवन् ब्रह्मन् लिङ्गानामथ कोटयः ।
गुहेश्वरः सोमनाथो वैद्यनाथस्तथैव च ॥१०॥
नीलकण्ठः कापिलेशो विश्वनाथ इति स्मृतः ।
कुण्डेश्वर इति ख्यातो पातालेश्वर इत्यपि ॥११॥
अचलेश इति ख्यातो रामेश्वर इति प्रभुः ।
देवर्षिगणगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥१२॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि महामुने ।
वेदोक्तेनैव विधिना मन्त्रैर्वैदिकसम्भवैः ॥१३॥
स्थापनं चार्चनं तेषां त्रैवर्ण्यानां शुभप्रदम् ।
शूद्राणां नाममन्त्रैश्च विधिरेष सनातनः ॥
न वैदिकैर्यजेच्छूद्रः स्वधर्ममनुपालयन् ॥१४॥
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥१५॥❀
येन येनैव यल्लिङ्गं स्थापितं यत्र यत्र च ।
तत्तन्नाम्ना महेशोऽभूत् सर्वलिङ्गमयो विभुः ॥१६॥
स्थावरं जङ्गमं वापि पार्थिवं वा स्वयं विभुः ।
अर्च्चयेच्छङ्करं भक्त्या न वसेद् गर्भमन्दिरम् ॥१७॥
कृत्वा लिङ्गसहस्राणि गच्छन्न(न्त्य)मरकण्टकम् ।
कामधेनुरथापश्यल्लावण्यह्रदमुत्तमम् ॥१८॥
दृष्ट्वा तु तत्प्रभावं च सा धेनुर्मुदिताऽभवत् ।
रुद्राणां च स्थितिं मत्वा सस्मारैकादशैव सा ॥१९॥
रुद्रानेकस्थितान् कर्त्तुं लोकानां हितमिच्छ[न्]ती ।
अथ तत्र स्थिरा भूत्वा ध्यायन्ती नीलवर्णकम् ॥२०॥

---

❀ श्रीमद्भगवद्गीता ३।३५

प्रस्रवेणाभिवर्षन्ती भुवं कोष्णेन तत्र च।
पयसां भूमिसंयोगात् प्रवाहः समपद्यत ॥२१॥
गोमतीति नदी तत्र ख्याता लोके बभूव ह।
पयसा सिञ्चिता भूमिरमृतेनैव भूयसा ॥२२॥

आविश्चकार रुद्राणां षट्कपञ्चाधिकं तदा।
धयन्ती तर्णकं धेनुर्मूत्रोद्गारं चकार ह ॥२३॥
तत्र कुण्डत्रयं जातं पुष्करत्रितयं परम्।
चन्द्रभागा षोडशधा आविर्भूता समन्ततः ॥२४॥

भूषणार्थं च रुद्राणां तत्राभूदपरा सरित्।
चन्द्रभागेति विख्याता गोमत्या सह सङ्गता ॥२५॥
गोमत्याश्चन्द्रभागायाः कुण्डेभ्यो यः समुत्थितः।
प्रवाहस्त्रिविधो भूत्वा पश्चादैक्यं जगाम ह ॥२६॥

तत्सङ्गमे नरः स्नात्वा प्रयागस्य फलं लभेत्।
वृषोत्सर्गं तु यः कुर्यात् तत्र क्षीरेशसन्निधौ ॥२७॥
मोक्षतीर्थफलं तस्य गयापिण्डेन यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति पिशाचो न त्वयं भवेत् ॥२८॥

भूतप्रेतोऽपि वा ब्रह्मन् दुष्टत्वेन मृतोऽपि वा।
मोक्षं स लभते वेगाद् महापापोऽपि निश्चितम् ॥२९॥
प्रयागं विदधे ब्रह्मा प्रजानां हितकाम्यया।
तथा त्रिसङ्गमं चैतद् भुक्तिमुक्तिप्रदं कलौ ॥३०॥

तस्मिन् कुण्डे नरः स्नानं तर्पणं श्राद्धमेव च।
त्रिपुष्करफलं तस्य तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥३१॥
केदारे उदकं पीत्वा स्नात्वा चैव पृथूदके।
तत्फलं समवाप्नोति कुण्डेऽस्मिन्नात्र संशयः ॥३२॥

रुद्रैकादशकं तत्र कामधेनुश्चकार ह।
एकादश तथा रुद्राः प्रादुरासन्महीतलात् ॥३३॥
तान् दृष्ट्वा ब्रह्महा शुद्ध्येत् किमुतान्ये दुरात्म[ा]नः।
क्षीरेश्वर इति ख्यातो जगदादिर्महामुने ॥३४॥

तमभ्यर्च्य नरा यान्ति स्वर्गे देवगणा इव।
कामधेनुर्यथा कामं कामं चिन्तामणिर्यथा ॥३५॥
कल्पवृक्षो यथा कामं प्रयागश्च यथा फलम्।
क्षीरेश्वरस्तथा पुंसां सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥३६॥

सहितो दशभी रुद्रैर्नास्ति तत्र विचारणा।
क्षीरेश्वरः क्षीरप्रदः सर्वकामप्रदस्तथा ॥३७॥
भुक्तिमुक्तिप्रदः शम्भुस्तथा लक्ष्मीप्रदः प्रभुः।
कामदो मोक्षदश्चैव सुकलत्रप्रदस्तथा ॥३८॥
विद्याप्रदश्च विप्राणां राज्ञां च पृथिवीप्रदः।
पुत्रदश्चैव नारीणां तथा सौभाग्यदो विभुः ॥३९॥
अवैधव्यप्रदस्तासां सौख्यारोग्यप्रदस्तथा।
जयप्रदो नृपाणां च भक्तानां सुमतिप्रदः ॥४०॥
उपोष्य शिवरात्रिं यो रात्रौ जागरणं त्विह।
करोति च नरो नारी सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥४१॥

**शौनक उवाच—**

क्षीरेश इत्यथाख्यातः कस्माज्जातो वदस्व नः।
क्षीरेशस्य च माहात्म्यं वर्णयस्व विशेषतः ॥४२॥

**सूत उवाच—**

गोक्षीरादुद्गतं लिङ्गं तेन क्षीरेश्वरोऽभवत्।
दुग्धं चन्द्रं रसं चैव गोमूत्रं युगपत् स्थितम् ॥४३॥
ह्रदे तस्मिन्नतः ख्यातिर्लावण्यह्लद इत्यपि।
गणेश्वरास्तत्र वासं चक्रुर्विघ्नहरा नृणाम् ॥४४॥
मातरः सप्त चान्याश्च वसन्ति स्म तदन्तिके।
विवस्वान् कर्मसाक्षी च वेदत्रयमयो विभुः ॥४५॥
ब्रह्मविष्णुमयश्चैव तथा रुद्रमयः प्रभुः।
विद्यामयो ज्योतिर्मयो विश्वात्मा विश्वकृद् विभुः ॥४६॥
भूर्भुवः स्वर्मध्यतो यस्तमोहन्ता दिवाकरः।
अग्नीषोममयो देवः सर्वदेवमयः प्रभुः ॥४७॥
सर्वदेवमयो भास्वानोंकारार्णमयः पुरा।
यस्य देहे सर्वदेवा नद्यश्च भुवनानि च ॥४८॥
तीर्थाणि(नि) चैव सर्वाणि सागराः सरितस्तथा।
महीध्राः पन्नगाः सर्वे यत्किञ्चिद् विद्यते जगत् ॥४९॥
दृश्यते ब्रह्मणि यथा जगत् स्थावरजङ्गमम्।
सोऽभवद् भगवान् सूर्यो विश्वसाक्षी जगत्प्रभुः ॥५०॥
नारायणस्तथानन्तो दशभिः सह विश्वसृक्।
रूपैर्मत्स्यादिभिरिह वसति स्म श्रिया युतः ॥५१॥

क्षेत्रपालोऽथ भगवान् क्षेत्ररक्षाकरः प्रभुः।
श्मशानवासी यो नित्यं भूतप्रेतयुतः सदा ॥५२॥
करालवदनो घोरश्चलज्जिह्वः कृशोदरः।
कपालमालाभरणः स्थूलमूर्द्धा शुनां प्रियः ॥५३॥
भक्तानां रक्षणं कुर्वन् भूतप्रेतादिकान् छलन्।
अतः क्षेत्रपप्रीत्यर्थं सुरामांसादिभिर्युतः ॥५४॥
पूजयेद् भक्तिभावेन चतुर्वर्गप्रसिद्धये।
हनुमानाञ्जनेयोऽथ यो लङ्कामदहत् पुरीम् ॥५५॥
सहायो रामभद्रस्य हनुमानिति विश्रुतः।
ब्रह्मशापपरामृष्टः स्ववीर्यज्ञानयन्त्रियः (तः) ॥५६॥
कदाचिन्नाकरोद् वीर्यं स्मारितो वाऽकरोद् बलम्।
तुतोष सीतां सन्देशै रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥५७॥
सूर्याद् व्याकरणं लेभे जघ्नेऽसंख्यान् स राक्षसान्।
य उल्लङ्घ्याब्धिसहितामुर्वीमामेरुदर्शनात् ॥५८॥
ओषधीश्च समं तूर्णमाजहाराचलं विभुः।
शिशुत्वे सूर्यबिम्बं यः फलभ्रान्त्योत्पपात ह ॥५९॥
तमुत्सृज्याभ्यगात्तूर्णं राहुमत्तुं पराक्रमी।
देवेभ्यो यो वरं प्राप्य शक्त्या[ऽ] भेद्योऽमरोऽभवत् ॥६०॥
कौबेर्यां दिशि रामस्य कीर्तिस्तम्भ इव स्थितः।
योऽर्जुनस्य ध्वजे पञ्चशतभूतैः समन्ततः ॥६१॥
स्थितोऽपश्यत् कुरूणां च पाण्डवैः सुमहत्क्षयः (यम्)।
ब्रह्मचारी स भगवान् वायुपुत्रो महाबलः ॥६२॥
देवैरेकादशो रुद्रः पृथिव्यां योऽवतारितः।
रक्षोभूतपिशाचादिशाकिन्यादिमहद्भयम् ॥६३॥
छिनत्ति पूजितो नित्यं बाल्येनापि महद्विभुः।
निराकरोति भूतानां डाकिन्यादिमहद्भयम्।
उवास हनुमांस्तत्र सर्वैः समुदितो गुणैः ॥६४॥

नारद उवाच—

कथितं चास्य तीर्थस्य माहात्म्यमखिलं त्वया।
प्रत्ययं ब्रूहि मे वायो श्रद्दधामि तथा पुनः ॥६५॥

वायुरुवाच—

सूर्यवंशोद्भवो राजा ध्रुवसन्धिरिति श्रुतः।
वदान्यो यज्ञवान् धीमान् प्रजानां परिपालकः ॥६६॥

स कदाचिन्नृपो ब्रह्मन् मृगयारसिको भृशम् ।
वनं जगाम सुमहद्वारा(मा)दिव्यूहसंवृतः ॥६७॥
बद्धगोलाङ्गुलीत्राणो धनुःशरकरो नृपः ।
भूमेर्धुरं समारोप्य मूलमाप्तेषु निश्चलम् ॥६८॥
वनाद् वनं ययौ राजा मृगानुपदमेव च ।
स कदाचिद् दशपुरं जगामाथ महीपतिः ॥६९॥
विनेष्यन्निव दुष्टानि सत्त्वानि च दिवानिशम्❀ ।
मृगयाक्रीडतो राजा कान्तारे गहने द्विज ॥७०॥
दैत्यपुत्रौ दुरात्मानौ नाम्ना जम्भकरम्भकौ ।
हन्तुकामौ नृपं वैरात् स्वपितुः सिंहरूपिणौ ॥७१॥
अन्वेष्यन्तौ छलोपायं तद्वनं समगच्छताम् ।
तस्मिन्नवसरे राजा मृगयूथमपश्यत (द् ह) ॥७२॥
दृष्ट्वा हयेनाभ्यपतन्मनसा समरंहसा ।
वित्रस्ते मृगयूथे तु मृगमेकमगान्नृपः ॥७३॥
गच्छन्तमनु दैत्यौ तौ जग्मतुर्वातरंहसौ ।
सिंहरूपधरौ दुष्टौ हन्तुकामौ छलान्नृपम् ॥७४॥
तौ भूपं पुरतो दृष्ट्वा यथा (?) शून्यं नृपात्मजम् ।
तौ दृष्ट्वा नृपतिश्रेष्ठो बाणवर्षैरिवाकिरन् ॥७५॥
मुखमेकस्य वेगेन पूरयन् शरवृष्टिभिः ।
तूणीरमिव पूर्णास्यं हतं दृष्ट्वा परोऽसुरः ॥७६॥
वेगेन धनुरुद्यम्य जघान सहयं रथम् ।
शिरस्तस्य पुरा दैत्यश्चकर्तास्येन(स्त्रेण) वीर्यवान् ॥७७॥
गृहीत्वा तच्छिरो दूरमगमत्स वनाद् वनम् ।
प्रगृह्य कुण्डले दुष्ट उत्ससर्ज शिरो वने ॥७८॥
पलायितस्ततः शीघ्रं पितुरानृण्यमेयिवान् ।
प्रत्यूषे तच्छिरः श्येनो गृहीत्वा व्योमनि स्थितः ॥७९॥
आगतस्तत्र वेगेन क्षीरेशो यत्र शङ्करः ।
नद्यास्त्रिसङ्गमे वृक्षं समीपस्थं ददर्श ह ॥८०॥
श्येनस्तत्रोपविश्याशु भक्षयामास तच्छिरः ।
कपालं संस्थितं तस्य तरोः शाखावलम्बितम् ॥
गतः श्येनः स्वमार्गेण मांसतृप्तः स्वनीडकम् ॥८१॥

❀ द्रष्टव्य रघुवंश द्वितीय सर्ग ।

वायुरुवाच—

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् राज्ञस्तस्य पदानुगाः।
समीक्षन्तो नृपं सर्वे हयमार्गे प्रचक्रमुः ॥८२॥
दृष्ट्वा तु ते नृपं तत्र हतं सिंहेन दुःखिताः।
रुरुदुः परिवार्यैनं जगदुर्मुषिता इति ॥८३॥
न पश्यन्तः शिरस्तस्य बभ्रमुः सर्वतो दिशम्।
शरीरं तस्य नृपतेरदहंस्ते विधानतः ॥८४॥
पुरं दाशरथं नीत्वा काष्ठैश्चागरुसम्भवैः।
वेदोक्तेन विधानेन गतः स्वर्गं नृपात्मजः ॥८५॥
कामगेन विमानेन यज्ञकृद् धार्मिकः शुचिः।
विरूपवदनो जात (:) अदाहाच्छिरसस्तदा ॥८६॥
अतप्यत नृपो ब्रह्मन् स्वकर्म परिचिन्तयन्।
जगाम शङ्करं देवं यं दृष्ट्वा नैव शोच्यते ॥८७॥
नत्वाऽथ शङ्करं राजा स्तुत्वा चैनमुवाच ह।

राजोवाच—

भगवन् सूर्यवंशी यो राजा ते शरणं गतः ॥८८॥
दुष्कृतं न कृतं शम्भो येन मे विकृताननम्।
जातं न तं (तत्) स्मराम्यद्य आजन्ममरणादिति ॥८९॥
भवेदपि मयि स्थाणो कृपया शंस सत्वरम् ॥९०॥

ईश्वर उवाच—

निहतस्त्वं नृपश्रेष्ठ सिंहेन गहने वने।
उत्कृत्य ते शिरो दूरात् त्यक्तं दुष्टात्मना रुषा ॥९१॥
तच्छिरो वायुवेगेन श्येनेनाप्याहृतं नृप।
लावण्यह्लदनामाख्ये तीर्थे क्षीरेशसन्निधौ ॥९२॥
निक्षिप्तं सङ्गमे नद्या गोमत्यास्तीरजे द्रुमे।
तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठ सरितः सङ्गमे शुभे ॥९३॥
कपालं तद्द्रुमात्तोये सङ्गमेऽस्या निवेशय।
एवं ते वदनं भूयः सोमाब्जसदृशं नृप ॥९४॥
भविष्यति च तत्तीर्थप्रभावात् शङ्करस्य च।

वायुरुवाच—

एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठः प्रणम्य वृषभध्वजम् ॥९५॥
जगाम त्वरितस्तत्र क्षीरेशो यत्र शङ्करः।
त्रिसङ्गमे कपालं तत् क्षिप्त्वा स्नात्वा च शङ्करम् ॥९६॥

प्रणम्याथ ययौ राजा विमानेनेशसन्निधौ ।
स्तूयमानः सगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ॥९७॥
इति ते कथितं सर्वं तीर्थस्यास्य फलं महत् ।
य इदं कीर्तयेन्नित्यं रुद्रलोकं स गच्छति ॥९८॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये क्षीरेश्वरमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

## अथ षोडशोऽध्यायः

**वायुरुवाच—**

अतः परं मार्गवशाद् गच्छन्त्यमरकण्टकम् ।
कुरुमेति पुरा प्रोक्ता भूमौ गुप्ता सरस्वती ॥ १ ॥
तस्याः प्रभावं वक्ष्येऽहं यथाऽभूत्सा सरिद्वरा ।
पुरा वृत्रे हते देवैः (वैर) छद्मना सागरान्तिके ॥ २ ॥
हत्याभिभूतास्त्रिदशाः संसर्गाद् वासवस्य च ।
बृहस्पतिं देवगुरुमपृच्छन् सहिताः सुराः ॥ ३ ॥

**देवा ऊचुः—**

बृहस्पते यथास्माकं ब्रह्महत्या न बाधते ।
तथा कुरु महाभाग एनसोऽस्य क्षयो भवेत् ॥ ४ ॥

**बृहस्पतिरुवाच—**

गच्छध्वं सहिता देवा मेदपाटान्तिकं पुनः ।
कुरुमेति नदी पुण्या जांगले पर्वते स्थिता ॥ ५ ॥
तत्र गत्वा गिरेः शृङ्गं धर्मो वैवस्वतः प्रभुः ।
भिनत्तु दण्डेन महीं ततः प्रादुर्भविष्यति ॥ ६ ॥
आपृच्छ्य ते तथेत्युक्त्वा देवा धर्मपुरःसराः ।
तस्मिन् देशे च सहिताः सविद्याधरकिन्नराः ॥ ७ ॥
महर्षिगणगन्धर्वा जाङ्गले पर्वतोत्तमे ।
धर्मराजोऽथ दण्डेन बिभेद गिरिमस्तकम् ॥ ८ ॥
तस्माद् भेदान्नदी जाता पुण्यतोया सरस्वती ।
बहुप्रवाहा गङ्गेव शीतैरुष्णैः क्वचिज्जलैः ॥ ९ ॥
ऋणहा पापहा देवी ख्यातिं याता महीतले ।

**नारद उवाच—**

ऋणहेति कथं जाता पापहेति कथं पुनः ॥१०॥
एतद्विस्तरतो वायो ब्रूहि त्वं सर्वगो यतः ।

वायुरुवाच—

वृत्रस्यापि पुरा देवै राज्यं सम्प्रतिपादितम् ॥११॥
वाचा दत्तं मैत्र्यभावात् छद्मनापहृतं पुनः।
ततो हत्याभिभूतास्ते स्नानं चक्रुर्दिवौकसः ॥१२॥
तेन सा पापहा जाता ऋणहा ऋणमोचनात्।
तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्कोटयो ऋणमोचने ॥१३॥
स्नानं कृत्वा तु विधिवत् प्रयाता व्रतकर्षिता [:]।
वाचा ऋणेन निर्मुक्ता [:]पापमुक्तास्ततोऽन्यतः ॥१४॥
यमकुण्डं ततः प्रोक्तं यमहत्याव्यपोहनम्।
कर्त्तरीति च लोकेषु ख्याति चैव पृथक् पृथक् ॥१५॥
तेषु कुण्डेषु यः स्नानं करोति भुवि मानवः।
वाचा ऋणेन चान्येन मुच्यते तत्क्षणादपि ॥१६॥
वाण्या यत् क्रियते पापं वाण्या यद्धारितं पुनः।
तत्सर्वं विलयं याति तत्र स्नात्वा न संशयः ॥१७॥
ततो देवाः कृतस्नानाः शुद्धाश्चासन् महामुने।
विमानानि समारुह्य स्वं स्वं भवनमाययुः ॥१८॥
ततो मार्गवशाद् धेनुर्गता सा ऋणमोचनम्।
पीत्वा तत्रापि पानीयं ज्ञात्वा तीर्थं प्रहर्षिता ॥१९॥
सस्मार शङ्करं देवी स्मृतः प्रादुरभूच्छिवः।
ऋणमोचननामाऽसौ भुवि ख्यातो महेश्वरः॥
तत्र स्नातस्तमभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०॥
तस्य लिङ्गस्य सान्निध्ये वनं जातं महत्तरम्।
वटैराम्रैश्च पालाशैर्जम्बूदुम्बरपाटलैः ॥२१॥
अश्वत्थचारभल्लातैः करवीरैश्च दाडिमैः।
केतकैः शतपत्रैश्च वानीरैरर्जुनैस्तथा ॥२२॥
मालतीभिः सनारङ्गैश्चम्पकैश्च मनोहरैः।
मधु(धू)कैर्बीजपूरैश्च कदलीभिः सकर्णिकैः ॥२३॥
कदम्बैर्बीजपूरैश्च पनसैश्चापि सुन्दरैः।
करञ्जवञ्जुलैश्चैव मुचुकुन्दैः सुगन्धिभिः ॥२४॥
लताभिश्च तथा पूर्णमन्यवृक्षैः सहस्रशः।
सदाफलं सदापुष्पं मृगपक्षिगणाश्रितम् ॥२५॥
मत्तभ्रमरसंयुक्तं कोकिलारावपूरितम्।
वनं दृष्ट्वाऽथ सा धेनुर्मुदिताऽभून्महामुने ॥२६॥

महीमच्छिन्नसलिलां चक्रे तां च सरस्वतीम् ।
तस्याः प्रवाहे यः स्नानं करोति भुवि मानवः ॥
स विधूयेह पापानि शक्रलोके सदा वसेत् ॥२७॥
रविवारे च संक्रान्तौ दर्शे वाप्यन्यपर्वसु ।
प्रवाहे वैधृते तस्याः स्नानं दानं विशेषतः ॥२८॥
करोति यो नरः स्नानं तर्पणं देवतार्च्चनम् ।
तत्सर्वमक्षयं ब्रह्मन् भवतीह न संशयः ॥२९॥
दृष्ट्वा तां सरितं धेनुः स्मृत्वा चाथ महेश्वरम् ।
पुनर्ययौ मार्गवशान्माहेन्द्रय्यां द्विजसत्तम ॥३०॥
तत्र पीत्वा जलं धेनुर्गता मार्गेण सा पुनः ।
किरातानां महत्सैन्यं पर्वताग्राद् विनिःसृतम् ॥३१॥
धनुःपाशविषाणैश्च शरपूर्णैश्च पूरितम् ।
शक्तितोमरखड्गैश्च शस्त्रैरन्यैः समन्वितम् ॥३२॥
दृष्ट्वा धेनुर्हेलयैव दुष्टभावं च तस्य तत् ।
ज्ञात्वैव साऽथ सुरभी जनकाचलमाश्रिता ॥३३॥
जनकाचल इत्यत्र देवः ख्यातिं समागतः ।
दुष्टभावं विदित्वा सा तस्य सैन्यस्य कोपिता ॥३४॥
पुच्छमुत्थाप्य वेगेन ततो(थो)न्नम्य शिरोधराम् ।
हुङ्कारानथ कृत्वा तु ननाद सा मुहुर्मुहुः ॥३५॥
त्रासयामास तत्सैन्यं कैरातं शृङ्गपट्टिशैः ।
खुराभिघातैः पुच्छेन तुण्डेनैवोरसा पुनः ॥३६॥
विद्रुतं तत्क्षणात् सैन्यं दिशो भेजे भयातुरम् ।
ततो धेनू रुषा सैन्यमशपद् वनवासिनाम् ॥३७॥
यस्माद् विघ्नं कृतं मेऽद्य भवद्भिः क्रूरबुद्धिभिः ।
पिबन्त्याः स्वेच्छया तोयं माहेन्द्रयां च किरातकाः ॥३८॥
देशेऽस्मिन् नृपमुख्यानां तस्माद् वश्या भविष्यथ ।
जलाद्रोगभयं चाद्य दिनान्नित्यं भविष्यति ॥३९॥
नृपा येऽत्र भविष्यन्ति वदान्याश्चिरजीविनः ।
न तेषु तोयरोगोत्थं भयं स्यान्न भवद्भयम् ॥४०॥
इति शप्त्वा तु सा धेनुर्ययौ गोद्वारसंज्ञकम् ।
यत्रेश्वरो जगद्व्यापी गुहायां संस्थितो विभुः ॥४१॥

**नारद उवाच—**

गोद्वारमिति यत्प्रोक्तं कथं जातं समीरण ॥

कथं स भगवान् शम्भुराविर्भूतो जगत्प्रभुः ।
एतद्विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ॥४३॥

**वायुरुवाच—**

पितामहसुतः श्रीमान् गौतमो नाम विश्रुतः ।
स कदाचित्तपस्तप्तुं दण्डकारण्यमाविशत् ॥४४॥
तत्र ब्रह्मगिरिर्नाम पर्वतो भुवि विश्रुतः ।
तस्य तीरे स भगवान् गौतमो मुनिसत्तमः ॥४५॥
तपश्चकार सुमहदहल्यासहितो विभुः ।
सदा त्रिषवणस्नानी वेदाभ्यासरतः सदा ॥४६॥
पञ्चाग्निनिरतो ग्रीष्मे वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।
हेमन्ते च वसेदप्सु शीतवातसहो मुनिः ॥४७॥
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तत्प्रभावतः ।
न दावाग्निभयं तत्र झञ्झावातभयं न च❀ ॥४८॥
सदाफलं सदापुष्पं वनं चैत्ररथं यथा ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्बकुलैरपि ॥४९॥
प्रियालुनालिकेरैश्च खर्ज्जूरैश्च सदाफलैः ।
पूगीफलैरनेकैश्च जम्बूदुम्बरपाटलैः ॥५१॥
वटाश्वत्थकपित्थैश्च चूताशोकार्जुनैस्तथा ।
पलाशखदिरार्कैश्च निम्बचिञ्चिणिकैस्तथा ॥५२॥
विल्वामलकभल्लातैः करञ्चधवतिन्दुकैः ।
मधूकैः शल्लकीभिश्च चारुभिश्च हरीतकैः ॥५३॥
निर्गुण्डीकर्मदीभिश्च वैतसैश्च सहस्रशः ।
लवङ्गैलानागवल्ली-द्राक्षाजातीफलैस्तथा ॥५४॥
चम्पकैः करवीरैश्च दाडिमैश्च सदाफलैः ।
जम्बीरैर्बीजपूरैश्च नारिंगैश्च समन्ततः ॥५५॥
जातीभिः शतपत्रीभिर्मुचकुन्दैर्जपादिभिः ।
कदलीकेतकीभिश्च अन्यैश्च विविधैर्द्रुमैः ॥५६॥
सदाफलं सदापुष्पं सदापान्थनिषेवितम् ।
न तत्र दुर्भिक्षभयं गौतमस्य प्रभावतः ॥५७॥
कामवर्षी सदा मेघः कृष्टा कृष्टा सदा मही ।
सदा सस्यसमायुक्ता बहुतोया सदाफला ॥५८॥

---

❀ द्रष्टव्य रघुवंश द्वितीय सर्ग ।

सशाद्वला सदा ब्रह्मन् गावः क्षीरप्रदाः सदा ।
नैव रोगभयं तत्र नैव शोकभयं तथा ॥५९॥
मुनेः प्रभावाद् देशेऽस्मिन् सर्वसौख्यं प्रवर्तते ।
कस्मिंश्चिदथ काले तु जनो दुर्भिक्षपीडितः ॥६०॥
अखिलेष्वपि देशेषु वर्षद्वादशसंख्यया ।
अभाग्याच्चैव लोकानां न ववर्षुर्बलाहकाः ॥६१॥
अथ द्विजाः क्षत्रियाश्च विशः शूद्रास्तथा परेः ।
दुर्भिक्षपीडिता जग्मुर्यत्रासौ गौतमो मुनिः ॥६२॥
गत्वा तत्र तथा सर्वे हृष्टाः पुष्टा बभूविरे ।
फलान्नमधुपानानि चक्रुस्ते स्वेच्छया सदा ॥६३॥
पुष्टाङ्गाश्चाभवन् सर्वे सपुत्रपशुबान्धवाः ।
एतस्मिन्नन्तरे शक्रः कामबाणैः प्रपीडितः ॥६४॥
अहल्यां कामसन्तप्त ऋषिभार्यां तपस्विनीम् ।
सदा स संस्मरन् मूढस्तं देशमगमत् क्षणात् ॥६५॥
तत्र गत्वा मुने रूपं गौतमस्य चकार ह ।
स समित्कुशमाहर्त्तुं गते तस्मिन् द्विजर्षभे ॥६६॥
अहल्यां प्रार्थयामास कान्तां मनोहरां गृहे ।
विस्मयन्ती तु सा तत्र सत्रपा गृहमाविशत् ॥६७॥
अनु पश्चाद् ययौ शक्रः कामबाणप्रपीडितः ।
गौतमस्तत्क्षणादेव भावित्वादगमद् गृहम् ॥६८॥
शक्रोऽथ गौतमं दृष्ट्वा चकम्पे भयविह्वलः ।
मार्जाररूपमास्थाय गन्तुमेवोपचक्रमे ॥६९॥
गौतमोऽथ बिडालं तं ज्ञात्वा ध्यानेन वासवम् ।
अहल्यामब्रवीत् क्रुद्धः कोऽयं मे गृहमागतः ॥७०॥
मुनिं तमब्रवीत् साध्वी मार्जार इति शङ्किता ।
ततोऽशपद् गौतमस्तं देवेन्द्रं मुनिसत्तमः ॥७१॥
यस्मान्मदीयदारांस्त्वं धर्षसे पापमोहितः ।
अप्सरसां सहस्रेषु तवाधीनेषु सर्वतः ॥७२॥
तस्माद् भगसहस्रेण युक्तदेहो भविष्यसि ।
अहल्यामशपत् क्रुद्धः कम्पन्तीं कदलीमिव ॥७३॥
शिलारूपा भवस्वाद्य मम शापाच्च पुंश्चलि ।
तयानुनीतो भगवान् प्रणम्य च पुनः पुनः ॥७४॥

नापराधोऽस्ति मे कश्चिन्मनोवाक्कायसम्भवः ।
वञ्चिताऽहं त्वदीयेन वेषेणैव दुरात्मना ॥७५॥
क्षन्तव्यमिति मे ब्रह्मन् यथा शापो न बाधते ।
तथा कार्यं मुनिश्रेष्ठ कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७६॥
तदा शापं च विज्ञाय गौतमो वाक्यमब्रवीत् ।
नानृतं वचनं मेऽद्य शापो हि दुरतिक्रमः ॥७७॥
शापमोक्षं च ते वच्मि शृणुष्वैकमनाः शुभे ।
सूर्यवंशान्वये जातो रामो दाशरथिः स्मृतः ॥७८॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीताया (सीतया) सहितः प्रभुः ।
वनमेष्यति धर्मात्मा नियोगात्पितुरात्मनः ॥७९॥
तत्पादरजसा पूता शापान्मोक्ष्यसि दारुणात् ।
अहल्यामनुकम्प्याथ गौतमो मुनिसत्तमः ॥८०॥
तपश्चकार विपुलं तस्मिन् ब्रह्मगिरौ मुने ।
शक्रोऽथ गर्हितं रूपं निरीक्ष्य भगचेष्टितम् ॥८१॥
आत्मानं गर्हयामास सकामं दुर्मदेन च ।
धिक्कामं दुर्मदं शत्रुं देहस्थमपराजितम् ॥८२॥
अमार्गगामिनं पापं सदा सन्तापकारकम् ।
तावत्कुलस्य गणना शीलस्यापि श्रुतस्य च ॥८३॥
मातृपित्रोर्भयं तावत् स्वजनस्य नृपस्य च ।
लज्जा तावन्नृणां देहे तावच्छास्त्रार्थचिन्तनम् ॥८४॥
यावन्नारीषु कामोऽयं चित्तं न्यस्यति पापकृत् ।
धर्मस्यार्थस्य हन्तारं यशसश्च विनाशनम् ॥८५॥
पापराशिमिमं कामं को जित्वा सुखमेधते ।
नारीति रूपं दृष्ट्वाऽत्र मुह्यन्ति मादृशा नराः ॥८६॥
अस्थिस्तम्भं वसाबद्धं मांसं रक्तकलेवरम् ।
चर्मावनद्धमशुचि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥८७॥
भर्त्रादिरक्षितं नित्यं संयोगे मरणप्रदम् ।
नार्याः शरीरमीदृक् तद् दृष्ट्वा मुह्यन्ति मद्विधाः ॥८८॥
किं करोमि क्व गच्छामि हतवीर्य इवोरगः ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा लोकालोकमगात् सरः ॥८९॥
तत्र गत्वाणुरूपोऽभूत् कृमिः पद्मवने मुने ।
नालं भित्वा लयं लेभे भीतः कृत्यं विगर्हयन् ॥९०॥

ततो देवा गते शक्रे मुनिभिः सहितास्तदा ।
अराजकं ततो दृष्ट्वा ज्ञात्वा तस्यैव कारणम् ॥९१॥
तीर्थेऽवगाहने शुद्धिं ज्ञात्वा चैवं प्रचोदितः ।
पुष्कराद्यानि तीर्थानि स्नात्वा च विधिना ततः ॥९२॥
कृततीर्थोऽथ शक्रश्च गतपापस्तदा मुने ।
सहस्रनेत्रो मुनिभिश्चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥९३॥
गौतमोऽथ मुनिश्रेष्ठस्तपस्युग्रे व्यवस्थितः ।
कदाचित्स द्विजान् दृष्ट्वा मुदितान्निजसन्निधौ ॥९४॥
पानदेहान् सुपुष्टाङ्गान् तानुवाच हितं वचः ।
ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टास्तपसा च महात्मना ॥९५॥
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ।
तस्मात् तपः प्रकर्त्तव्यं तपोमूला द्विजातयः ॥९६॥
किं कायेन सुपुष्टेन अध्रुवेणेह देहिनः ।
तपसा प्राप्यते स्वर्गं तपसा मोक्ष एव च ।
तपसानन्तसौख्यानि नासाध्यं तपसः किमु ॥९७॥
गौतमस्य वचः श्रुत्वा मुनयोऽन्तः समत्सराः ।
उपायं चिन्तयन्तस्ते देहं त्यक्तुं सगौतमम् ॥९८॥
अथ मायामयीं धेनुं कपिलां वत्ससंयुताम् ।
निर्माय गौतमाभ्याशे शालिक्षेत्रसमीपगाम् ॥९९॥
सा सञ्चरन्ती कलमान् स्वयंरूढानितस्ततः ॥
दृष्ट्वा तां गौतमो रक्षन्नभ्यधावत्त्वरान्वितः ।१००॥
कुशाग्रेणैव धेनुं तां ताडयामास वेगवान् ।
सा ताडिता कुशाग्रेण सद्यः प्राणैर्व्ययुज्यत ॥१०१॥
गौतमोऽप्यथ तां दृष्ट्वा मृतां मोहं समाविशत् ।
लब्धसंज्ञः पुनः सोऽपि रुरोद भृशदुःखितः ॥१०२॥
मुनयो रुदितं श्रुत्वा गौतमस्य महात्मनः ।
आगत्य तत्समीपं च हाहेति तमथाब्रुवन् ॥१०३॥
नतमाश्वास्य शनकैराजग्मुः स्वाश्रमं प्रति ।
ये ( य ) आगता ययुस्तेऽथ सर्वे साग्निपरिग्रहाः ॥१०४॥
गतेषु तेषु मुनिषु गौतमो मुनिसत्तमः ।
ज्ञात्वा तदा स्वयं ध्यानात्तपस्तप्तुं प्रचक्रमे ॥१०५॥
गोचर्मणा परीताङ्गो निराहारो जितेन्द्रियः ।
शीतवातातपसहः सर्वभूतहिते रतः ॥१०६॥

शिवमाराधयामास पदेनैकेन संस्थितः ।
तस्यैवमाराधयतस्त्र्यम्बकं पूजितं तदा ॥१०७॥
वर्षाणामयुतं ब्रह्मन् जगाम दिवसैः क्वचित् ।
दीपितं तद्वनं सर्वं तपसा गौतमस्य च ॥१०८॥
पिङ्गीकृतस्तेजसाऽद्रिर्दूरान्मेरुरिवाबभौ ।
वह्निज्वालेव महती वडवानलसम्भवा ॥१०९॥
तपसा प्रबलं मत्वा गौतमस्य महात्मनः ।
शम्भुराविरभूत्तत्र भक्त्या तुष्टो महामुने ॥११०॥
देवदेवो जगन्नाथस्त्र्यम्बको वृषवाहनः ।
प्रादुर्भूतो मुनिं प्राह शङ्करो लोकशङ्करः ॥१११॥

ईश्वर उवाच—
मुने मा साहसं कार्षीस्तपोराशिर्यतो भवान् ।
किं तवानेन तपसाऽसाध्यं जगति विद्यते ॥११२॥
न दूरं तमहं मन्ये शाधि किं करवाण्यहम् ।

गौतम उवाच—
शालिक्षेत्रगता धेनुः कुशाग्रेणैव ताडिता ॥११३॥
मया पूर्वं मृता सद्यः सा मद्भाग्यविपर्यया ।
गोघ्नं मां त्राहि भगवन् पापादस्मान् महेश्वर ॥११४॥

ईश्वर उवाच—
कृत्रिमेयं कृता धेनुर्मुनिभिः किल छद्मना ।
कथं हत्या प्रभवति त्वयि पापहरे नृणाम् ॥११५॥
यस्त्वां पश्यति गोघ्नोऽपि ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
सुरापो हेमहारी च उपपापं समाश्रितः ॥११६॥
सद्यः स मुच्यते पापाद् विना दानतपोऽध्वरैः ।

गौतम उवाच—
यदि प्रसन्नो भगवान् कृपां कुरु ममोपरि ॥११७॥
स्वर्गे पृथिव्यां पाताले लिङ्गरूपधरो भव ।
मनुष्यलोकस्य यथा गम्यो भूत्वा बलप्रदः ॥११८॥
तथा कुरु महेश त्वं त्रिषु लोकेषु संस्थितः ।
गङ्गामानय वेगेन अस्मिन् ब्रह्मगिरौ विभो ॥११९॥

ईश्वर उवाच—
कुशावर्त्तं कुरु मुने त्वमिहोपरि पर्वतम् ।
अधस्ताच्च तथा ब्रह्मन् गङ्गाऽत्राविर्भविष्यति ॥१२०॥

अहं च त्रिषु लोकेषु लिङ्गरूपधरो मुने ।
स्थास्यामि सततं तुष्टयै त्र्यम्बकः पर्वतोत्तमे ॥१२१॥
तथाऽधस्ताद् भविष्यामि त्र्यम्बको भूमिसंस्थितः ।
उज्जयिन्याः प्रदेशे तु जनकाचलविश्रुतः ॥१२२॥
समीपं तस्य गत्वा त्वं गोद्वारं कुरु सत्वरम् ।
गौतमेश्वरनामाहं तत्र स्थास्यामि लिङ्गवान् ॥१२३॥
अतः स्वर्गे च पाताले भूम्यां चैव त्रिधा स्मृतः ।
मनुष्यदेवसर्पाणां भविष्यामि सुपूजितः ॥१२४॥
इति दत्वा वरं शम्भुर्गौतमस्य महात्मनः ।
अदृश्योऽभूज्जगन्नाथः स्तुत्या भक्त्याथ तोषितः ॥१२५॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये गौतममाहात्म्यं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

## अथ सप्तदशोऽध्यायः

वायुरुवाच—

त्र्यम्बकाच्च वरं प्राप्य गौतमो मुनिसत्तमः ।
त्र्यम्बकं पर्वते स्थाप्य कुशावर्तं तदग्रतः ॥ १ ॥
तथा चाद्रेः समीपस्थं भूमौ स्थाप्य महेश्वरम् ।
कुशावर्त्तं च विन्यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥
ततो जगाम त्वरितो जनकाचलसन्निधौ ।
तत्समीपे मुनिवरो गोद्वारं च चकार ह ॥ ३ ॥
कुशाग्रेण महातेजा भूमिं भित्त्वा वरं स्मरन् ।
ततो गोद्वारमभवद् विपुलं भूमिमण्डले ॥ ४ ॥
प्रविश्य तत्र भगवान् सस्मार त्रिपुरान्तकम् ।
स्मृतः प्रादुरभूच्छम्भुर्गौतमस्य तदा मुने ॥ ५ ॥
देवदेवो जगन्नाथस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ।
कृत्तिवासाः कपाली च त्रिशूली च पिनाकधृक् ॥ ६ ॥
उमया सहितः स्थाणुः शशाङ्ककृतशेखरः ।
पञ्चवक्त्रो दशभुजः कपर्दी भस्मभूषितः ॥ ७ ॥
नागकुण्डलकेयूरखट्वाङ्गी त्रिपुरान्तकः ।
कामारिरष्टमूर्तिश्च तथानन्तवपुः प्रभुः ॥ ८ ॥
त्रयीमयो ज्ञानमयः सर्वज्ञः शङ्करो हरः ।
स्रष्टा पाता च संहर्त्ता सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ९ ॥

शरीरे दृश्यते चास्य जगत् स्थावरजङ्गमम्।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा भुवनानि चतुर्दश ॥१०॥
सागराः सप्त दृश्यन्ते मेरुप्रभृतयोऽचलाः।
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना ॥११॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि दृश्यन्ते परमात्मनि।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याः सर्वदेवताः ॥११॥
यक्षकिन्नरगन्धर्वा मुनिसर्पासुरादयः।
वेदाः साङ्गाः पुराणानि दर्शनानि षडेव च ॥१३॥
स्मृतिव्याकरणादीनि ज्योतिःशास्त्रमथापि वा।
कलाकाष्ठामुहूर्त्तादिग्रहनक्षत्रदेवताः ॥१४॥
आश्रमास्तत्र दृश्यन्ते द्विजातीनां पृथक् पृथक्।
शरीरे विश्वरूपस्य शङ्करस्य महात्मनः ॥१५॥
यत्किञ्चिद् विद्यते चान्यत् शरीरे वास्य दृश्यते।
इत्थं स गौतमो दृष्ट्वा शङ्करस्य महात्मनः ॥१६॥
नमस्कृत्य स्तुतिं चक्रे जयपूर्वं महामुने।
स्तुत्या भक्त्या च सन्तुष्टः शङ्करो लोकशङ्करः ॥१७॥
तुष्टोऽस्मीत्यब्रवीच्छम्भुर्गौतमं मुनिसत्तमम्।

**ईश्वर उवाच—**

यमिच्छसि वरं ब्रह्मन् मत्तः प्रार्थय सुव्रत।
तपसा तोषितः पूर्वं स्तुत्या भक्त्या त्वयाऽनघ ॥१८॥

**गौतम उवाच—**

यदि प्रसन्नो देवेश स्थातव्यमिह नित्यशः।
गौतमेश इति ख्यातो भक्तानामभयप्रदः ॥१९॥
गङ्गाद्वारं प्रभवतु नित्यं गोद्वारतः प्रभो।
उपवीतं त्वदीये तु लिङ्गे भूयाद् युगे युगे ॥२०॥

**सूत उवच—**

तथेत्युक्त्वा तु भगवान् गौतमेशोऽभवद्विभुः।
भुक्तिमुक्तिप्रदः शम्भुः सर्वदः सर्वजन्तुषु ॥२१॥

**वायुरुवाच—**

एवं स भगवान् रुद्रो गौतमेन महात्मना।
स्वर्गे पृथिव्यां पाताले स्थिरः स्थाणुः कृतो मुने ॥२२॥
गोद्वारे संस्थितस्तेन हेतुना जगतां पतिः।
भुक्तिमुक्तिप्रदः श्रीमान् सर्वपापप्रणाशनः ॥२३॥

तत्र सा कामधेनुश्च जगामामितविक्रमा ।
सस्मार गौतमेशं तं गोद्वारे मुनिसत्तम ॥२४॥
स्नानं च पयसा चक्रे शङ्करस्य महात्मनः ।
कृतस्नानोऽथ भगवान् वरं तस्यै ददौ विभुः ॥२५॥
दार्षदं लिङ्गमास्थाय प्रसन्नात्मा जगद्गुरुः ।
भक्तानां वरदः शम्भुर्विशेषेण कलौ युगे ॥२६॥
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नानं कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
श्राद्धं कृत्वा द्विजातिभ्यः कपिलां यः प्रयच्छति ॥२७॥
सप्तजन्म भवेद् राजा वदान्यी जनवल्लभः ।
रुक्मं च रक्तिकामात्रं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥२८॥
तदक्षयं भवेत्तस्य वसेच्च शिवसन्निधौ ।
वस्त्रमन्नं फलं मूलमुपानत्कम्बलादिकम् ॥२९॥
दत्वा नरो भवेत्पूतो धनाढ्योऽतिथिवल्लभः ।
अस्थिक्षेपं तु यः कुर्यात् तस्मिन् तोये समाहितः ॥३०॥
न तावन्नरकं यान्ति तस्य ते मृतपूर्वजाः ।
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोये निमज्जति ॥३१॥
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोकं न मुञ्चति ।
तन्निर्जरभवे तोये अस्थिर्यस्य पतिष्यति ॥३२॥
दृषत्त्वं च भवेदस्थि गङ्गातोयाधिकं यतः ।
स याति परमं स्थानं सगरस्य सुता यथा ॥३३॥
अस्थिक्षेपालये तस्मिन् देवरूपधरो भवेत् ।
पृथिव्यामवतीर्णोऽसौ राजा भवति धार्मिकः ॥३४॥
आयुष्मान् पुत्रवान् श्रीमान् रूपवान् शीलवानपि ।
कुलीनो ज्ञानवान् दाता पूज्यो नीरुक् सदा सुखी ॥३५॥
पञ्चामृतेन यः स्नानं कारयेद् गौतमेश्वरम् ।
तीर्थतोयैस्तथा चान्यैर्गन्धपुष्पैर्मनोरमैः ॥३६॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्गीतैर्वाद्यैरनेकशः ।
प्रीतिं यः कुरुते शम्भौ नृपताविव यः पुमान् ॥३७॥
सदा स रमते स्वर्गे विमानेनार्कवर्चसा ।
अप्सरोभिर्वृतः श्रीमान् द्वितीय इव भास्करम् (रः) ॥३८॥
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् इह कर्म शुभाशुभम् ।
करोति यो नरो मोहात् स प्रेत्य फलमश्नुते ॥३९॥

न पिता बन्धुजननीभ्रातृपुत्रसुहृत्प्रियाः।
सुखदुःखस्य भोक्तारः स्वयं भुङ्क्तेऽवशः पुमान् ॥४०॥
धनभागी बन्धुवर्गः सुखभागी धने सति।
न परत्रेह भागोऽस्ति कस्यचित् पुण्यपापयोः ॥४१॥
मम पुत्रः सुहृद् भ्राता पिता माता प्रिया धनम्।
वक्तीति च नरो जीवन् मृत एकोऽपि गच्छति ॥४२॥
हाहेति बान्धवा जन्तुं परिवार्य मृतं पुरः।
रुदन्ति स्वार्थतस्तत्र तस्य हेतोर्न ते पुनः ॥४३॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति* ॥४४॥
यथा नटो बहुविधैर्वर्णयत्यात्मनो वपुः।
नानारूपाणि कुर्वाणस्तथात्मा कर्मजां तनुम् ॥४५॥
काणः कुब्जोऽथ पङ्गुश्च दन्तुरो बधिरस्तथा।
अन्धो मूकश्च विकलो अपस्मारी दरिद्रकः ॥४६॥
षण्डोऽथ वामनः कुष्ठी क्षयरोगान्वितो बहु।
सदा दुःखी सशोकश्च पराधीनो मलिम्लुचः ॥४७॥
प्रेतरूप इवाभाति पृथिव्यां बहुदुःखितः।
सदा चौरश्च पिशुनः परदारोपसेवकः ॥४८॥
परनिन्दारतः पापः परविघ्नेन तोषितः।
न्यासहर्ता कृतघ्नश्च कूटसाक्षी सदाऽनृती ॥४९॥
बकवृत्तिर्मनुष्येषु जायते पापकर्मतः।
पुण्यकर्मफलं ब्रह्मन् कथयामि तवानघ ॥५०॥
स्वर्गप्रान्ते यतो जन्म शेषपुण्येन जायते।
कुले महति वर्णानां सदाचारे समुन्नते ॥५१॥
दीर्घायुश्च श्रिया युक्तो रूपवांश्च गुणाधिकः।
सदा भोगी सुखी चैव जगत्पूज्यो बहुप्रजः ॥५२॥
धनधान्यसमायुक्तो व्याधिहीनश्च कीर्तिमान्।
उपजीव्यश्च बन्धूनां दीनानां च सदा भुवि ॥५३॥
विद्वाननीचः सुमतिः, सर्वभूतहिते रतः।
परवृद्ध्या सदा हृष्टः कृतज्ञो धार्मिकः शुचिः ॥५४॥
निजमार्गरतो नित्यं सदा शास्त्रार्थचिन्तकः।
इष्टापूर्त्तरतो नित्यं न्यायागतधनस्तथा ॥५५॥

---

* द्रष्टव्य मनु० अ०४ श्लो० २४१

पितृदेवातिथीनां च प्रीतिदः सत्यवाक् ( ग् ) यमी ।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चयम् ॥५६॥
भूतग्रहभयं नश्येत् चौराग्न्यादिभयं तथा ।
पूर्वोक्तगुणसम्पन्नो देवो भूत्वा चिरं दिवि ॥५७॥
इहलोके सुखं प्राप्य पुनर्देवः पुनर्नरः ।
मुक्तिमार्गं ततो याति शुभकर्मप्रभावतः ॥५८॥
नास्तिका दाम्भिकाः क्रूराः शोकव्याधिदरिद्रकाः ।
पतन्ति नरकेष्वेव जायन्ते कृमियोनिषु ॥५९॥
यथा सती स्वभर्तारं परलोकेऽधिगच्छति ।
तथा मनुष्यं प्रकृतिरनुयाति युगे युगे॥ ॥६०॥
इहलोके परे लोके भुज्यते कर्मणः फलम् ।
अर्थभागी भवेद् बन्धुः पापभागी न कश्चन ॥६१॥
एवं विचिन्त्य यो धीमान् पुण्यमार्गे प्रवर्तते ।
स विधूयेह पापानि स्वर्गमार्गं स (च) गच्छति ॥६२॥
इति ज्ञात्वा तु यो विष्णुं शङ्करं वाऽर्चयेन्नरः ।
इष्टापूर्तशतं तेन कृतं स्यात् प्रतिवासरम् ॥६३॥
गोद्वारे गौतमेशं च सर्वकामफलप्रदम् ।
समभ्यर्च्य नरो याति शङ्करस्यालयं प्रति ॥६४॥
दृष्ट्वा ब्रह्मगिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा देवं च त्र्यम्बकम् ।
महापापविनिर्मुक्तः सिंहस्थे च विशेषतः ॥६५॥
अर्बुदे गौतमं दृष्ट्वा सिंहस्थे च बृहस्पतौ ।
गौतम्यां द्वादशगुणममायां सोमवासरे ॥६६॥
गौतमं भौमवारेण दर्शे सर्वाष्टकेषु च ।
तत्फलं समवाप्नोति दृष्ट्वा च गौतमेश्वरम् ॥६७॥
भूमिं भित्त्वा कुशाग्रेण गौतमेन महेश्वरः ।
आविःकृतो महीपुत्रो वारेण तु महत्फलम् ॥६८॥

वायुरुवाच—

कामधेनुस्तमामन्त्र्य गौतमेशं जगत्प्रभुम् ।
उज्जयिन्यां ययौ ब्रह्मन् शिवलिङ्गानि पश्यन्ती ॥६९॥
य इदं कीर्तयेच्छम्भोश्चरित्रं गौतमस्य च ।
सर्वतीर्थफलं तस्य सर्वदानफलं भवेत् ॥७०॥

---

❀ द्रष्टव्य शिशुपालवध प्रथम सर्ग श्लो० ७२

व्याधितो मुच्यते रोगी निर्धनो धनमाप्नुयात् ।
अपुत्रो लभते पुत्रान् राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥७१॥
विद्यार्थी लभते विद्यां सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
देहान्ते परमं स्थानं स गच्छेन्नात्र संशयः ॥७२॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये गौतमेश्वरमाहात्म्यं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

## अथाष्टादशोऽध्यायः

**वायुरुवाच—**

ततो जगाम सा धेनुरवन्तीं प्रथितां भुवि ।
विस्तारयन्ती लिङ्गानि तस्मिन् देशे समन्ततः ॥ १ ॥
रन्तिदेवस्य नृपतेः कीर्त्तिभूता महीतले ।
तावच्चर्मण्वतीं प्राप्य ययौ तोयं यदृच्छया ॥ २ ॥
यत्र स्नात्वा नरा यान्ति वैकुण्ठसदनं ज्वलत् ।
न तीर्थैर्न तपोदानैर्न व्रतैराप्यते नृभिः ॥ ३ ॥
या गतिः प्राप्यते तस्यां स्नानमात्रेण सत्वरम् ।
तामतीत्य नदीं धेनुरुज्जयिन्यां जगाम ह ॥ ४ ॥
तं च दृष्ट्वा महाकालं सर्वदेवमयं विभुम् ।
पयसा स्नापयित्वा तं देवं च वृषभध्वजम् ॥ ५ ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं कामदं त्रिपुरान्तकम् ।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ ६ ॥
कपालखट्वाङ्गधरं जटामुकुटभूषितम् ।
भस्मास्थिव्यालशोभाढ्यं सेवितं सनकादिभिः ॥ ७ ॥
महाकालं च संस्मृत्य बभ्रामोच्चैरितस्ततः ।
लिङ्गानि सं (सम)भवंस्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
ब्रह्माद्याः सकला देवा वासुदेवस्य मूर्त्तयः ।
विनायकास्तथा रुद्रा ब्रह्मन् देव्यस्तथाऽवसन् ॥ ९ ॥
हरसिद्धिप्रभृतयः क्षेत्रपालाः समन्ततः ।
शक्तिभेदः कुमारेण कृतस्तत्र महात्मना ॥१०॥
तीर्थानां च तथा षष्टिरासीत्तत्राधिकाष्टभिः ।
सरितस्तत्र सम्भूता निवसन्ति समन्ततः ॥११॥
निरायासेन भवति मुक्तिर्यत्र नृणां भुवि ।
मरणं स्वेच्छया यत्र मोक्षमार्गो न दूरतः ॥१२॥

कीचकोऽपि मृतो यत्र मुक्ति याति विशङ्कितः ।
विना दानेन तपसा नियमेन व्रतेन च ॥१३॥
विना तीर्थेन यज्ञेन शुभेन स्वेन कर्मणा ।
हेलया प्राप्यते मुक्तिरुषित्वा यत्र निश्चितम् ॥१४॥
असंस्कृतः संस्कृतो वा विधिनाऽविधिना तथा ।
यस्यां देहात्ययं प्राप्य न शरीरं पुनर्लभेत् ॥१५॥
अज्ञानी ज्ञानवान् वापि मुक्तो भवति निश्चितम् ।
मरणादुज्जयिन्यां च विना नास्तिकवञ्चकात् ॥१६॥
भावेनान्येन दुहितुराश्लेषो जायते यथा ।
तथा कान्तस्य कान्तायास्तस्माद् भावो हि कारणम् ॥१७॥
धर्मे तपसि सत्ये च तीर्थे दाने तथा श्रुते ।
मरणे च यथा भावस्तथा सिद्धिर्न संशयम् ॥१८॥
वासं करोति यस्तत्र मतिपूर्वं सुनिश्चयः ।
यथा तथा मृतस्तस्यां मुक्ति याति विनिश्चितम् ॥१९॥
मूर्खो वा पण्डितो वापि पापीयानथ पुण्यकृत् ।
नरो नार्युत्तमो हीनो मृतस्तत्रामृतं लभेत् ॥२०॥
तस्यामवन्त्यां सुरभी महाकालं विलोक्य च ।
तमापृच्छ्यागमच्छीघ्रं क्षेत्रं चामरकण्टकम् ॥२१॥
तस्मिन् मार्गे तु लिङ्गानि विनिवेष्टय समन्ततः ।
प्राप्य रेवां च तत्रापः पीत्वौंकारं ददर्श ह ॥२२॥
पयसा स्नापयित्वा तमोङ्कारं सुरभी तदा ।
निवेश्य तत्र लिङ्गानि शङ्करस्य सहस्रशः ॥२३॥
नमस्कृत्य तथोंकारं शङ्करं जगतः प्रभुम् ।
संस्थाप्य देवतास्तत्र ब्रह्माद्या ऋषयस्तथा ॥२४॥
परिभ्राम्य महीं कृत्स्नां सशैलवनसागराम् ।
लिङ्गपूर्णां विधायेमां गोलोकं सा जगाम ह ॥२५॥
इति ते कथितं सर्वं लिङ्गानामुद्भवं भुवि ।

[ सूत उवाच ]—

कलौ प्राप्ते विशेषेण हृषन्मूर्तिषु देवताः ॥२६॥
आराध्याश्च नृणां ब्रह्मन् सर्वकामफलप्रदाः ।
कृतादिषु पुरा देवो वासुदेवो जगत्पतिः ॥२७॥

---

❀ द्रष्टव्य संगीतराज रसरत्नकोश ।

निराकारोऽपि भूभारमवतीर्यं च संहृतः।
अवतारं न कुरुते कलावाचारवर्जिते ॥२८॥
बुद्धरूपं समास्थाय योगमार्गे व्यवस्थितः।
कृतादिषु चतुर्ष्वेव य आचारो बुधैः स्मृतः ॥२९॥
शंस तं मे समीर त्वं वर्णानामनुपूर्वशः।

वायुरुवाच—

द्वापरान्तं पुरा दृष्ट्वा वासुदेवो जगत्पतिः ॥३०॥
प्राप्तं कलियुगं दृष्ट्वा पाण्डवानिदमब्रवीत्।

[ भगवानुवाच ]—

नातः परं महासत्त्वा [:] स्थातव्यं वै महीतल ॥३१॥
न शक्यते कलौ प्राप्ते राज्यं कर्तुं भवादृशैः।
उपायो नास्ति वै सौम्या [:] स्वर्गीत्ति प्रति नान्यतः ॥३२॥
भवन्तस्त्वरिता यान्तु बिलम्बो नात्र युज्यते।
गोत्रहत्याभिभूतानां तथा भ्रूणादिहत्यया ॥३३॥
हतास्ते न्यायतो दुष्टास्तथैवान्ये महत्तराः।
गच्छध्वमचलं यूयं हिमाद्रिं द्रौपदीयुताः ॥३४॥
तमद्रिमवगाह्याथ गमिष्यथ परां गतिम्।

वायुरुवाच—

तथेत्युक्त्वा गतेष्वेव पाण्डवेषु महात्मसु।
स्थिरो द्वारावतीं कृष्णः संस्मरन् जगतीप्रभुः ॥३५॥
स्मृता तेनाथ वसुधा गौर्भूत्वाविरभून्मुने।
प्रणम्य देवकीपुत्रं तमुवाचाथ मेदिनी ॥३६॥

पृथ्वी उवाच—

सर्वंसहा ह्यहं विष्णो त्वत्कृता दुष्टशासनात्।

भगवानुवाच—

कृतादिषु त्रिष्वपि ते न भारो विद्यते तथा ॥३७॥
भविष्यति कलौ तद्वन् महाभारोऽतिदुःसहः।
कृतादिषु यथा देवि वर्तन्ते दिवि देवताः ॥३८॥
तथा भुवि समाहूता यज्वि(ज्व)भिर्मुनिपुङ्गवाः।
नृपा द्विजातिमुख्याश्च यथा भुवि तथा दिवि ॥३९॥
वर्तन्ते स्वेच्छया देवि द्योभूम्योर्नान्तरं क्वचित्।
ब्राह्मणो वेदमार्गेण सर्वभूतहिते रतः ॥४०॥

सदाचारस्तपस्वी च क्षमावाननसूयकः ।
यतेन्द्रियस्तत्त्ववेत्ता देवतातिथिपूजकः ॥४१॥
पञ्चयज्ञरतो नित्यं न्यायागतधनस्तथा ।
सदा पितृमनुष्याणां तृप्तिदः सत्यवाक् शुचिः ॥४२॥

इष्टापूर्तरतो नित्यं गुरुभक्तः सदा शुभे ।
एतैरेव गुणैर्युक्तः क्षत्रियो वैश्य एव च ॥४३॥
निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां चैव पृथक् क्रियाः ।
ब्रह्मचर्ये गृहस्थे वै वानप्रस्थे यतिव्रते ॥४४॥

ब्रह्मक्षत्रविशः सर्वे वर्तन्ते चानुपूर्वशः ।
चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता ब्राह्मणानां युगे युगे ॥४५॥
क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः ।
ब्राह्मणीं क्षत्रियां वैश्यां परिणेत (णयेद्) द्विजो यतः ॥४६॥

क्षत्रियः क्षत्रियां वैश्यां वैश्यः शूद्रश्च शूद्रजाम् ।
वेदस्मृतिपुराणेषु वर्त्तन्ते ब्राह्मणास्तथा ॥४७॥
शूद्राणां द्विजशुश्रूषा वैश्यानां क्रयविक्रयः ।
प्रधानं क्षत्रियाणां च प्रजानां परिपालनम् ॥४८॥

कुसीदे कृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम् ।
स्ववर्णाश्रमधर्मेषु वर्तन्ते तेऽतिधार्मिकाः ॥४९॥
नृपो विप्रार्चनपरः स्वर्गमार्गाविरोधकः ।
वर्णानां ब्राह्मणाः श्रेस्ठास्तेषां पूज्यो यतिः स्मृतः ॥५०॥

यतेः पूज्यो न कोऽप्यस्ति तस्मात् पूज्यो यतिः स्मृतः ।
येषां पूजनमात्रेण पूजिताः सर्वदेवताः ॥५१॥
वासुदेवस्य द्वे मूर्ती चरं चाचरमेव च ।
चरं सन्यासिनां रूपमचरं प्रतिमादिकम् ॥५२॥

युगत्रयेष्वतो भूमेः कामवर्षी च तोयदः ।
बहुसस्या तथा त्वं वै बहुदुग्धाश्च धेनवः ॥५३॥
सदाफला भूमिरुहः शुभमन्यत् प्रवर्त्तते ।
शरदामयुतं नृणामायुः सर्वत्र दृश्यते ॥५४॥

गोमहिष्यादिभूतानि बह्वायूंषि महान्ति च ।
नाकाले मरणं तेषु न जरारोगजं भयम् ॥५५॥
व्यक्तिक्रमान्न मरणं जायते च जगत्त्रये ।
स्वर्गे मोक्षे च वर्तन्ते नरकेषु न ते क्वचित् ॥५६॥

महापापीपपापेषु जायते न मतिर्नृणाम् ।
कथञ्चित् पापसम्पर्कात् प्रायश्चित्तं चरन्त्यतः ॥५७॥
पुण्या लघीयसा ये तु वोढव्यास्ते त्वयाऽनघे ।
दुराचाराश्च ये तत्र अवतीर्य मया हताः ॥५८॥
अवतारो न मे ग्राह्यः कलौ प्राप्ते च मेदिनि ।
दुराचाराश्च मनुजा भविष्यन्ति सदा भुवि ॥५९॥
अतो दृषन्मयै रूपैरवतीर्णा दिवौकसः ।
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ॥६०॥
अलुब्धैर्दानशीलैश्च स्थिरा त्वं भव मेदिनि ।
यः कश्चिद् विंशतौ भागे सन्मार्गेषु प्रवर्तते ॥६१॥
स वोढव्यश्चिरं देवि किमन्यैः पापकर्मभिः ।
कलौ प्राप्ते च मनुजाः सदा लोभेन पूरिताः ॥६२॥
निधीच्छवो भविष्यन्ति जराभयविमुक्तये ।
निधीः पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ ॥६३॥
मुकुन्दनन्दनौ (कुन्दनौ) नीलशङ्खखर्वा अनुक्रमात् ।
सत्त्वाश्रितो महापद्म स्थिरश्च कुलमण्डनः ॥६४॥
रतिस्तस्य भवे[त्] तीर्थे यतिस्त्रेताग्निकर्मसु ।
तामसो मकरश्चैव नान्यं गच्छति तत्सुखम् ॥६५॥
शस्त्रप्रियोद्यमकरो धनार्थं मृत्युमीहकः ।
तमोगुणः कच्छपोऽपि स चैकपुरुषं वसेत् ॥६६॥
कर्म संहरते चैव विश्वासो नैव कुत्रचित् ।
रजोगुणो मुकुन्दोऽपि भोगवृत्त्यादितुष्टिकृत् ।६७॥
दाता कुटिलमल्लादिविटेष्वेव न साधुषु ।
रजःसत्त्वमयो नन्दः स्थिरश्चासप्तपूरुषः ॥६८॥
मानकृच्च कुलाधारो बहुभार्योऽतिमानकृत् ।
तमः सत्त्वमयो नीलस्तिष्ठति पुरुषत्रयम् ॥६९॥
भोगारामतडागादिचैत्यकूपेषु यो रतः ।
रजस्तमोमयः शङ्खः कृपणश्चैकभुक् ( ग् ) रहः ॥७०॥
वञ्चकः स्वसुतानन्यानन्मृतो मुञ्चति कष्टतः ।
निधयोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां श्रीरधिदेवता ॥७१॥
विशेषेण कलौ शङ्खनिधिराश्र(श्री)यते नरैः ।
पद्मिनी चित्रिणी जात्या हस्तिनी शङ्खिनीति च ॥७२॥

चतुर्विधाः स्त्रियः प्रोक्ता गुणतो रूपतस्तथा ।
विशेषेण कलौ प्राप्ते शङ्खिनी जायते भुवि ॥७३॥
पद्मिनी पद्मवद्गन्धा चित्ररूपाणि(हि)चित्रिणी ।
हस्तिनी हस्तिवद्देहा क्षारगन्धा च शङ्खिनी ॥७४॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो युगचतुष्टयम् ।
क्रमादतः कलौ प्राप्ते क्वचित् शूद्रा इव द्विजाः ॥७५॥
कलौ प्राप्ते मया देवि कृष्णद्वैपायनेन च ।
ब्राह्मणाद्याश्च चत्वारः पृथक् केचिन्निवेशिताः ॥७६॥

ज्ञातिबन्धः कृतोऽमीषां वर्णसङ्करजाद् भयात् ।
विवाह्या ब्राह्मणी विप्रैः क्षत्रिया क्षत्रियेण च ॥७७॥
वैश्या वैश्येन वोढव्या शूद्री शूद्रेण चैव हि ।
यत्र तत्र न भोक्तव्यं अनिन्द्यामन्त्रणादृते ॥७८॥

जातीयेषु गृहेष्वेव भुञ्जन् दोषैर्न लिप्यते ।
न मांसभुक्(ग्)भवेद् विप्रो नाज्ञातं भक्षयेत् क्वचित् ॥७९॥
दीक्षितो ब्रह्मसूत्री च यष्टिमान् सकमण्डलुः ।
सदाचारः कलियुगे तेनेयं जगती धृता ॥८०॥

कलौ नृपतयः सर्वे व्यवहारमया यतः ।
जिताश्चौरैः सदा भूपाः प्रजापीडनतत्पराः ॥८१॥
लुब्धाश्च क्रूरमतयो मदोन्मत्ता विवेकिनः ।
कुपात्रत्यागिनः सर्वे सन्मार्गनिरताः क्वचित् ॥८२॥

इष्टापूर्तादिकं कर्म न जानन्ति विकर्मिणः ।
कामादिविषयासक्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ॥८३॥
तथा क्षत्रविशश्चैव भविष्यन्ति च शूद्रवत् ।
ब्रह्मचारिप्रभृतिषु स्वाश्रमेषु चतुर्ष्वपि ॥८४॥

मोहाद् गृहस्थनाम्नैव भविष्यन्ति न धर्मतः ।
यथा वर्णाश्च चत्वारः कृताद्याश्च तथा युगाः ॥८५॥
अतः शूद्रः कलियुगः शूद्राचारा द्विजातयः ।
बहूनां जन्मनामन्ते स्वधर्मविषयेषु च ॥८६॥
रतिं प्राप्येह कष्टेन मोक्षधर्मे प्रवर्तयेत् ।
यौवने पलितः सर्वं अकालमरणं कलौ ॥८७॥
न शास्त्रगामिनो वर्णा न स्वमार्गेषु गामिनः ।
उत्पथे गमनं तेषां प्रभिन्नकरिणामिव ॥८८॥

न माता न गुरुस्तेषां न पिताऽन्यो न देवता ।
वेदस्मृतिपुराणानि न धर्मो [ऽ] धर्मकीर्त्तन(म्) ॥८९॥
पाषण्डिनो विकर्मस्थाः परदारोपसेवकाः ।
महापापोपपापैश्च युक्ताश्चौराश्च नाम ते ॥९०॥
धृतभार्यान् कलियुगे दृष्ट्वा प्रीतो भविष्यति ।
कलौ स्वल्पजला मेघा अल्पपुष्पफलद्रुमाः ॥९१॥
स्वल्पक्षीरास्तथा गावः स्वल्पसस्या च मेदिनी ।
नार्यो द्वादशमे वर्षे बहुपुत्राल्पपुत्रकाः ॥९२॥
मकरादिभयं तत्र दुर्भिक्षश्वादिचौरजम् ।
तापत्रयभयं नित्यमकालमरणाद् भयम् ॥९३॥
श्रुतिस्मृतिभवा मार्गाः सरिदोघाः शुचाविव ।
दृष्टादृष्टा भविष्यन्ति मयि बौद्धत्वमागते ॥९४॥
शूद्रः कलियुगो नाम विलोक्यावनिमण्डलम् ।
दुराचारांश्च मनुजान् हर्षं प्राप्य मुहुर्मुहुः ॥५९॥
आधिक्यं स्त्रीषु शूद्रेषु चकार वसुधे सदा ।
तत्र त्वया च रक्षीया(रक्षणीया)सदाचारा द्विजातयः ॥९६॥
इष्टापूर्तरता वेदशास्त्रज्ञाः सत्यवादिनः ।
त्यागिनोऽलुब्धकाश्चैव गावो नार्यः पतिव्रताः ॥९७॥
आर्त्तार्त्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा ।
आयान्तीं पतिसंयुक्तां विमानस्थां सतीं किल ।
सूर्यस्त्यजति तन्मार्गं भयान्मण्डलभेदतः ॥९८॥
धृतस्त्री पतिमन्वेति मृतं चास्मिन् कलौ युगे ।
सापि तारयते कान्तं युगेष्वन्येषु किम्पुनः ॥९९॥
धृतायाश्च सुतः श्राद्धे पिण्डक्षेत्राधिपाय च ।
दद्यात् पूर्वं ततस्तस्य पित्रादेरनुपूर्वशः ॥१००॥
अन्येषामपि पापानां कलौ प्राप्ते नृणां भुवि ।
विशुद्धिर्दानतीर्थेन भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥१०१॥
संग्रामे गोगृहे वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
कलौ पापमतिर्जन्तुः प्रायश्चित्तं कथं चरेत् ॥१०२॥
तत्पुरश्चरणं दानं तीर्थं चान्तेऽग्निसेवनम् ।
न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥१०३॥
श्राद्धकृत्सत्प्रवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ।
अस्मिन् कलियुगे प्राप्ते बहवः पापकारिणः ॥१०४॥

यद्येषु च बहुष्वेको धार्मिको विद्यते क्वचित् ।
तस्यैकस्य त्वया रक्षा कर्त्तव्या चैव मेदिनि ॥१०५॥
रत्नगर्भेति ते नाम सत्यं भवतु निश्चितम् ।
स वोढव्यश्चिरं देवि मद्भक्तो धार्मिकः शुचिः ॥१०६॥
कलिना क्रूरमतिना क्लेशितं धार्मिकं परम् ।
रक्ष रक्ष सदा तस्मात् पापाद्गङ्गेव मानवम् ॥१०७॥
ईदृग्विधेन भूमे त्वं धार्यसे पुण्यकर्मणा ।
रक्षैनं च प्रयत्नेन किमन्यै रक्षितैस्त्वया ॥१०८॥
कलेरन्यत्र न भयं विद्यते धार्मिके नरे ।
तस्मात् त्राहि नरं शीघ्रं चण्डीन्द्रं महिषादिव ॥१०९॥
इति श्रुत्वा मही देवी श्रीकृष्णस्य च तद्वचः ।
तथेत्युक्त्वा प्रणम्यैनं जगामादर्शनं मुने ॥११०॥

**वायुरुवाच—**

इत्थं लघीयसीं कर्त्तुमवतेरुर्महीतले ।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वाः पार्वत्या वचनान्मुने ॥१११॥
ग्रामे ग्रामे तथा तीर्थे जम्बुद्वीपे कलौ युगे ।
दृषन्मूर्ति विधायाशु लोकानां हितकाम्यया ॥११२॥
य इदं कीर्तयेद् विप्रो देवानामग्रतो मुने ।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥११३॥
पारायणं पुराणस्य कुर्यादभ्यर्थ्य देवताः ।
विद्याश्चतुर्दश फलं राजसूयफलं लभेत् ॥११४॥
तापत्रयविनिर्मुक्तः प्रहृष्टः पुत्रपौत्रकैः ।
विद्याचारधनायुर्भिर्भवेदच्छिन्नसन्ततिः ॥११५॥
ग्रहपीडा न तस्यास्ति नाग्निचौरनृपाद् भयम् ।
रक्षोभूतपिशाचादिरोगशोकं न चाप्नुयात् ॥११६॥
महापापोपपापं च वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ।
तत्सर्वं विलयं याति तमःसूर्योदये यथा ॥११७॥
अभिमानी कृतघ्नोऽपि निन्दको दाम्भिकोऽशुचिः ।
कृपणोऽसूयकः कामी निद्रातन्द्रासमन्वितः ॥११८॥
य इदं कीर्तयेज्जह्यादेनसोऽहिरिव त्वचम् ।
पुराणकीर्तिता देवाः संसाराब्धि विलङ्घ्य च ॥११९॥
येन केनापि कामेन पुराणं कीर्तयेद् द्विजः ।
अनायासात्पुमानस्मिँल्लभेद् वाञ्छाधिकं फलम् ॥१२०॥

इदं सद्वाचकाद् ब्रह्मन् श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥१२१॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णं विमानं लभते महत्।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति न संशयः ॥१२२॥
दिव्यमाल्याम्वरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः।
दिव्याङ्गनादिभूषाढ्यो वाचस्पतिरिवापरः॥१२३॥
दिव्यं विमानमारुह्य चरेन्नित्यं जगत्त्रये।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥१२४॥
सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्राकारमुखैः शुभैः।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥१२५॥
अङ्के परमनारीणां सुखसुप्तो विबुध्यते।
भुक्त्वा भोगान् यथा बाष्पो मुक्तिमापैकलिङ्गकात् ॥१२६॥
तस्माच्चतुराश्रमिणामप्यस्मिन्नधिकारिता ।
किं बहूक्तेन सर्वेष्टदायिनि त्वं (न्यत्र) न संशयः ॥१२७॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये वायुनारदसंवादे
अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

## अथ एकोनविंशोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

बाष्पस्य चान्वयं ब्रूहि द्विजाग्र्यस्याथ तस्य च।
केन पुण्यप्रभावेण शङ्करश्चाकरोत् कृपाम् ॥ १ ॥
सेवा च कीदृशी तस्य कथयस्व यथायथम्।
किं जप्तं केन विधिना पूजितं च द्विजन्मना ॥ २ ॥
सन्देहोऽस्त्यत्र मे वायो यथावदनुवर्णय।
एकलिङ्गस्य भक्तस्य वृत्तान्तं वेत्सि नापरः ॥ ३ ॥
तत्सर्वं कथ्यतां वायो तस्य चोत्पत्तिपूर्वकम्।
सन्ततिस्तस्य भूपस्य कीदृगासीन्महात्मनः ॥ ४ ॥

**वायुरुवाच—**

वक्ष्यमाणं यथा ब्रह्मन् सावधानतया शृणु।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि सर्वज्ञोऽसि विशेषतः ॥ ५ ॥
जानन्नप्यथ मां प्रष्टुमुद्युक्तोऽसि यथाऽज्ञवत्।
लोकोपकारकं प्रश्नं न केनापि कृतं पुरा।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तच्छृणुष्व वदाम्यहम् ॥ ६ ॥

कलावाराधनफलमेकलिङ्गाच्च लब्धवान् ।
तस्य चारित्रमाकर्ण्य प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥ ७ ॥
मेदपाटस्य मध्ये यच्चित्रकूटस्य सन्निधौ ।
अथानन्दपुरं नाम पत्तनं महददद्भुतम् ॥ ८ ॥
तत्रासीच्छिवशर्माख्यो ब्राह्मणो वेदपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो याज्ञिको धार्मिकः शुचिः ॥ ९ ॥
पुत्रपौत्रादिकैर्युक्तः प्रजावान् पशुमान् गृही ।
अतिथीनागतान्नित्यं भोजनावसरे ततः ॥१०॥
अन्नाच्छा(च्छा)दनद्रव्येण वाण्या चापि तु तोषयन् ।
एकलिङ्गस्य च धिया पश्यन् सर्वानपूजयत् ॥११॥
एवं प्रवर्तमाने तु चैत्रीयात्रार्थमुद्यताः ।
ऋषयस्ते समायातास्तद्गृहं प्रति नारद ॥१२॥
अतीथीनागतान् दृष्ट्वा पूजयामास भक्तितः ।
तेभ्यश्चाशिषमादाय पृष्टवानिति तान् प्रति ॥१३॥
कुतः समागताः यूयं किंचिकीर्षुं (च कर्तुं) मिहेच्छथ ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा अथर्वा त्वब्रवीदिदम् ॥१४॥
चैत्री यात्रा समायाता एकलिङ्गस्य वार्षिकी ।
तस्माद् वयं गमिष्याम एकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥१५॥
इन्द्राद्या देवताः सर्वा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
ऋषयो मुनिसिद्धाश्च तत्रायास्यन्ति वै तदा ॥१६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शिवशर्माऽप्युवाच तम् ।
मयाऽपि वार्षिकी यात्रा क्रियते प्रतिवत्सरम् ॥१७॥
इत्युत्का(क्त्वा) सर्वसम्भारान् [ रथेसं]स्थाप्य प्रस्थितः ।
तेषां सहैव हर्षेण एकलिङ्गदिदृक्षया ॥१८॥
सपुत्रपौत्रभार्यादिबन्धुभृत्यसमन्वितः ।
मार्गे चान्नार्थिनामन्नं ददन्नित्यं समागतः ॥१९॥
कुटिलाद्यष्टतीर्थेषु स्नात्वाऽभ्यर्च्यैकलिङ्गकम् ।
स्तुत्वा नत्वा तथागत्य नैऋत्यां दिशि संस्थितिम् ॥२०॥
अकरोत्तेन विधिना दिक्पालानर्च्च्यवास्तुपम् ।
अथा(आथ)र्वणस्य पार्श्वे तु वेदान्तश्रवणादिना ॥२१॥
कालं निर्गम्य पश्चात्तु वेदान्ते मतिमादधत् ।
स्ववित्तं भागशः कृत्वा पुत्रेभ्यो व्यभजच्च तत् ।
स्वकीयं भागमादाय आथर्वण(णा)र्थमादरात् ॥२२॥

मठं सम्यगथारच्य दीपस्थानं विलोक्य च ।
तत्र संस्थाप्य स्वगुरुमथर्वाणं सुतापसम् ॥२३॥
तपश्चचार सुमहच्छिवशर्माऽथ स द्विजः ।
अन्ते संन्यस्य विधिना परं धाम अवाप सः ॥२४॥
अपरे भ्रातरः सर्वे काले कालवशं गताः ।
ततः स बाष्पः सुमहत् पितुरन्त्येष्टिमादरात् ॥२५॥
कृत्वात्रैव स्थितः पश्चाज्जजाप मनुमुत्तमम् ।
पराप्रासादमन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रोत्तमं महत् ॥२६॥

**नारद उवाच—**

कुतो लब्धोऽथ मन्त्रोऽयं ममाचक्ष्व समीरण ।
कस्मिन् काले च माहात्म्यं विधानमपि सुव्रत ॥२७॥
मन्त्रस्य देवता काऽत्र स्वरूपमपि ब्रूह्यथ ।

**सूत उवाच—**

इति नारदवाक्यं तच्छ्रुत्वा वायुरथाब्रवीत् ॥२८॥
हारीतादिति संक्षिप्य पुनः सम्यगथाब्रवीत् ।
क्षणं विचिन्त्य स्वात्मानं हंसरूपं सनातनम् ॥२९॥
हकारेण विशन्तं तं सकारेण विनिर्गतम् ।
शक्ति च परमानन्दरूपिणीं परदेवताम् ॥३०॥
वर्णद्वयमयं मन्त्रमोंकारेणेन्दुसंयुतम् ।
सर्वदेहेषु जीवोऽयं वर्तते मुनिसत्तम ॥३१॥
माहात्म्यमपि मन्त्रस्य वर्णितुं केन शक्यते ।
वेदान्तविज्ञानफलं मन्त्रोऽयं मुनिपूजितः ॥३२॥
मोक्षरूपस्य मन्त्रस्य वर्णितुं केन शक्यते ।
शिवशक्त्यात्मको मन्त्रो मन्त्रिणां सिद्धिदः क्षणात् ॥३३॥
अनेन मन्त्रराजेन साङ्गन्यासयुतेन च ।
वेदागमोक्तविधिना पूजितः सुफलप्रदः ॥३४॥
इति श्रुत्वा वचो वायो नारदः पर्यपृच्छत ।

**नारद उवाच—**

हारीतः केन विधिना दत्तवान् स द्विजन्मने ॥३५॥
हारीतेन कुतो लब्धो मन्त्रराजः पराभिधः ।
एतत्सर्वं च संक्षिप्य कथयस्व समीरण ॥३६॥

**वायुरुवाच—**

कदाचिदागतावस्मिन् क्षेत्रे नागह्लदाभिधे ।
चैत्रे सूर्योपरागे तु स्थितावेकत्र तौ द्विजौ ॥३७॥
हारीतमभिवाद्यैव साष्टाङ्गं विनयेन च ।
बाष्पः पप्रच्छ भोः स्वामिन् गुरो दीक्षां प्रदेहि मे ॥३८॥
केन मार्गेण जीवोऽयं तत्क्षणाद् ब्रह्मतां व्रजेत् ।
संशयं छिन्धि मे ब्रह्मन् सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥३९॥

**हारीत उवाच—**

भजस्व त्वरया बाष्प एकलिङ्गं महाप्रभुम् ।
तत्क्षणान्मोक्ष्यसे दुःखादिहामुत्र न संशयः ॥४०॥
नास्य दीक्षाविधानादितिथिवारादिचिन्तनम् ।
नात्र सिद्धादि द्रष्टव्ये (व्यं) गुर्वनुग्रहकाङ्क्षिकैः ॥४१॥
मन्त्रे तद्देवतायां च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ ।
त्रिषु भक्तिः सदा कार्या सा हि प्रथमसाधनम् ॥४२॥
यस्य मन्त्रे च देवे च गुरौ च त्रिषु निश्चला ।
न व्यवच्छिद्यते भक्तिस्तस्य सिद्धिरदूरतः ॥४३॥
लक्षमात्रेण जप्तेन मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
षोढा न्यासादयो न्यासा नोच्यन्ते ग्रन्थविस्तरात् ॥४४॥
षडङ्गावरणाद्यैश्च इन्द्राद्यावरणैः सह ।
यजन्नाप्नोति दैवत्वं देवतावरदानतः ॥४५॥
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मनः❋ ॥४६॥
ततो मे मित्रभूतोऽसि पृच्छसे भक्तितः खलु ।
तवानुग्रहमुद्दिश्य वक्ष्याम्यद्येशसन्निधौ ॥४७॥
मन्त्रस्यास्य ऋषिर्ब्रह्मा जगतीछन्द उच्यते ।
हकारो बीज इत्युक्तः सकारः शक्तिरुच्यते ॥४८॥
बिन्दुना कीलितं सर्वं तेन कीलकमुच्यते ।
अतस्त्वमपि विप्रेन्द्र ऋष्यादीन् स्वकलेवरे ॥४९॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्काराख्यमुद्रया ।
मूर्ध्नि हृद्गुह्यपादेषु सर्वाङ्गेषु विभावय ॥५०॥
षड्दीर्घस्वरभेदेन षडङ्गानि समाचर ।

---

❋ श्वेताश्वतरोपनिषत् ६, २३ ।

तारेण पुटितं कृत्वा सर्वाङ्गे व्यापकं त्रिधा ।
विरच्य च ततो ध्यायेदर्द्धनारीश्वरं शिवम् ॥५१॥
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
दिव्याम्बरस्रगालेपं दिव्यभोगसमन्वितम् ॥५२॥
पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः ।
बिभ्राणं सुप्रसन्नं च भक्तानुग्रहकातरम् ॥५३॥
त्रिकोणान्तःसमासीनं चन्द्रसूर्यायुतप्रभम् ।
एवं स्वहृदि सञ्चिन्त्य मूर्ध्नि वा गुरुमात्मनः ॥५४॥
भावयित्वा चिरं कालं मुद्रादशकमाचर ।
लिङ्गं योनिं च सुरभिं त्रिशूलं ज्ञानमेव च ॥५५॥
पुस्तकं पानपात्रं च वनमालां न (च) भात्मकम् (?) ।
नतिमुद्रां च संरच्य मनसा सम्प्रपूजय ॥५६॥
आह्वानाद्युपचारैश्च भोजनावसरे ततः ।
मन्त्रं प्रजप साहस्रं श्वासोच्छ्वासविवर्जितः ॥५७॥
एवं तु वर्षमात्रं यः प्रजपेन्नियतः सुधीः ।
दशांशतोऽथ हुत्वैवं ब्राह्मणानपि भोजय ॥५८॥
तेभ्यश्चाशिषमादाय भुंक्ष्व नैवेद्यमादरात् ।
पुराणश्रवणं पश्चात् कुर्याद् वेदान्तचिन्तनम् ॥५९॥

वायुरुवाच—

इति संशिक्ष्य तं वाष्पं हारीतो मुनिसत्तमः ।
तत्कर्णे कथयामास ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ॥६०॥
मन्त्रराजममुं ब्रह्मन् सह्रौंबिन्दुयुतं शनैः ।
सफलं करमादाय तस्य मूर्ध्न्यथ दत्तवान् ॥६१॥
अन्तर्हृदि नियन्तारं बहिश्च गुरुरूपिणम् ।
उभयत्रैकलिङ्गाख्यं संस्मृत्य च महर्षिणा ॥६२॥
आशीर्दत्ताथ बाष्पाय तव यद्यदभीप्सितम् ।
तत्सर्वं सफलं यातु एकलिङ्गप्रसादतः ॥६३॥
बाष्पश्चापि विनीतोऽयं पूजयामास तं गुरुम् ।
धूपदीपैश्च नैवेद्यैः सुमनोभिः सुगन्धिभिः ॥६४॥
पञ्चोपचारमार्गेण वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
शुश्रूषयाऽथ सन्तोष्य मुदं लेभे परं तदा ॥६६॥
यस्य चानुग्रहादेव महर्षेः तत्क्षणात् किल ।
तस्य चारित्र्यमाहात्म्यं वक्तुं केनेह शक्यते ।

इति ते कथितं ब्रह्मन् बाष्पस्याराधनं शुभम् ॥६७॥

**नारद उवाच—**

पञ्चोपचारपूजां मे संक्षेपेण समीरण।
वदस्व येन विधिना सर्वमङ्गलदा भवेत् ॥६८॥

**वायुरुवाच—**

हारीतेन यथाऽकारि पूजा च शास्त्रवर्त्मना।
बाष्पद्वारा समासेन तत्तवाग्रे वदाम्यहम् ॥६९॥
अष्टाद्रव्योद्भवं गन्धमेकलिङ्गाय चार्पयत्।
अक्षतांस्तण्डुलान्पश्चात् काश्मीरयुतमादरात् ॥७०॥
समर्प्य पत्रपुष्पाणि धूपदीपौ विधानतः।
निवेद्य चाथ नैवेद्यं तदा भक्त्या महामुने ॥७१॥
तोषयामास स गुरुं बाष्पो वै द्विजसत्तमः।
श्रूयतां मुनिशार्दूल श्रवणान्मनसः सदा ॥७२॥
सन्तोषमेष्यति सदा नैवेद्यस्य च भक्षणे।
पायसं चाथ संयावं लड्डुकाः पूरिका वटाः ॥७३॥
खण्डमण्डकनामानि क्षीरमोदकमेव च।
अपूपं पोलिका खाद्यं सोहाली घृतपूरकम् ॥७४॥
सुखापूपकसंज्ञं च मण्डकानि च घारिका।
खण्डवर्त्तिकमिन्दूरं टूटिरीचकरञ्जकाः ॥७५॥
कर्पूरनलिका चैव ललत्प्रासिकसंज्ञकम्।
सम्यङ्निष्पन्नरोटी च फेनसंज्ञं च मुर्मुरम् ॥७६॥
शाल्यन्नं कलमान्नं च गन्धशालिभवं तथा।
राजान्नं सञ्चसंज्ञं च चक्रोदर्यभिधं तथा ॥७७॥
कामोदं श्वेतसंज्ञं च षाष्टिकाद्यादिवौदनम्।
मुद्गदालिकया जातं निस्त्वचासूपमुत्तमम् ॥७८॥
सत्वग्भिः केवलैर्मुद्गैर्मध्यमं सूपमेव च।
कदापि न कृतं तेन वर्णिना बाष्पधीमता ॥७९॥
तुवरीचणकाद्यैश्च सूपाधममुदाहृतम्।
तदय (द) त्र न मया दृष्टं तस्य नैवेद्यभाजने ॥८०॥
गव्यं घृतं प्रशस्तं स्यात् सद्यः सन्ताप्य निर्मितम्।
तदेव च घनीभूतमुत्तमोत्तममुच्यते ॥८१॥
माहिषं मध्यमं प्रोक्तमजादीनां तथाधमम्।

नानीतं तेन विप्रेण उत्तमास्ते न सर्वदा ॥८२॥
चतुर्विधानि शाकानि प्रशस्तानि निवेदने ।
ताडिते(तं)भर्जितं चैव रन्धितं बाष्पितं तथा ॥८३॥
शिम्ब्यादिभिः फलैः शाकैर्घृतपाकैश्च ताडितम् ।
वर्यैः फलैर्घृतैः पक्वैर्भर्जितं शाकउ(मु)च्यते ॥८४॥
शालिपर्पटकादीनि भर्जितं परिचक्षते ।
वास्तूकपत्रशाकादि रन्धितं परिचक्षते ॥८५॥
कन्दाद्या बाष्पिताः प्रोक्ताः शाकभेदा निवेदने ।
तदपि प्रत्यहं दृष्टं भाजने च पृथक् पृथक् ॥८६॥
नानीतं लशुनं शाकं गुरुनैवेद्यकर्मणि ।
अतिपक्वमपक्वं च पूतिदुर्गन्धवस्तु (त्तु) यत् ॥८७॥
संस्कारहीनं विरसं रहितं मरिचादिभिः ।
पानकानि च तत्रैव दृष्टानि मुनिसत्तम ॥८८॥
शृणुष्वैकाग्रमनसा वक्ष्याम्युद्देशमात्रतः ।
अम्लिकासम्भवं श्रेष्ठमेकभागस्तथाऽम्लिका ॥८९॥
भागत्रयं तु खण्डस्य मारीचस्त्रिंशको मतः ।
एलायास्तु तथा भागश्चतुःषष्टिः प्रकल्पितः ॥९०॥
लवणस्य तथा भागः शतांशपरिकल्पितः ।
तथा कर्पूरसंयुक्तं सुगन्धिसुमनांसि च ॥९१॥
दत्वाऽथ वासयित्वाऽथ अष्टांशेन जलं पुनः ।
निक्षिप्य तत्समानीय गुरवे च समर्पितम् ॥९२॥
एवं पानकयोगं तु निम्बुक्यादौ तथा चरेत् ।
अम्लानि यानि वस्तूनि नारंग्यादीनि तैरपि ॥९३॥
द्राक्षाखर्जूरकादीनां मध्ये चिञ्चादिमिश्रितम् ।
अष्टमेन तु भागेन निम्बुनारङ्गकं तथा ॥९४॥
कादले पानसे चैव पानकक्रम एषकः ।
तथा शिखरिणी दत्ता तत्प्रकारोऽधुनोच्यते ॥९५॥
अनम्लं च तथा(दधि)ग्राह्यं निर्ज्जलं स्फेटयेच्च तत् ।
घनीभूतस्य दध्नश्च भागैकः शर्करा समा ॥९६॥
आम्लिका विंशको भागो दुग्धभागश्चतुर्थकः ।
मरिचस्य तथा भागो द्वात्रिंशच्चूर्णितस्य च ॥
चतुःषष्टितमो भाग एलायाः परिकल्पितः ॥९७॥

सुश्लक्ष्णे धवले वस्त्रे सर्वमेतत्तु गालयेत् ।
सुशीतले तथा स्थाने व्यजनैर्वीज्य वासितम् ॥९८॥
शिखरिणीमिति ब्रह्मन् गुरुरूपशिवाय वै ।
समर्प्य च ततः पश्चाद् दध्योदनसमी(मधी)श्वरे ॥९९॥
निवेदितं सुभक्त्या तच्छृण्वतां सुखदं सदा ।
अष्टावशिष्टं दुग्धं स्याच्चतुर्थांशावशेषितम् ॥१००॥
दधि स्यान्मधुरं तद्वत् ससितं पित्तहारकम् ।
संधानकानि यद्दत्तं तच्च वक्ष्याम्यविस्तरम् ॥१०१॥
नीम्बूकार्द्रकचूतकन्दकदलीकौशातकीकर्कटी-
धात्रीबिल्वकरीरकैर्विरचितान्यानन्दसंवृद्धये ।
नानादेशसमुद्भवान्यपि तथा किं वर्णयाम्युत्तमा-
न्यन्यान्यादरपूर्वकाणि सततं तस्मै तदा दत्तवान् ॥१०२॥
कर्पूरवासितं तोयं हिमशीतलनिर्मलम् ।
दत्वा पानार्थमेवं हि ताम्बूलं च ततोऽर्पयत् ॥१०३॥
गुरुभक्त्या च स गुरुर्हारीतोऽङ्गीकृतः प्रभुः ।
स्तुत्वा च बहुधा भक्त्या ननामाष्टाङ्गवन्दनैः ॥१०४॥
एवं पञ्चोपचारैः स बाष्पो द्विजवरस्तुतम् ।
हारीतं च तथा तस्य गुरुं तद्गुरुमेव च ॥१०५॥
पूजयामास धर्मात्मा शिवबुद्धया महामुने ।
हारीतोऽपि प्रसन्नात्मा पूजां स्वीकृत्य चात्मवित् ॥१०६॥
शास्त्रे यद्यद् रहस्यं स्यात् तत्सर्वं कथितं तदा ।
बाष्पोऽपि विनयेनैव गृहीत्वा शिवम[ा]र्चयत् ।१०७॥
इति नारद यत्पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ।
प्रसङ्गात्तु पुनश्चात्र मुने किं प्रष्टुमीहसे ॥१०८॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये बाष्पमन्त्रसाधनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

## अथ विंशोऽध्यायः

नारद उवाच—

ततः किमभवद् वायो बाष्पस्य च विशेषतः ।
शृण्वतो मे मनस्तुष्टिरुपयाति कुतूहलात् ॥ १ ॥
स षड्ऋतुषु ग्रीष्मादितपसा तोषितस्तदा ।
इत्युक्तो न च मर्यादां श्रुतवानहमादितः ॥ २ ॥

**वायुरुवाच—**

सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशसंक्रमात् ।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या ह्यहोरात्रं दिने दिने ॥ ३ ॥
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्हेमन्तशैशिराः ।
हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि ॥ ४ ॥
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः ।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेयः शरन्मारणकर्मणि ॥ ५ ॥
आविर्भूतोऽथ कलया परया स सदाशिवः ।
उवाच वचनं प्रीत्या बाष्पं तद्गुरुमेव च ॥ ६ ॥
गच्छ बाष्प स्वकं स्थानं चित्रकूटाभिधं परम् ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रणमंश्च मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥
हारीतोऽप्यगमत्स्वर्गमेकलिङ्गाभ्यनुज्ञया ।
अथ बाष्पो गतस्तत्र चित्रकूटं सरत्नकम् ॥ ८ ॥
प्राकारतोरणैर्युक्तगोपुराट्टालमण्डितम् ।
चतुर्द्वारसमोपेतं दिव्यसोपानसंयुतम् ॥ ९ ॥
नानाजनपदाकीर्णमापणारामसंवृतम् ।
स्वज्ञात्यामथ चोद्वाह्य एकपत्नीव्रतेन च ॥१०॥
प्रत्यष्टं सोमपायी च ब्राह्मणैः सह भूमिपः ।
स्वाश्रमोचितधर्मा ये ज्ञात्वा तान् प्रतिपालयन् ॥११॥
मातृवत्परदारेषु लोष्टवत्परवस्तुनि ।
पश्यन् सदैकलिङ्गात्मरूपं ध्यायंश्चचार सः ॥१२॥
न्यायागतधनस्तद्वत्प्रजा धर्मेण पालयन् ।
चक्रवर्ती च बुभुजे चान्यदेशाधिपानपि ॥१३॥
स्वकीयवशमापाद्य स्ववीर्येणैव वीर्यवान् ।
राज्यं चकार सुमहदेकलिङ्गप्रसादजम् ॥१४॥
प्रतिमासमथासाद्य शिवरात्रिदिनं च सः ।
एकलिङ्गं समभ्यर्च्य परेऽहनि तु पारणाम् ॥१५॥
विधाय गुरुणा साकं ब्राह्मणानपि भोजयन् ।
उमामहेश्वराद्याख्यैरिष्टमित्रैः सबन्धुभिः ॥१६॥
ब्रह्मचारिवनस्थैश्च यतिभिः सह भूमिपः ।
पञ्चरात्रव्रतं कुर्वन् ज्ञानवान् प्रतिहारकः ॥१७॥
भूत्वा द्वार्यथ देवस्य पार्श्वे तिष्ठति भृत्यवत् ।
सुवर्णरत्नखचितयष्टिकां स्वकरे दधत् ॥१८॥

स्वमौद्धत्यं विहायाथ विनयेन समन्वितः ।
सेवयामास नृपतिः स राज्यं परिपालयन् ॥
स्वपत्निपुत्रभृत्यैश्च सामात्यो नृपतिः सदा ॥१९॥
एवं कतिपयैर्वर्षैः कृतं राज्यमकण्टकम् ।
गृहे वैखानसान् धर्मानाचरन् स्थिरमानसः ॥२०॥
राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आथर्वणमुपागतः ।
खचन्द्रदिग्गजाख्ये च वर्षे नागह्लदे मुने ॥२१॥
क्षेत्रे च भुवि विख्याना (ते) स्वगुरोर्गुरुदर्शनम् ।
चकार स समित्पाणिश्चतुर्थाश्रममाश्रयन् ॥२२॥
परमेष्ठिगुरुः पश्चात्तं तथा काममादरात् ।
पृष्टः सविनयं पुत्र [:] किमागमनकारणम् ॥२३॥
साम्प्रतं तव देशे ऽत्र निर्विघ्नं वर्तते खलु ।
प्रजां सर्वप्रयत्नेन पास्यनिर्विण्णतो यतः ॥२४॥
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं बाष्पराज उवाच तम् ।
प्रश्रयाद् विनयेनैव स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः ॥२५॥
आनन्दबाष्पं मुञ्चन् स कृताञ्जलिपुटस्तथा ।

**बाष्प उवाच–**

त्वदीयकृपया ब्रह्मन् सर्वतः सुखमस्ति हि ।
राज्यं प्रशासितं सम्यग् विज्ञप्तुं किञ्चिदागतः ॥२६॥
राज्याभिषेकं भोजाय कारयित्वा विधानतः ।
तस्मै समर्प्य सर्वस्वं चतुर्थाश्रमकाङ्क्षया ॥२७॥
अत्रागतो ह्यहं ब्रह्मन् मा विलम्बं कुरु प्रभो ।
संसारः स्वप्नतुल्यो हि हृदि ज्ञात्वा विचारतः ॥२८॥
भवदन्तिकमायातः संसारादुद्धर प्रभो ।

**वायुरुवाच–**

तं तथाविधमालक्ष्य प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥२९॥

**मुनिरुवाच–**

बाल्ये वयसि किं तात चतुर्थाश्रममीहसे ।
राज्यं भुङ्क्ष्वाधुना प्राप्तमेकलिङ्गप्रसादजम् ॥३०॥
किन्तु साम्प्रतमेतद्धि राज्यं भुङ्क्ष्व समीहितम् ।
त्वयैव प्रार्थितं पूर्वमित्युक्त्वा स महामुनिः ॥३१॥

वायुरुवाच—

प्रहसन् तत्परीक्षार्थं मौनमास्थाय संस्थितः ।
तद्वाक्यश्रवणार्थं तु राजोवाच प्रसन्नधीः ॥३२॥

बाष्प उवाच—

हृद्गतं मेऽथ जानन् वै किमितीह विडम्बनम् ।
त्वत्पादावेव सेवे[ऽ] हमिति निश्चित्य वै मया ॥३३॥
सर्वं भुक्तं मया ब्रह्मन् त्वत्प्रसादादिहैव हि ।
स्थास्याम्यत्रैव त्वत्पादावनुध्यायन् महामुने ॥३४॥

सूत उवाच—

इति श्रुत्वा नु तद्वाक्यं बाष्पस्य च महात्मनः ।
तथेत्युक्त्वा तु मुनिना तस्मै संन्यासमादरात् ॥३५॥
आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति वेदविदां वचः ।
हृदि सञ्चिन्त्य स मुनिः स्वशिष्यं प्रत्यभाषत ॥३६॥

अथर्वाङ्गिरस उवाच —

वेदमित्रास्य बाष्पस्य सन्यासाधिगतस्य च ।
अष्टश्राद्धादिकर्माणि विरजाहोममेव च ॥३७॥
क्रियतां मम वाक्यात्तु मा विलम्बं कुरुष्व हि ।

वायुरुवाच—

तथैव तेन सुधिया वर्णिना ब्रह्मचारिणा ॥३८॥
कृतं तत्तत्विधानोक्तं ब्राह्मणैः सह सोऽथ वै ।
अथर्वा तमथाहूय बाष्पं संन्यासमिच्छुकम् ॥३९॥
तत्त्वमस्यादिवाक्येन मुनिना तेन बोधितः ।
ततो बाष्पेण यतिना बहुकालमिहैव सः ॥४०॥
अयाच्यवृत्तिमालम्ब्य आथर्वेण सहैव तु ।
एकलिङ्गं हृदि ध्यायन् धर्मसंरक्षणाय च ॥४१॥
अवस्थितिं मठे चात्र वेदान्तश्रवणादिना ।
अकरोन्मतिमान् विद्वन्नेतस्मिन्नन्तरे पुनः ॥४२॥
राजा भोजश्च तच्छ्रुत्वा पितुः संन्यासकारणम् ।
महत्या चिन्तयाऽऽक्रान्तः पितुर्दर्शनलालसः ॥४३॥
सत्वरः स समायात एकलिङ्गस्य संन्निधौ ।
एकलिङ्गं समभ्यर्च्य स्तुत्वा नत्वा प्रहर्षतः ॥४४॥

पितुरन्तिकमागत्य तद्गुरुं विनयेन च ।
प्रणम्याश्रूणि मुञ्चन् स पितरं यतिरूपिणम् ॥४५॥
किं कृतं भो महाराज चतुर्थाश्रममाश्रितम् ।
तदिदं मे महद्दुःखमुत्पन्नं साम्प्रतं प्रभो ॥४६॥
किं करोमि क्व गच्छामि येन मे वञ्चितः पिता ।

**सूत उवाच—**

लपन्तमीदृशं बाष्पः शनैराश्वास्य चात्मजम् ।
वेदान्तशास्त्रविज्ञानफलाकांक्षी ह्यहं सुत ॥४७॥
अतः शिवपदं ध्यायन् व्रजेऽहं शिवमादरात् ।
ब्राह्मणाः प्रव्रजन्तीति श्रुति (तं) वाक्यं त्वयैव हि ॥४८॥
पारायणं प्रकुरुते (षे) तत्कि विस्मृतवानसि ।
स्वधर्मविद्विशेषेण मैवं वक्तुमिहार्हसि ॥४९॥
इतीदृग्वचनं श्रुत्वा तूष्णीमास सविस्मयः ।
ततः श्रीपादनाम्नाऽथ नित्यानन्दाश्रमा इति ॥५०॥
ख्यातिराविरभूत्तस्माद् बाष्पराज इति श्रुतम् ।
ततः सोऽथर्वणस्तं तु भोजराजानम [था] ब्रवीत् ॥५१॥
चिन्तया म्लानवदनमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ भूमिप ।
आषाढीपूर्णिमायां वै सम्भारानानय प्रभो ॥५२॥
गुरूणां पूजनं कार्यं व्यासबुद्धया यतींस्तथा ।
पूजनाद् वर्षपर्यन्तं निर्विघ्नं ते भविष्यति ॥५३॥
प्रत्यष्टं त्वत्पिता ऽप्यत्र व्यासपूजार्थमादरात् ।
सम्भारानानयामास त्वमप्येतत् समाचर ॥५४॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा भोजस्तमनु पृष्टवान् ।

**भोज उवाच—**

को गुरुः पूजनं कीदृग्विशेषेण प्रशंस मे ॥५५॥
तच्छ्रुत्वाऽहं तथा कुर्यां यथा शक्त्या सदैव हि ।
भूतानां येऽधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ॥५६॥
श्रुत्या ऽप्युदाहृता यस्मात् पूज्यत्वेनैव देहिनाम् ।

**आथर्वण उवाच—**

शृणुष्वावहितो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥५७॥
तदहं कथयिष्यामि समासेन विबुद्धये ।
गुरुः सदाशिवस्त्वादौ पञ्चाद्दीश्वरसंज्ञकः ॥५८॥

रुद्रो विष्णुस्ततो ब्रह्मा नकुलीशाभिधः परः ।
गौरीशसंज्ञकस्तस्मादत्रीशो मुनिवन्दितः ॥५९॥
मित्रेशः कपिलाण्डश्च सिद्धशासनसंज्ञिकः ।
पिङ्गाक्षश्च मनुष्यश्च पुष्पदन्ताभिधस्तथा ॥६०॥
शन्तनोऽगस्तिसंज्ञश्च दुर्वासाख्यस्तथैव च ।
कौशिकोऽन्यस्ततः प्रोक्तो जैगीशो नामतः परः ॥६१॥
व्रताचार्यस्तु कौण्डिन्यो भैरवाष्टकसंज्ञितः ।
ॐकारो विश्वनाथश्च ततः सोमेश्वराभिधः ॥६२॥
वशिष्ठः शक्तिसंज्ञश्च ततः पाराशराभिधः ।
व्यासः शुकस्ततो गूढपादगोविन्दसंज्ञकः ॥६३॥
ततः श्रीशङ्कराचार्यः कलावाचार्य ईरितः ।
तच्छिष्याश्चैव चत्वारः सम्प्रदायप्रवर्तकाः ॥६४॥
विश्वरूपः पद्मपादस्त्रोटकाचार्य एव च ।
हस्तामलकसंज्ञश्च चतुर्थः परिकीर्तितः ॥६५॥

मठस्तु शारदा चेति प्रथमः परिकीर्तितः ।
द्वारका क्षेत्रमित्याहुः, पश्चिमायां तथा दिशि ॥६६॥
सिद्धेश्वरो देवताऽत्र भक्तानां सिद्धिदः सदा ।
भद्रकालीति तत्रास्ति गोमती सरितां वरा ॥६७॥
तत्र ख्यातो विश्वरूपस्तथैवाचार्यतां गतः ।
तच्छिष्यौ द्वौ महाप्राज्ञौ तीर्थाश्रमाविति स्मृतौ ॥६८॥

नन्दश्च ब्रह्मचारीति तत्सेवायां प्रकल्पितः ।
सम्प्रदायः कीटवारः प्रथमं परिकीर्तितः ॥६९॥
गोवर्द्धनमठो नाम द्वितीयः परिकीर्तितः ।
पुरुषोत्तम इति क्षेत्रं पूर्वस्यां दिशि भूपते ॥७०॥
जगन्नाथो देवताऽत्र देवी तु विमला मता ।
महोदधिस्तीर्थराजः पद्मपादस्तथा मुनिः ॥७१॥

तच्छिष्यौ द्वौ वनारण्यौ चैतन्यब्रह्मचार्यथ ।
तत्सेवायां स्मृतस्तत्र भोगवार इति स्फुटम् ॥७२॥
तृतीयस्तु मठो ज्योतिः स्थितं(तश) चोत्तरतो दिशि ।
क्षेत्रं वै बदरी प्रोक्तं देवो नारायणः स्मृतः ॥७३॥
पुण्यकरीति देवी वाऽलकनन्दा सरित् स्मृता ।
त्रोटकाचार्यसंज्ञश्च सम्प्रदायप्रवर्तकः ॥७४॥

तस्य शिष्यास्त्रयः प्रोक्ता गिरिपर्वतसागराः ।
स्वरूपब्रह्मचारीति तत्सेवायां प्रकल्पितः ॥७५॥
चतुर्थः श्रीगिरिमठो याम्यां दिशि तु संस्थितम् (तः) ।
रामेश्वरो देवतात्र आदिवाराह एव च ॥७६॥
कामाक्षीति महादेवी भक्तानां सर्वदायिनी ।
हस्तामलक आचार्य आचारस्य प्रवर्तकः ॥७७॥
तच्छिष्याश्च त्रयः प्रोक्ताः सरस्वतीति भारती ।
तृतीयस्तु पुरी चेति ब्रह्मचार्यपि श्रृण्वथ ॥७८॥
प्रकाश इतिसंज्ञश्च ब्रह्मचर्यप्रवर्तकः ।
तेषां शिष्या इति प्रोक्ता दशसंज्ञा यथाक्रमात् ॥७९॥
चतुर्युगक्रमेणैव पारम्पर्यमुदाहृतम् ।
युगभेदेन ते वच्मि संक्षिप्य श्रृणु मद्वचः ॥८०॥
कृते ज्ञानप्रदः सत्यस्त्रेतायां दत्त एव च ।
द्वापरे व्यासनामा तु कलौ शङ्करनामधृक् ॥८१॥
सत्यो ब्रह्मा हरिर्दत्तो व्यासो रुद्रः प्रकीर्तितः ।
शङ्करः सविता साक्षादीश्वराः सर्व एव ते ॥८२॥
युगे युगे प्रणष्टस्य ज्ञानस्योद्धरणाय वै ।
श्रुतिस्मृत्यर्थबोधाय पाषण्डिनिधनाय च ॥८३॥
अध्यात्मशास्त्रविज्ञप्त्यै लोकानुग्रहकारणात् ।
अवतारांश्चकारासावीश्वरः परमेश्वरः ॥८४॥
सत्यः सुमेधसाद् (सो) ब्रह्मा पुत्रभावमुपागतः ।
अत्रेर्दत्त शक्तिपुत्रः सुतो व्यासः प्रकीर्तितः ॥८५॥
विष्णुतेजाःसुतः साक्षात् शङ्करः परिकीर्तितः ।
रुद्रो व्यास इति प्रोक्तो यस्मात्तस्मान्नृपात्मज ॥८६॥
रुद्ररूपो गुरुः साक्षाद् भक्त्या पूजां समाचर ।
अतः कलौ विशेषेण व्यासपूजां बिना भवेत् ॥८७॥
विघ्नबाहुल्यमेतत् ते श्रावितं विघ्ननाशनम् ।

वायुरुवाच—

इति गुरुवचः श्रुत्वा भोजो नाम्ना महीपतिः ॥८८॥
तथैव विधिना पश्चात् सम्भारानुपगृह्य च ।
आथर्वणाचार्यपार्श्वे स्थाप्य पूजां तथाऽऽचरत् ॥८९॥
ततः स्वपितरं नत्वा सम्पूज्य च विधानतः ।
प्रत्यब्दं वार्षिकीं पूजां स्वकरेणैव चाकरोत् ॥९०॥

बाष्पेण यद्यदादिष्टं तत्तथैव समाचरन् ।
राज्यं चकार स नृपः प्रजां सम्यगनुत्तमाम् ॥९१॥
वर्द्धयन् धर्ममर्यादां बाष्पधर्मान् समाचरन् ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥९२॥
रामेण सदृशो वीर्ये विष्णुना सदृशः स वै ।
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ॥९३॥
पीनवक्षो (क्षा) विशालाक्षो लक्ष्मीवान् समितिंजयः ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो जितेन्द्रियः ॥९४॥
आजानुहस्तः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ।
एवं स बाष्पतनयो भोजनामाऽतिविश्रुतः ॥९५॥
नीताः शतं समास्तत्र चित्रकूटेतिभूधरे ।
वार्द्धे वयसि सोऽप्येवं योगमार्गमुपाश्रितः ॥९६॥
वेदगर्भमुनेः पार्श्वमवलम्ब्य सुतोत्तम ।
राज्यं समर्प्य विधिना राज्यार्हे मुनिसत्तम ॥९७॥
एकलिङ्गमथागत्य त्यक्तं स्वीयं कलेवरम् ।
इतिश्रीभोजराजस्य चाख्यानं सम्यगीरितम् ।
पठनाच्छ्रवणान्नित्यं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥९८॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये बाष्पान्वये
विंशोऽध्यायः ॥२०॥

## अथैकविंशोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

वेदगर्भ इति प्रोक्तः कोऽसौ यस्याश्रयं गतः ।
बाष्पराजसुतः श्रीमान् राजा भोजोऽतिविक्रमः ॥ १ ॥

**वायुरुवाच—**

पूर्वमेव मयाख्यातं हारीतस्य गुरुः स वै ।
ब्रह्मचर्याश्रमादेव परिव्राजक इत्युत ॥ २ ॥
एकलिङ्गं स्मरन्नन्तः स्वधर्ममनुपालयन् ।
आथर्वणस्य शिष्यो ऽसौ गुरुसेवापरः सदा ॥ ३ ॥
ब्रह्मचर्याश्रमादेव गृहीभूत्वा वनात्ततः ।
एकलिङ्गाभ्यनुज्ञातो हारीतोऽगाद् दिवं जवात् ॥ ४ ॥

सूत उवाच—

इति तद्वाक्यमाकर्ण्यं नारदः पर्यं (रि) पृष्टवान् ।
देवर्षिरपि सर्वं तत् जानंल्लोकार्थमादरात् ॥५॥

नारद उवाच—

भोजस्य राज्ञस्तनयः कथं पृथ्वीं शशास ह ।
नाम किं तस्य भूपस्य वर्णयस्व समीरण ॥६॥
तत्सन्ततिरभूत् कीदृगिति मे पृच्छतः प्रभो ।
सर्वज्ञोऽसि तथा तस्य पराक्रममतो महत् ॥७॥
बाष्पस्य द्विजवर्यस्य शृण्वंस्तृप्ति न चाप्नुयाम् ।

वायुरुवाच—

नामकर्मसमारम्भे तस्य पौत्रस्य भूपतेः ॥८॥
ज्योतिर्विदस्तथाहूय किं नामास्य भविष्यति ।
इति बाष्पेण सम्पृष्टास्ते सर्वेऽप्यूचुरादरात् ॥९॥
राजन् पौत्रस्य ते नाम सुषमाण इति स्फुटम् ।
ख्यातिमेष्यति भूयस्ते शोभनश्चेति नामतः ॥१०॥
सुषुमा परमा शोभा शोभनोऽयं च सर्वतः ।
वेदवेदाङ्गसम्पन्नो धार्मिकः सत्पराक्रमः ॥११॥
समुद्रवलयां पृथ्वीं भोक्षिष्यति महायशाः ।
तव वंशाग्रणीभूत्वा पुत्रपौत्रादिकैर्युतः ॥१२॥
वाजि (ज) पेयादिकृदयं याज्ञिकः शरदां शतम् ।
भुक्त्वा राज्यं महाराजन्नेकलिङ्गप्रसादजम् ॥१३॥
त्रिकालज्ञानसम्पन्नः क्षात्रधर्मपरायणः ।
काश्यपानां कुले जातो भवान्तरफलान्यदन् ॥१४॥
इह जन्मनि भुक्त्वा तु ततः शिवपदं पुनः ।
प्राप्नोतीत्यत्र सन्देहो न मनागपि विद्यते ॥१५॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा बाष्पः पौत्रस्य हर्षतः ।
सुवर्णरत्नवासांसि गोगजाश्वादिमाहिषम् ॥१६॥
ग्रामांश्च ब्राह्मणाग्र्येभ्यो ददौ बन्दिजनाय च ।
चारणाग्रेसरेभ्यश्च रत्नानि विविधानि च ॥१७॥
सो ऽपि कालेन शनकैराराध्याशु स्वकं परम् ।
एकलिङ्गं च सुधिया वेदगर्भस्य सन्निधौ ॥१८॥

पितृपैतामहान् धर्मान् ज्ञात्वा वेदोक्तकर्मणा ।
एकपत्नीव्रतेनैव गार्हस्थ्यं धर्ममाचरन् ॥१९॥
मासि मासि समागम्य एकलिङ्गं तथा गुरुम् ।
सम्पूज्य स्वयमेवाथ पट्टराज्ञीयुतः प्रभुः ॥२०॥
पञ्चरात्रव्रतं कुर्वन् भूशायी विजितेन्द्रियः ।
स्वपुत्रपौत्रकैर्युक्तस्त्रिकालं धर्मतत्परः ॥२१॥
षष्ठेऽहनि तु सम्पूज्य तमापृच्छ्य च सद्गुरुम् ।
उपानद्यानहीनोऽसौ गमनागमने सदा ॥२२॥
एकलिङ्गसमीपे स राजा भृत्य इवापरः ।
दूरतश्छत्रयानादिसेनां च विसृजन् सदा ॥२३॥
गुरोरग्रे स्वमौद्धत्यं मुक्त्वायात्युपहारधृक् ।
पुत्रपौत्रादिपत्न्या च विनयेन महीपतिः ॥२४॥
एकलिङ्गस्य सामीप्यं मुक्त्वा याति यदा तदा ।
राजचिह्नानि संधार्यं वि(व्य)राजत्स्वं निकेतनम् ॥२५॥
प्रविश्य सर्वदा ब्रह्मन् स राजा पितृशासनात् ।
राज्यं प्रशास्ति भूपालो राजधर्माननुस्मरन् ॥२६॥
एवं बहूत्द्य (बहवोऽ)ग [म] न्वर्षास्तस्मिन् शासति भूपतौ ।
ततः सोऽपि विहायाशु राजलक्ष्मीं यदृच्छया ॥२७॥
कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैरन्यैरसङ्ख्येयैर्व्रतैः शुभैः ।
पत्न्या साकं तपः कृत्वा वानप्रस्थाश्रमोचितम् ॥२८॥
ब्राह्मणैः सह धर्मज्ञः स्वधर्ममनुपालयन् ।
अग्निहोत्रक्रियां त्यक्त्वा वर्षे द्वादशमे गते ॥२९॥
भार्यापुत्राज्ञया चैव चतुर्थाश्रममाप सः ।
ततः स्वल्पेन वयसा एकलिङ्गे लयं गतः ॥३०॥
संन्यासमहिमा वक्तुं को वा जानाति तत्त्वतः ।
( संन्यासमहिमानं को वक्तुं जानाति तत्त्वतः )
श्रुतिरेवं तथा वक्ति न्यास एवात्परे (त्मनश)चयत् ॥३१॥
यत्र सात्त्विकधर्मा ये राजसास्तामसा न वै ।
तेषां धर्मा मया सम्यक् तुभ्यमत्र प्रकाशिताः ॥३२॥
संन्यस्यन्तं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
अयं मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥३३॥
देवताप्रतिमां दृष्टवा यतिं दृष्ट्वैकदण्डिनम् ।
न नमेदपि कायेन ब्रह्महा स निगद्यते ॥३४॥

यतीनां पुरतो मोहादुच्चासनगताश्च ये ।
महापातकिनस्ते वै सङ्गं तेषां न कारयेत् ॥३५॥
इति राज्ञश्च तस्याथ सुषुमाणस्य धीमतः ।
चरित्रं द्विजवर्यस्य यः शृणोति सुभक्तितः ॥३६॥
श्रावयेद् वाऽथ मतिमान् सर्वकामानवाप्नुयात् ।
बाष्पस्य राजधानी सा विष्णोरिव यथा शुभा ॥३७॥
श्रवणात् पठनाद् वाऽपि शिवपार्षत्त्वमाप्नुयात् ।
इति नारद यत्पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥३८॥
किमन्यत् प्रष्टुकामोऽसि तदिदानीं वदस्व मे ।
तवाज्ञातं तु नास्त्येव तथापि लोकहेतवे ॥३९॥
पृच्छसीति च मे ज्ञातं तद् भवान् वक्तुमर्हसि (त्ति) ।

**नारद उवाच—**

पितर्युपरते वायो तत्सूनुः किमकारिवान् (वै) ॥४०॥
नाम्ना सोऽपि कथं ख्यातस्तद्धर्मानाशु शंस मे ।
सर्वज्ञोऽसि महाबाहो संशयं छिन्धि मेऽनघ ॥४१॥

**वायुरुवाच—**

नाम्ना गोविन्द इत्यासीद् द्विजश्रेष्ठोऽतिधार्मिकः ।
दयावाननसूयश्च यज्ञकृद्धार्मिकाग्रणीः ॥४२॥
पितृपैतामहान् धर्मान् संरक्षन् पृथिवोमिमाम् ।
पालयायास धर्मात्मा यथा विष्णुरिवापरः ॥४३॥
हर्षाद्योऽतोलयत् स्वीयं कलत्रं शिशुभिः सह ।
सुवर्णरत्नवैडूर्यैर्ब्राह्मणेभ्यो ह्यदात्ततः ॥४४॥
प्रतिवर्षं स भूपाल एकलिङ्गस्य सन्निधौ ।
नित्यं तथैकलिङ्गस्य प्रीतये रत्नकाञ्चनैः ॥४५॥
कुसुमानि विनिर्माय पूजयामास स प्रभुः ।
नवरत्नैर्विनिर्माय भूषयामास भूषणैः ॥४६॥
एकलिङ्गं तथा देवीं भक्तितः पर्वतात्मजाम् ।
उमामहेश्वरप्रीत्यै दम्पतीनपि सर्वदा ॥४७॥
मिष्टान्नैर्भोजयामास सहस्रं भूरितेजसः ।
ब्राह्मणान् स नृपो ब्रह्मन् दक्षिणाभिर्विशेषतः ॥४८॥
एकलिङ्गस्य पुरतः सरसीन्द्राख्यकेऽनिशम् ।
नित्यं .. व्रतमिमं तस्य गोविन्दस्य च नारद ॥४९॥

ब्राह्मणक्षत्रियादींश्च स्वस्वधर्मे प्रवर्तयन् ।
स्वयं तथाविधो भूत्वा ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः ॥५०॥
धनुर्वेदस्य यद् गुह्यम् प्राप्तवान् शङ्करात्प्रभुः ।
स यदा याति सामीप्ये एकलिङ्गस्य पार्थिवः ॥५१॥
आविर्भूत्वा (य)वचस्तं तु बोधयन् प्रीतमानसः ।
दार्षदं लिङ्गमास्थाय शिवनाभमयं महत् ॥५२॥
चतुरस्रात्मिकायां तु वेद्यां मध्येऽग्रतः स्थितः ।
नो वदत्येकलिङ्गोऽपि हिताहितमनन्यधीः ॥५३॥

**नारद उवाच—**

कथं स एकलिङ्गोऽपि नान्येषां दृष्टिगोचरः ।
गोविन्दस्यैव भवता विशेषेणेह गोचरः ॥५४॥
इत्युक्तं यत्त्वया वायो कारणं तत्र कथ्यताम् ।
गोविन्दस्यैकलिङ्गस्य परस्परमभूत्किल ॥५५॥
सख्यत्वं चात्र नान्येषां सेव्यसेवकयोस्तयोः ।
किञ्च तेनेह प्रभुणाऽऽचरितं तच्च कथ्यताम् ॥५६॥

**वायुरुवाच—**

श्रूयतां मुनिशार्दूल वक्ष्यमाणं महाद्भुतम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानं स्यादीशजीवयोः ॥५७॥
नारायणोऽथ भगवान् एकलिङ्गाज्ञया प्रभुः ।
बाप्पान्वये समुत्पन्नो धर्मसंरक्षणाय च ॥५८॥
विनाशाय च दुष्टानां साधूनां पालनाय वै ।
अतोऽत्र जीवरूपेण एकलिङ्गमपूजयन् ॥५९॥
स्वप्नलब्धममुं मन्त्रं जपन् सम्यग्विधानवित् ।
शिवेन सह मित्रत्वमाप सेवाफलं तदा ॥६०॥
ततः स्वकुलमार्गेण शिवे लयमवाप सः ।
चतुर्थाश्रमधर्मा ये ब्राह्मणानां युगे युगे ॥६१॥
विहिताचारयुक्तः सन् ज्ञानाग्निदग्धकिल्विषः ।
इति ते कथितं ब्रह्मन् किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥६२॥

**नारद उवाच—**

स्वप्नलब्धं कथं मन्त्रं जप्तवानिह सुव्रत ।
विधानमपि तत्सर्वं कुतः प्राप्तं महीभृता ॥६३॥

वायुरुवाच—

जन्मतः सप्तमे वर्षे मौञ्जीबन्धनकर्मणि ।
पितृरूपेण चागत्य स्वोत्संगे विनिवेश्य च ॥६४॥
एकलिङ्गः स भगवान् तं शिशुं प्रत्यभाषत ।
वत्स गोविन्द भूयस्त्वमिमं मन्त्रं प्रजप्य च ॥६५॥
परं मुदमवाप्यात्र चित्रकूटाधिपो भव ।
इत्युक्त्वा दक्षकर्णे तु तारं हंसौमितीर्य च ॥६६॥
क ए इ ले ति सम्प्रोच्य ह्रीमित्यन्ते तथाह स (:) ।
कहलेति च सम्प्रोच्य ह्रीमित्यन्ते तथैव च ॥६७॥
सकलान्ते च हृल्लेखां नमः शिवाय चेत्यथ ।
मन्त्रस्य च ऋषिर्ब्रह्मा विराट् छन्द इहोच्यते ॥६८॥
देवता चास्य मन्त्रस्य एकलिङ्गो निगद्यते ।
सर्वव्यापी परानन्दः प्रणवो बीजमुच्यते ॥६९॥
हंसौं शक्तिरिति प्रोक्तं रेफः कीलकमित्यथ ।
चतुर्वर्गाप्तये चात्र विनियोग इतीरितः ॥७०॥
बीजेन च द्वितीयेन षडङ्गन्यास इत्यपि ।
तारेण पुटितं कृत्वा सर्वाङ्गे व्यापकं कुरु ॥७१॥
मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि त्रिविधं मुनिसत्तम ।
प्रणवस्य जपं कुर्यान्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥७२॥
हृद्गतं योगिभिर्ध्यानगम्यं दीपशिखोपमम् ।
वेद देवत्रयै (येऽप्ये)वं सारं चैकं विमोक्षदम् ॥७३॥
प्रणवाग्निमबीजस्य ध्यानं पूर्वं मयेरितम् ।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥७४॥
प्रवक्ष्यामि तु शैवानां सर्वस्वं ब्रह्मपुत्रक ।
हिमगिरिशिखराभं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं
सुरवरमुनिपूज्यं व्याघ्रकृत्ति वसानम् ।
परशुमृगवराभीर्धारयन्तं प्रसन्नं
निखिलभयविनाशं विश्वकृत्यं च वक्त्रम् ॥७५॥
त्रिधेति ध्यानमाख्यातं ऋषिपत्न्यग्रतो ह्यभूत् ।
रूपं परमनौपम्यं कामेशो यत्र नामकः ॥७६॥
वेदागमपुराणेषु ख्यातः सर्वत्र वन्दितः ।
इति ध्यात्वा यथाध्यानं गुरुं मां च कुमारक ॥७७॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं जपस्व मम वल्लभ।

**सूत उवाच—**

स तथैवाकरोत् स्वप्ने प्रबुद्धय च विधानवित्।
पितुरन्तिकमागत्य तत्सर्वं कथितं यदा ॥७८॥
तदा स राजराजोऽपि न मया कथितं तव।
इत्युक्तं तद्वचः श्रुत्वा पुनराह नृपं प्रति ॥७९॥
स्वाङ्के निवेश्य मां तात किं त्वया कथितं न मे।
मृषैव नेति नेतीति किमर्थमिह भाषसे ॥८०॥
तदा राजा [प्र] हर्षेण पुत्रमालिङ्ग्य मानतः।
शनैः शनैरुवाचेदमेकलिङ्गाच्च लब्धवान् ॥८१॥
त्वयेति चेति सम्वोध्य एकलिङ्गात् ततः परम्।
तवेप्सितं सकलं भविष्यति गुरोर्बलात् ॥८२॥
इत्युक्त्वा विररामासौ स्वसुतं विनयेन तु।
तत्सुतस्य च भाग्यत्वादिति निश्चित्य भूपतिः ॥८३॥

**नारद उवाच—**

ततः किमकरोद् वायो राजा स च महामतिः।
श्रोतुमिच्छामि वृत्तान्तं तत्पुत्रस्य च विस्तरात् ॥८४॥

**वायुरुवाच—**

पितुर्वाक्यमिति श्रुत्वा ववन्दे पितरं तदा।
हर्षादश्रूणि मुञ्चन् स मातरं प्रत्यभाषत ॥८५॥
मातरेह्येहि मे तात वाक्यं शृणु शुभप्रदम्।
तथा पप्रच्छ भर्तारं किं वक्तीति सुतस्तव ॥८६॥
इति पृष्टे तया साध्व्या राजा तां हर्षयन् तदा।
मेघगम्भीरगिरया श्रोतॄणां सुखदं तदा ॥८७॥
पुत्रस्य स्वप्नवृत्तान्तं भार्यायै सर्वमीरितम् (रितवान्)।
साऽपि तद्वृत्तमाकर्ण्य स्वसुतं प्रत्यभाषत ॥८८॥
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि, सफलं जीवितं सुत।
ततः स भूपतिर्वाक्यमूचिवानिति पुत्रकम् ॥८९॥
एकलिङ्गं व्रजाम्याशु पञ्चरात्रव्रताय वै।
तत्र तेभ्यः सकाशात्तु वेदगर्भाश्रमात् क्रमात् ॥९०॥
सर्वं ज्ञात्वाऽथ शास्त्रीयं साङ्गोपाङ्गमुपासनम्।
करिष्यामीति निश्चित्य माघस्नानार्थमादरात् ॥९१॥

आगतः पुत्रभार्याद्यैः सहैवावनिपालकैः ।
हस्त्यश्वरथयानैश्च पदातिभिरथावृतः ॥९२॥
ग्रामाद् बहिः स्वसैन्यं तत् संस्थाप्याथ समाहितः ॥९३॥
उपहारकरः पश्चादाजगाम मुनीश्वरम् ।
साष्टाङ्गेन नमस्कृत्य सभार्यः ससुतो नृपः ॥९४॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनयानतकन्धरः ।
पुरः स्थितस्तदा तेन मुनिना सत्कृतो नृपः ९५॥
पप्रच्छ तं नृपवरं स मुनिः पर्यनन्दयत् ।
कुशलं ते महाराज सपुत्रपशुबान्धवैः ॥९६॥
कच्चित्ते (त्वं) साम्प्रतं राज्यं निर्विघ्नं पासि पुत्रक ।

**वायुरुवाच—**

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा वचनमब्रवीत् ॥९७॥

**राजोवाच—**

स्वामिन् भवन्तमेवाहमनुस्मृत्य यदृच्छया ।
करोमि शासनं सम्यग् यादृगाज्ञा तथैव च ॥९८॥
आसमुद्रान्तवलयां मेदिनीं मुनिसत्तम ।
एकलिङ्गस्य चारित्रं साम्प्रतं किञ्चिदद्भुतम् ॥९९॥
प्रष्टुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन् मत्पुत्रस्य समीहया ।
तद्विमृश्य यथाऽस्माकं सुखमेधेत तद्वद ॥१००॥
त्वं गतिः सर्वलोकानां कृपासिन्धो महद् (हा) यते ।
त्वत्तेजसा विशेषेण कृतकृत्योऽस्मि सर्वथा ॥१०१॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा स मुनिस्त्विदमब्रवीत् ।

**वेदगर्भ उवाच—**

कथ्यतां नृपशार्दूल यत्तो मनसि वर्तते ॥१०२॥
एकलिङ्गस्य चारित्र्यं पठतां शृण्वतां सदा ।
चतुर्वर्गप्रदं नृणां प्रोक्तं तद्वायुना पुरा ॥१०३॥
अतस्त्वमपि जानासि वर्ण्यतामनुपूर्वशः ॥१०४॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये बाप्पान्वये एकविंशो ऽध्यायः ॥२१॥

## अथ द्वाविंशोऽध्यायः

**सुघुमाण उवाच—**

ब्रह्मन् मत्पुत्रभाग्यात्तु एकलिङ्गोऽकरोत् कृपाम् ।
उपदिष्टं यथा स्वप्ने स तथैवावदच्च माम् ॥१॥

तच्छ्रुत्वा विस्मितश्चाहं त्वरयाऽत्र प्रशाधि माम् ।
गुरोः कृपां विना ब्रह्मन् कथं ज्ञानमवाप्नुयाम् ॥२॥
तत्र यद्यद्रहस्यं स्यात्तन्मे वक्तुमथार्हसि ।

**सूत उवाच—**

इति श्रुत्वा नृपात् सोऽपि विस्मयं परमं गतम् (:) ॥३॥
बाल्ये वयसि तत्रापि गायत्रीग्रहणे दिने ।
उत्सवे च विशेषेण प्राप्तवान् स्वप्नतः किल ॥४॥
अतोऽस्य महती कीर्तिर्भविष्यति सुतस्य ते ।

**सुषुमाण उवाच—**

उपदेशविधानेन पत्न्या सह महामुने ॥५॥
अद्यैव दिवसः श्रेष्ठो ह्यधुनैवोपदिश्यताम् ।

**सूत उवाच—**

नृपस्येति वचः श्रुत्वा सम्भारानुपहृत्य च ॥६॥
पूर्णाभिषेकविधिना ह्यभिषिच्य सपत्निकम् ।
स्वरानुसारतः स्वस्य तत्कर्णे कथितं यदा ॥७॥
गुरुमन्त्रं तथा शैवं कामेशाख्यं सविस्तरम् ।
सऋषिच्छन्दबीजादिषडङ्गन्यासपूर्वकम् ॥८॥
तथा तदात्मजं(जः) सोऽपि पृथक्त्वेनोपदिष्टवान् ।

**वेदगर्भउवाच—**

मन्त्रस्यास्य प्रभावोऽयं वर्णितुं केन शक्यते ॥९॥
मन्त्रात्मकस्य देवस्य पूजयन् विधिना सदा ।
त्रिकालमेककालं वा मन्त्री सद्गतिमाप्नुयात् ॥१०॥
जन्मान्तराराधनाच्च स मन्त्रः प्राप्यते पुनः ।
येन येन निमित्तेन सा विद्या फलदा ततः ॥११॥
अतोऽयमधुना पुत्रः प्राप्तवांस्तव भूपते ।
अस्मिन्नर्थे नृपश्रेष्ठ संशयो माऽस्तु सर्वथा ॥१२॥
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः । ❁
अतो मया विचार्यैवं कथितं ते सविस्तरम् ॥१३॥
प्रातःकृत्यमतो वक्ष्ये संक्षेपेण नृपोत्तम ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय कृत्वा शौचादिकं सुधीः ॥१४॥
परिधायाम्बरं शुद्धं मन्त्रस्नानं विधाय च ।
प्रविश्य देवतागारं कुर्यान्मार्जनलेपने ॥१५॥

---

❁ भगवद्गीता ४।४०

मङ्गलारात्ति (त्रि)कं कृत्वा निर्माल्यमपसार्य च ।
दद्यात्पुष्पाञ्जलिं दन्तधवनाचमने तथा ॥१६॥
आधारादिपृथिव्यन्तास्तत्र सम्पूज्य देवता (:) ।
आसनं तत्र विन्यस्य चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥१७॥
तारमायात्तथाधारशक्त्यन्ते कमलासनः ।
ॐनमश्चेति सम्प्रोच्य गन्धादिना ततोऽर्चयेत् ॥१८॥
स्वस्तिकादिक्रमेणैव स्वासने उपविश्य च ।
मूर्ध्नि स्वस्य गुरुंस्मृत्य (त्वा) यथारूपं प्रसन्नधीः ॥१९॥
वराभयकरं शान्तं स्मरेत्तं मन्त्रपूर्वकम् ।
चिच्छक्त्या सह संसिद्धयै ततः सम्पूज्य भक्तितः ॥२०॥
मानसैरुपचारैश्च ततो यायाज्जलाशयम् ।
देवस्य गुणनामानि कीर्तयन् मौनतः सुधीः ॥२१॥
स्वशाखोक्तविधानेन स्नात्वा इन्द्रसरस्यथ ।
वाससी परिधायाथ कस्तूर्यगरुकुङ्कुमैः ॥२२॥
चन्द्रचन्दनसंयुक्तां विभूतिं धारयेत् सुधीः ।
मालां सोदरवक्षस्सु कुर्यात् पञ्चत्रिपुण्ड्रकान् ॥२३॥
क्रमात्तत्पुरुषाघोरसद्य(ो)वामेशनामभिः ।
त्रयम्बकेति मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म धारयेत् ॥२४॥
सन्ध्यां च वैदिकीं कृत्वा मन्त्रसन्ध्यां तथैव च ।
कृत्वा च विधिना पश्चात् स्तुतिं कुर्वन् शिवालयम् ॥२५॥
आगत्य दूरे संक्षाल्य पादौ हस्तौ शुचिस्ततः ।
आचम्य त्रिस्तथा प्राणानायाम्य विधिना तथा ॥२६॥
पश्चिमद्वार्यथागत्य सामान्यार्घ्यमथाचरेत् ।
अस्त्रेण पात्रं संक्षाल्य साधारं मण्डले न्यसेत् ॥२७॥
बिन्दुत्रिकोणवृत्तं तच्चतुरस्त्रमथापि च ।
मण्डलं चेति सम्प्रोक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥२८॥
मायाव्यापक इत्युक्त्वा मण्डलाय नमस्तथा ।
हृन्मन्त्रेण जलं पूर्य गन्धाद्यैरर्च्य मुद्रया ॥२९॥
अमृतीकृत्य मन्त्रेण सकलीकृत्य वै पुनः ।
त्रिधाऽभिमन्त्र्य मूलेन योन्या चोद्दीपयेज्जलम् ॥३०॥
पुष्पेणोद्धृत्य चात्मानं पूजोपकरणानि च ।
प्रोक्षयेतु ततो द्वारदेशे द्वाराधिपान् यजेत् ॥३१॥

द्वारमस्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य भक्त्या परमया पुनः।
विघ्नं द्वारोर्ध्वशाखायां महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥३२॥
ततो दक्षिणशाखायां विघ्नं क्षेत्रेशमन्यतः।
तयोः पार्श्वगते गङ्गायमुने पुष्पकादिभिः ॥३३॥

धातारं च विधातारं शङ्खपद्मनिधींस्तथा।
देहल्यामर्चयेदस्त्रं प्रतिद्वारमिति क्रमात् ॥३४॥
पश्चिमद्वारमारभ्य द्वौ द्वावन्यान् प्रपूजयेत्।
नन्दिसंज्ञो महाकालो गणेशो वृषभस्तथा ॥३५॥

भृंगिरीटिस्तथा स्कन्द उमा चण्डेश्वरस्तथा।
इति सम्पूज्य विधिना पश्चाद् दक्षिणद्वार्यथ ॥३६॥
कल्पवृक्षवनान्तस्थवेदिकायां प्रपूजयेत्।
सरत्या (सरतिं) मन्मथं चादौ वसन्तं प्रीतिसंयुतम् ॥३७॥
सम्पूज्य नृपशार्दूल सर्वमीप्सितमाप्नुयात्।
द्वारपूजां विधायेत्थं मूलमन्त्रं पठन् धिया ॥३८॥

दिव्यान्तरिक्षभौमांश्च सर्वविघ्नान्निवारयेत्।
शिवाज्ञया इतोऽन्यत्र व्रजन्तु सर्व एव हि ॥३९॥
द्वारपा देवदेवस्य द्वारात्रक्षन्तु सर्वतः।
विनिवार्याखिलान् विघ्नानित्याज्ञा शम्भुना कृता ॥४०॥

पार्ष्णिघातत्रयं हत्वा स्वाङ्गं सङ्कोचयन् शनैः।
वामशाखां स्पृशन्नन्तः प्रविशेद् दक्षिणांघ्रिणा ॥४१॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥४२॥

इत्यनुज्ञां गृहीत्वाऽस्य जपस्थानं विशोधयेत्।
निरीक्ष्य मूलमन्त्रेण अस्त्रेण प्रोक्ष्य चैव हि ॥४३॥
ताडयित्वाऽस्त्रमन्त्रेण वर्मणाऽभ्युक्ष्य तां भुवम्।
चन्दनागरुगन्धाद्यैर्धूपयेदन्तरं ततः ॥४४॥
उक्तेषु चासनेष्वेकं चैलाजिनकुशोत्तरम्।
वेदिकायां प्रविन्यस्य प्रोक्षयेत् सलिलैः शुभैः ॥४५॥

आधारादिपृथिव्यन्तास्तत्र सम्पूज्य देवताः।
मेरुपृष्ठऋषिश्छन्दः पृथिव्या [:] सुतलं मतम् ॥४६॥
देवता कूर्म आख्यातः संस्मरेदृषिपूर्वकान्।
पृथ्वी (थ्वि) त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना वृता ॥४७॥

त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ।
इति मन्त्रं पठन् पीठे प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥४८॥
स्वस्तिकादिक्रमेणैवं ऋजुकायो विशेद् बुधः ।
स्थापयेद् दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि चात्मनः ॥४९॥
सुवासिताम्बुसम्पूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभनम् ।
प्रक्षालनाय करयोः पृष्ठे पात्रं विधापयेत् ॥५०॥
घृतादिज्वलितान् दीपान् स्थापयेत् परितः शुभान् ।
दर्पणे चामरं छत्रं तालवृन्तं च पादुके ॥५१॥
आदर्शः स तु विज्ञेयो दैव आसुर एव वा ।
दैवतं तं विजानीयात् कान्तिर्यत्र समा भवेत् ॥५२॥
आसुरः स तु विज्ञेयो घोरा यत्र प्रभा भवेत् ।
अतो दैवतसंज्ञो य आदर्शं संग्रहेत् सदा ॥५३॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
नत्वा गुरुं गणेशं च पुरतः स्वेष्टदैवतम् ॥५४॥
रेफत्रयमथोच्चार्य बिन्दुयुक्तं तथोच्चरेत् ।
तेजोज्वलत्प्रकाशाय नमः स्वपरितः स्मरेत् ॥५५॥
अग्निप्राकारमन्त्रेण स्वस्य रक्षां विधाय च ।
त्रिशूलमुद्रया पूर्वं विदध्यात्तद्विधानतः ॥५६॥
सुदर्शनस्य मन्त्रेण रक्षां कुर्यात् समन्ततः ।
ॐ सहस्रारवर्मास्त्रं सुदर्शनमनुः स्मृतः ॥५७॥
सुगन्धपुष्पमर्द्धे(र्दे)न सुरभीकृत्य हस्तकौ ।
क्षिपेदुत्तरतः पुष्पं मन्त्री नाराचमुद्रया ॥५८॥
भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् तत्प्रकारोऽधुनोच्यते ।
पादतो जानुपर्यन्तं चतुरस्रं सवज्रकम् ॥५९ ॥
लं युतं पीतवर्णं च भुवः स्थानं विचिन्तयेत् ।
जान्वोरानाभिचन्द्रार्द्धनिभं पद्मेन लाञ्छितम् ॥६१॥
शुक्लवर्णं स्वबीजेन युतं ध्यायेदपां स्थलम् ।
नाभितः कण्ठपर्यन्तं त्रिकोणं रक्तवर्णकम् ॥६१॥
स्वस्वस्तिकं स्वबीजेन युतं वह्नेस्तु मण्डलम् ।
कण्ठाद् भ्रूमध्यपर्यन्तं कृष्णं वायोस्तु मण्डलम् ॥६२॥
षट्कोणं बिन्दुभिः षड्भिर्युतं बीजेन चिन्तयेत् ।
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं वर्तुलं ध्वजलाञ्छितम् ॥६३॥

धूम्रवर्णं स्वबीजेन युक्तं ध्यायेन्नभःस्थलम् ।
एवं ध्यात्वा पुरस्तानि भूतानि प्रविलापयेत् ॥६४॥
पृथ्वीमप्सु च ता वह्नौ वह्निं वायौ समीरणम् ।
प्रविलाप्य तथाकाशेऽथाकाशं प्रकृतौ ततः ॥६५॥
परब्रह्मस्वरूपान्तां मायाशक्ति परात्मनि ।
इत्थं समस्तदेहादिप्रपञ्चं परमात्मनि ॥६६॥
प्रविलाप्य परब्रह्मरूपस्तिष्ठेत् कियत्क्षणम् ।
पुनरुत्पादयेद् देहं पवित्रं परमात्मनः ॥६७॥
शब्दब्रह्मात्मिका माया मातृका प्रकृतिः परा ।
अजायत जगन्मातुराकाशं नभसोऽनिलः ॥६८॥
समीरणादभूद् वह्निर्वह्नेरापस्ततो मही ।
स्वीयमेभ्योऽपि भूतेभ्यस्तेजोरूपं कलेवरम् ॥६९॥
देवताराधने योग्यमुत्पन्नमिति भावयेत् ।
तस्मिन् देहे परातमानं सर्वज्ञं सर्वशक्तिकम् ॥७०॥
समस्तदेवतारूपं सर्वमन्त्रमयं शुभम् ।
आत्मरूपेण देहे स्वे बीजभावेन तिष्ठति ॥७१॥
इत्येषा भावना मुख्या भूतशुद्धिरितीरिता ।
भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाऽभिचारवत् ॥७२॥
विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ।
भूतशुद्धिं विधायेत्थं ततो वै स्थापयेदसून् ॥७३॥
पाशाङ्कुशेन पुटितां मायामादौ समुद्धरेत् ।
यकारादिसकारान्तान् बिन्दुमस्तकलाञ्छितान् ॥७४॥
तदन्ते चोद्धरेत्प्राज्ञो व्योमसद्मेन्दुसंयुतम् ।
ततो हंसपरात्मानौ ततोऽमुष्य परं वदेत् ॥७५॥
प्राणा इति वदेत् पश्चादिह प्राणास्ततः परम् ।
अमुष्य जीव इहतः स्थितोऽमुष्य पदं ततः ॥७६॥
सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यान्ते वाङ्मनश्चक्षुरन्ततः ।
श्रोत्रघ्राणपदे प्राणा इहागत्य सुखं चिरम् ॥७७॥
तिष्ठन्त्वग्निवधूपूर्वं प्रत्यमुष्य पदं बुधः ।
पाशाद्यानि प्रयोज्यैवं प्राणमन्त्रं समुद्धरेत् ॥७८॥
ब्रह्मर्षिरस्य छन्दस्तु विराट् प्राणस्तु देवता ।
प्रणवोऽग्निवधू बीजं शक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥७९॥

शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वृष्यादि विन्यसेत् ।
अमुष्येति पदस्थाने साध्यस्य पदमुच्चरेत् ॥८०॥
त्रिर्जपेत् साध्यसंस्पर्शे कृत्वा मन्त्रमुदारधीः ।
एष प्राणप्रतिष्ठायाः प्रकारः परिकीर्तितः ॥८१॥
ततस्तु मातृकान्यासं कुर्यादृष्यादिपूर्वकम् ।
अथातः कथयिष्यामि मातृकान्यासमुत्तमम् ॥८२॥
यत्कृत्वा मन्त्रिणः सर्वे दिव्यभावं प्रपेदिरे ।
ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द ईरितम् ॥८३॥
सरस्वती समाख्याता देवता मातृकाभिधा ।
हलः स्वराः समाख्याता बीजानि शक्तयः क्रमात् ॥८४॥
अव्यक्तं कीलकं चास्याश्चतुर्वर्गाप्तये नृणाम् ।
अक्लीबह्रस्वदीर्घान्तर्गतैः षड्वर्गकैः क्रमात् ॥८५॥
अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेन्मन्त्रैः सजातिभिः ।
अस्त्रं च तलयोर्न्यस्येत् कुर्यात् तालत्रयादिकम् ॥८६
दिशस्तेनैव बध्नीयाच्छोटिकाभिः समाहितः ।
हृदयादिषु विन्यस्येदङ्गमन्त्रांस्तु जातिभिः ॥८७॥
हृदयाय नमो ब्रूयाच्छिरसे वह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ॥८८॥
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् ।
जातयः षट्क्रमादेताः षडङ्गेषु नियोजयेत् ॥८९॥
हृदयायेति शब्देन हृत्स्थो देवः सविग्रहः ।
नुद्यते नमसा चैव ज्ञानं तद्हृदयं परम् ॥९०॥
शिरः शब्दो देवताया उत्कृष्टत्वाभिधायकः ।
स्वाहेति विषयः सर्वो देवतायां समर्पितः ॥९१॥
शिखा ज्योतिः स्वरूपं च वषडपि तदुच्यते ।
देवस्य व्यापकत्वं वै कवचेनाभिधीयते ॥९२॥
हुमपि व्यापकं तेजो देवतायाः प्रकाश्यते ।
नेत्रशब्देन देवस्य स्ववेद्यत्वं प्रकाश्यते ॥९३॥
वौषडपि तदेवोक्तमस्त्रशब्देन वारणम् ।
अनिष्टस्य फलस्येदं दाहकं तेज उच्यते ॥९४॥
ज्ञात्वैवमङ्गमन्त्रार्थमङ्गन्यासं करोति यः ।
करप्रचेयास्तस्यार्थाः पूज्यन्ते त्रिदशैरपि ॥९५॥
अथान्तर्मातृकान्यासः प्रोच्यते नृपसत्तम ।
आधारे लिङ्गनाभौ च हृत्कण्ठे हि तथा भ्रुवोः ॥९६॥

वादिसान्तान्न्यसेदादौ वादिलान्तान्न्यसेत्ततः ।
कादिफान्तांस्तथा न्यस्य कादिठान्तांस्तथैव च ॥९७॥
अकारादिस्वरान् कण्ठे हक्षौ भ्रूमध्यके न्यसेत् ।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यात्वा वै वेदमातरम् ॥९८॥
पञ्चोपचारमार्गेण पूजयित्वाऽतिभक्तितः ।
मानसैरुपचारैश्च स्थिरबुद्धया च साधकः ॥९९॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये बाष्पान्वये प्रातःकृत्यादिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

## अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

**वेदगर्भ उवाच–**

अजपाराधनं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् ।
येन विज्ञानमात्रेण मुक्तः संसारबन्धनात् ॥ १ ॥
विचरेन्नात्र सन्देहो राजन् गुरुमुखात् क्रमात् ।
अज्ञानान्न विजानन्ति सर्वाङ्गं सर्वशक्तिकम् ॥ २ ॥
स्वात्मानं ये न जानन्ति ज्ञेयास्ते चात्मघातकाः ।
ऋषिर्हंसोऽथ गायत्री छन्दो हंसपराख्यकः ॥ ३ ॥
देवताऽहं तथा बीजं सः शक्तिः सोऽहमित्यथ ।
कीलकं विनियोगोऽत्र चतुर्वर्गाप्तये तथा ॥ ४ ॥
हसषड्दीर्घयुक्तेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ।
बीजेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेद्धंसं प्रसन्नधीः ॥ ५ ॥
अग्नीषोमगरुद्वयं प्रणवकं बिन्दुस्त्रिनेत्रोज्ज्वलं
भास्वद्रुद्रमुखं शिवाङ्घ्रियुगलं पार्श्वस्थसूर्यानिलम् ।
उद्यत्सूर्यसहस्रकोटिसदृशं हंसं जगद्व्यापिनं
शब्दं ब्रह्ममयं हृदम्बुजकुटीनीडे सदा संस्मरे [त्] ॥६॥
आधारे मतिसंयुतं गणपतिं षट्पत्रके गीर्युतं
ब्रह्माणं मणिपूरके हरिरमायुक्तं स्मरे [द्] द्वादशे ।
पार्वत्या सह रुद्रमीश्वरमनोन्मन्या युतं षोडशे
द्वे पत्रे तु परा सदाशिवयुतं मूर्ध्न्यम्भुजे श्रीगुरुम् ॥७॥
चिच्छक्त्या सह सर्वदा विमलधीर्ध्यायन् जपन्नर्चयन्
सम्प्राप्नोति परां सुसिद्धिमतुलां वेदान्तविज्ञानदाम् ।
ब्रह्माद्यैरपि सेवितां शिवयुतामानन्दकन्दाभिधां
विद्युत्पुञ्जसमप्रभां मुनिजनैराराधितां तां शिवाम् ॥८॥

षट्शतं तु गणेशाय षट्सहस्त्रं प्रजापतेः ।
षट्सहस्त्रं गदापाणेः षट्सहस्त्रं पिनाकिने ॥९॥
ईश्वरस्य सहस्त्रं तु सहस्त्रं परमात्मने ।
सहस्त्रं गुरवे दद्यादजपाविनियोगतः १०॥
हंसो गणेशो विधिरत्र हंसो हंसो हरिश्चैव हरश्च हंसः ।
जीवोऽपि हंसः परमात्महंसो हंसो गुरुश्चैव तथाह्यहं सः ॥११॥
नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।
आचार्यजागेश्वरपादुकाभ्यो नमोऽस्तु लक्ष्मीपतिपादुकाभ्यः ॥१२॥

इति नत्वा ततो दिव्यैर्मानसैरुपचारकैः ।
यजेद् देवान् जपेन्मन्त्रान् यजेदग्निमनन्यधीः ॥१३॥
ततो विशेषकल्पोक्तन्यासानन्यान् समाचरेत् ।
यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं नित्यं जपेत् सुधीः ॥१४॥
स याति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
यथा हि वैष्णवे तन्त्रे तत्त्वन्यासं विदुर्बुधाः ॥१५॥

इति कृतेऽधिकृतो भवति ध्रुवं सकलदैवतमन्त्रजपादिषु ।
पवनसंयमनं त्वमुनाचरेद्यमिह जप्तुमसौ मनुमिच्छति ॥ १६॥

अथवा साधकः कुर्यात् प्रणवेनाशु संयमम् ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च कर्तव्यो लौकिकेनाशु संयमः ॥१७॥
न वैदिकं जपेच्छूद्रः स्त्रियश्चैव कदाचन ।
एतदङ्घ्रिजजातीनां जानीहि नृपसत्तम ॥१७॥
यथाऽधिकारः श्रौतेयो योषितां कर्मसु स्मृतः ।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणि ब्रह्मवादिनीम् ॥१९॥
प्राणायामानतः कुर्यात् तत्प्रकारोऽधुनोच्यते ।
अतस्त्रयात्मक [:] प्रोक्तः पूरकुम्भकरेचकैः ॥२०॥

बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको हि सः ।
सम्पूर्णकुम्भवद् वायोर्धारणं कुम्भको मतः ।
बहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचको मतः ॥२१॥
इडया कर्षयेद् वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ।
धारयेत् पूरितं मन्त्री चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥२२॥
सुषुम्णामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मानतः शनैः ।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेन्नृपसत्तम ॥२३॥
येनैव संत्यजेत्तेन पूरयेद्धारयेत्ततः ।

रेचयेच्च ततोऽन्येन शनरेवं पुनः पुनः ॥२४॥
युक्तं युक्तं पिबेद् वायुं युक्तं युक्तं च धारयेत् ।
युक्तं युक्तं त्यजेदेनमेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२५॥
यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्धार्यः शनैः शनैः ।
तथैव लभते वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥२६॥
प्राणायामेन युक्तेन सर्वपापक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ॥२७॥
हिक्का श्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदना ।
भवन्ति विविधा रोगाः प्राणायामव्यतिक्रमात् ॥२८॥
ततः शास्त्रोक्तमार्गेण प्राणायामान्समाचरेत् ।
त्रिषड्द्वादशवारं वा पुरतः परतो जपात् ॥२९॥
ज्ञेयं द्विजातिवर्णानां प्राणायामक्रमं शुभम् ॥३०॥
शुचिः प्राणायामान् प्रणवसहितान् षोडश वशी
प्रभाते सायं च प्रतिदिवसमेवं वितनुते ।
द्विजो यस्तं भ्रूणप्रहरणकृतांहोऽभिकलितं
पुनन्ते तं मासादिह दुरिततूलौघदहनाः ॥३१॥
त्रायन्त्यमी षड्भिरपीह मासैर्जन्मान्तरोपार्जितपापपुञ्जान् ।
संवत्सराद् ब्रह्मपदं तदेकं प्रकाशयत्येव यदच्युताख्यम् ॥३२॥
प्राणायामान् विधायेत्थं योगपीठं स्वके तनौ ।
न्यसेदाधारशक्ति च प्रकृतिं कमठं तथा ॥३३॥
शेषं धरां सुधासिन्धुं रत्नद्वीप मनोरमम् ।
माणेयं मण्डपं दिव्यं कल्पवृक्षांश्च वेदिकाम् ॥३४॥
रत्नसिंहासनं न्यस्येदेतद्हृदयपङ्कजे ।
अंसोरुयुग्मयोश्चैव प्रादक्षिण्येन साधकः ॥३५॥
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं न्यस्य च क्रमात् ।
मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्वधर्मादीन् प्रकल्पयेत् ॥३६॥
रक्तश्यामहरिद्रेन्द्रनीलवर्णविराजितान् ।
वृषकेसरिभूतेभरूपान् धर्माधिकान्न्यसेत् ॥३७॥
धर्माद्यधर्मादि च पादगात्रचतुष्टयं हृद्यथ शेषमब्जम् ।
सूर्येन्द्रवह्नीन् प्रणवांशयुक्तान् स्वाद्यक्षरैः सत्त्वरजस्तमांसि ॥३८॥
आत्मादित्रयमात्मबीजसहितं व्योमाग्निमायालवै-
र्ज्ञानात्मानमथाष्टदिक्षु परितो मध्ये च शक्तीर्नव ।

न्यस्येत्पीठमनुं च तत्र विधिवत् तत्कर्णिकामध्यगं
शम्भोः कल्पविधानबोधिततनुं सञ्चिन्तयेद्धाम तत् ॥३९॥

राजोवाच–

भगवा(व)न्न [व] शक्तीनां संज्ञां तासां वदस्व मे ।
केन क्रमेण ताः पूज्याः संशयं छिन्धि मेऽधुना ॥४०॥

रशि (ऋषि) रुवाच–

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलपदादिका ।
विकरिण्याह्वया प्रोक्ता बलाद्या विकरिण्यथ ॥४१॥
बलप्रमाथिनी पश्चात्सर्वभूतदमिन्यथ ।
मनोन्मनीति सम्प्रोक्ताः शैवपीठस्य शक्तयः ॥४२॥
पूर्वादिक्रमतः पूज्यास्तथाऽष्टदलकेसरे ।
ततो ह्युपास्यमत्रस्य न्यासानृष्यादिकांश्चरेत् ॥४३॥
जपतर्पणहोमार्चाः सिद्धमन्त्रकृता अपि ।
अङ्गन्यासादिभिर्हीना न दास्यन्ति फलान्यमूः ॥४४॥
ततो मन्त्रपुटैर्वर्णैः मातृकार्णैः सबिन्दुकैः ।
विन्यसेन्मन्त्रवित्सम्यक् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥४५॥
ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गस्य दोःपत्सन्ध्ययकेषु च ॥४६॥
पाश्व (र्श्वं) योः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसके ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः ॥४७॥
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान् यथाक्रमात् ।
ध्यानं कुर्यात् ततो विद्वान् यथाज्ञानं समाहितः ॥४८॥
ध्यानमात्मेष्टदेवस्य वेदनं मनसा मतम् ।
तदपि द्विगुणं (विधं) प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा ॥४९॥
यज्जीवब्रह्मणोरैक्यं सोऽहं स्यामिति वेदनम् ।
तदेव निर्गुणं ध्यानमिति वेदविदो विदुः ॥५०॥
आत्मना हृदयाम्भोजं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
प्रफुल्लं सोमसूर्याग्निमण्डलेन विराजितम् ॥५१॥
स्वीयेष्टदेवतां तत्र ध्यायेद् वेदोक्तमार्गतः ।
एवं यद्वेदनं तद्धि सगुणं ध्यानमुच्यते ॥५२॥
ध्यात्वा यजेच्चन्दनाद्यैर्मानसैर्भोजनान्तकैः ।
भोजनावसरे [illegible] स्वदेवं समाचरेत् ॥५३॥

मूलाधारगते कुण्डे देवताग्निसमुज्ज्वले ।
धर्माधर्मैर्धिते त्र्यस्त्रे मूलमन्त्रपुरःसरम् ॥५४॥
अमूं जुहोमि स्वाहेति प्रत्येकं जुहुयात् सुधीः ।
अहन्ताऽसत्यपैशुन्यकामक्रोधादिकं हविः ॥५५॥
मन एव स्रुवः प्रोक्तं सुषुम्णः स्रगुदीरिता ।
तदन्ते तन्मयो भूत्वा जपेदिच्छानुरूपतः ॥५६॥
तं जपं सर्वसम्पत्त्यै देवतायै निवेदयेत् ।
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥५७॥
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादेन शङ्कर ।
इत्युक्त्वा दक्षिणे पाणौ देवस्य च समर्पयेत् ॥५८॥
ततस्तु देवतारूपो भूत्वा तिष्ठेत् कियत्क्षणम् ।
इत्येवमान्तरं यागं कृत्वा बाह्यं प्रपूजयेत् ॥५९॥
आत्माग्रतश्चतुष्कोणं षडस्त्रं च त्रिकोणकम् ।
स (सं) मान्यार्ध्यंजलेनैव कृत्वाङ्गानि प्रपूजयेत् ॥६०॥
आग्नेयादिषु कोणेषु हृदाद्यङ्गचतुष्टयम् ।
नेत्रमध्ये दिक्षु चास्त्रं तस्मिन् मूलेन क्षालितम् ॥६१॥
त्रिपादिकां प्रतिष्ठाप्य पूजयेन्मनुनाऽमुना ।
मम (।) ग्निमण्डलायेति तथा दशकलात्मने ॥६२॥
नमोऽस्त्रं (स्त्र) क्षालितं चार्ध्यपात्रं स्थाप्य च पूजयेत् ।
अम[।]र्कमण्डलायेत्यमुना द्विषड् (ट्) कलात्मने ॥६३॥
नमः सुधामयैस्तोयैर्मूलान्ते मातृकां पठन् ।
विलोमां पूरयेत् तस्मिन् पूजयेन्मनुनाऽमुना ॥६४॥
सं सोममण्डलायेति अष्टयुग्मकलात्मने ।
नमोऽर्कमण्डलातीर्थमावाह्याङ्कुशमुद्रया ॥६५॥
तीर्थमन्त्रेण विधिवन्मन्त्रस्त्वत्रैव कथ्यते ।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ॥६६॥
नर्मदे सिन्धु कावेरी (रि) जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।
धेन्वाख्ययाऽमृतीकृत्य चिन्त्य तत्रेष्टदेवताम् ॥६७॥
अङ्गन्यासेन सकलीकृत्यास्त्रेण दिशो दश ।
कलयेन्नेत्रमन्त्रेण निरीक्ष्य शङ्खमुद्रया ॥६८॥
अवष्टभ्य तथोद्दीप्य मुद्रया योनिसंज्ञया ।
गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम् ॥६९॥
अष्टकृत्वो जपेन्मूलमाच्छाद्य मत्स्यमुद्रया ।
तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे कृत्वात्मानं त्रिवारतः ॥७०॥

आत्मतत्त्वात्मने नमो विद्यातत्त्वात्मने नमः ।
शिवतत्त्वात्मने नमः इत्येतैर्मनुभिस्त्रिभिः ॥७१॥
प्रोक्ष्य पुष्पादिकं चापि मण्डलं विधिवत्सुधीः ।
ततः सम्पूजयेद् देवं गन्धाद्यैर्मूलमुच्चरन् ॥७२॥
पञ्चकृत्वः पुनः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः ।
उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गके क्रमात् ॥७३॥
आदौ लिखेद् यन्त्रराजं तत्प्रकारमिहोच्यते ।
षट्कोणगर्भितं कुर्यादष्टपत्रं मनोहरम् ॥७४॥
चतुर्द्वारसमोपेतं चतुरस्रात्मविग्रहे ।
कामक्रोधादिनिःशेषमनोमालिन्ययन्त्रणात् ॥७५॥
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः ।
अष्टगन्धेन संलिख्य मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥७६॥
सौवर्णे राजते ताम्रे पीठे भूर्जे पटे भुवि ।
शालि(ल)ग्रामेऽथवा लिङ्गे मूर्ते वा संलिखेन्नृप ॥७७॥
बिना यन्त्रेण चेत्पूजा देवता न प्रसीदति ।
पीठन्यासविधानेन पीठं सम्पूज्य पूर्ववत् ॥७८॥
पञ्चोपचारमार्गेण भक्त्या चैव नृपोत्तम ।
पाद्यार्घ्याचमनार्थं च मधुपर्कार्थमप्युत ॥७९॥
पात्राण्याधारयुक्तानि स्वर्णादिरचितानि च ।
स्थापयेत्पुरतस्तानि पूरयेत्पूर्ववन्नृप ॥८०॥
पाद्ये श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रां (?) तां [ स् ] तथैव च ।
अर्घ्ये पुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ॥८१॥
गन्धदूर्वाङ्कुरैः प्रोक्तं ततश्चाचमनीयकम् ।
जातीफलं च कङ्कोलं लवङ्गं सजलं त्विदम् ॥८२॥
आज्यं दधिमधून्मिश्रं मधुपर्कः समीरितः ।
एकस्मिन्नथवा पात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ॥८३॥
सर्वोपचारवस्तूनामभावे भावयेद्धिया ।
एवमासाद्य पात्राणि तत्र पीठं निधाय च ॥८४॥
मूलेन मूर्ति संकल्प्य ध्यात्वा देवं यथोदितम् ।
आवाह्य पूजयेत्तस्यां परिवारगणैः सह ॥८५॥
शालग्रामे स्थावरे च नावाहनविसर्जने ।
खण्डिते स्फुटिते भ्रष्टे दग्धे मानविवर्जिते ॥८६॥

यागहीनेऽथवोच्छिष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ।
अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते ॥८७॥
दशस्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ।
इति सर्वगतः शम्भुः परिभाषां चकार ह ॥८८॥
खण्डितादिनिषिद्धां यत्प्रतिमां सर्वथा बुधः ।
विक्षिपेद् दारुजामग्नौ तथान्यामप्सु निक्षिपेत् ॥८९॥
एकाहपूजाविहतौ कुर्याद् द्विगुणमर्च्चनम् ।
द्विरात्रे तु महापूजां सम्प्रोक्षणमतः परम् ॥९०॥
मासादूर्ध्वमनेकाहपूजा यदि विहन्यते ।
प्रतिष्ठैवेष्यते कैश्चित् कैश्चित् सम्प्रोक्षणक्रमः ॥९१॥

इति श्रीमेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये मन्त्राराधनकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

## अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

**राजोवाच—**

प्रतिष्ठा कीदृशी ब्रह्मन् कीदृक् सम्प्रोक्षणं तथा ।
कथ्यतां कृपया मेऽत्र येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥१॥

**ऋषिरुवाच—**

अग्न्युत्तारणमन्त्रेण वैदिकेन समासतः ।
अथोच्चरेदश्मन्नूर्जमित्यादि वैदिकी (कीं) ऋचा [ म् ] ॥२॥
अनेन मन्त्रराजेन अग्न्युत्तारणमष्टधा ।
कृत्वाऽथ सप्तमृत्स्ना च स्नापयेद् भक्तितो नृपः ॥३॥
अश्वस्थानाद् गजस्थानाद् वल्मीकात् सङ्गमाद् ह्रदात् ।
गोशृङ्गाच्चाचराच्चैव मृत्तिकाः सप्त कीर्तिताः ॥५॥
ततः सप्तकषायैश्च अभिषेकं समाचरेत् ।
आम्रो जम्बूस्तथा धात्री प्लक्षश्चैव चतुर्थकः ॥५॥
अश्वत्थोदुम्बरवटाः कषायाः सप्त कीर्त्तिताः ।
पल्लवैः पञ्चकैश्चैव अभिषेकं ततश्चरेद् ॥६॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोध—पल्लवाः ।
पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥७॥
ततः पञ्चामृतैश्चैव स्नपनं विधिना चरेत् ।
पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं य (त) था ॥८॥
गायत्र्या शैवया चैव त्रिधा समभिमन्त्र्य च ।
हृदयान्निर्गतं तेजो दीपाद् दीपान्तरं यथा ॥९॥
सुषुम्णावर्त्मना दे(चै)वं नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ।

करस्थां मातृकां भोजे (?) नित्यानन्दगुणोदयम् ॥१०॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य साङ्गं सम्बोध्य दैवतम् ।
एह्येहीति च मद्धस्ते पादुकाभ्यां दयानिधे ॥११॥
आसनं कल्पयामीदमास्यतां पद्ममुद्रया ।
कल्पिते चासने विद्वानावाहनाख्यमुद्रया ॥१२॥
आवाह्य स्थापयेत् सम्यक् संस्थापनाख्यमुद्रया ।
पश्चात्तं सन्निधीकृत्य सन्निधापनमुद्रया ॥१३॥
सन्निरुध्य निरोधिन्या सम्मुखीकृत्य मुद्रया ।
सम्मुखीकरणं पश्चात् सकलीकृत्य साधकः ॥१४॥
सकलीकरणात् पश्चादवगुण्ठनमुद्रया ।
अवगुण्ठ्यामृतीकृत्यामृतीकरणमुद्रया ॥१५॥
मुद्रया परमीकर्ण्या परमीकृत्य साधकः ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणान् संस्थाप्य वैदिकः ॥१६॥
तदस्तु मित्रावरुणा इति ऋग्वेदमन्त्रतः ।
मनोजूतिरिति यजुः वाङ्मनःप्राणसाम च ॥१७॥
प्राणागा (ना) हुस··· तथाथर्वैश्चक्षुरुत्पादयेत्ततः ।
चक्षुषः पितेति ऋचा तथालिङ्गाभिमर्शनम् ॥१८॥
अथेशानात्समारभ्य क्रमतः सर्वराशयः ।
सप्तधान्यैस्तु सम्पूर्य देवस्य परितः सुधीः ॥१९॥
उदग्भागे स्वशक्त्या च राशिः कार्यस्त्रिधातुना ।
तासु दिक्पतयः पूज्यास्तथा सर्वोपचारकै (:) ॥२०॥
मध्ये देवं च सम्पूज्य षोडशैरुपचारकैः ।
ततो होमविधानेन तथाष्टोत्तरशताहुतीः ॥२१॥
मूलेन सुधिया राजन् ततः पूर्णाहुतिं चरेत् ।
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्वा गुरुं सम्पूज्य भक्तितः ॥२२॥
वस्त्रालंकारयानाद्यैर्ब्राह्मणानपि पूजयेत् ।
दक्षिणाभिस्तथान्नैश्च तोषयेद् देवताधिया ॥२३॥
यवहोमेन चायुष्यं घृतेन सर्वसम्पदः ।
सर्वदुःखक्षयार्थं च मधुनाक्तैः सतन्दुलैः ॥२४॥
तिलैर्वा यवसम्मिश्रैर्महासौभाग्यमाप्नुयात् ।
महोत्सवं ततः कुर्याद् दिनत्रयमनन्यधीः ॥२५॥
एवं यः कुरुते मूर्तिप्रतिष्ठां विधिना ततः ।
त्रैलोक्यं पूजितं तेन सफलं तस्य जीवितम् ॥२६॥

अथ सम्प्रोक्षणं वक्ष्ये मूर्तिसंशुद्धिहेतवे ।
सम्प्रोक्षणं तु देवस्य देवमुद्वास्य पूर्ववत् ॥२७॥
उत्तिष्ठ देवदेवेश पुनरागमनाय च ।
प्रसीद श्रीमहादेव एकलिङ्ग जगत्प्रभो ॥२८॥
इत्युद्वास्य च मूलेन संहरिण्या च मुद्रया ।
पञ्चपञ्चक्रमेणैव स्नापयित्वा मृदम्भसा ॥२९॥
गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्विशोध्य च ।
प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ॥३०॥
समुष्यं सकुशं पाणिं न्यस्य देवस्य मस्तके ।
पञ्चवारं जपेन्मूलं चाष्टोत्तरशतावधि ॥३१॥
ततो मूलेन मूर्द्धादि पीठान्तं संस्पृशेदपि ।
तत्वन्यासं लिपिन्यासं मन्त्रन्यासं च विन्यसेत् ॥३२॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्रतिष्ठापनमाचरेत् ।
पूजां च महतीं कुर्यात् स्वतन्त्रोक्तां यथाविधि ॥३३॥
यागहीनादिषु प्रायः सम्प्रोक्षणविधिः स्मृतः ।
खण्डितादिनिषिद्धेषु प्रतिष्ठा पूर्वमीरिता ॥३५॥

**राजोवाच–**

द्वि रष्टैरुपचारैस्तु पूजयेदिति सूचितम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां मुनिसत्तम ॥३५॥

**वेदगर्भ उवाच–**

अथोपचारान् कुर्वीत मन्त्रवित् स्वागतादिकान् ।
स्वागतं कुशलप्रश्नं कृत्वा पुष्पाञ्जलिं ततः ॥३६॥
मूलान्ते सायुधायादि (?) सर्वात्मन् भगवन् पदे ।
ङे (?) तं चैवेष्टदेवस्य नाम तादृगुदीरयेत् ॥३७॥
ततः पाद्यं पदे ब्रूयात् पर्यन्ते कल्पयामि च ।
उक्त्वा तदन्ते हृदयं पाद्यमन्त्रोऽयमीरितः ॥३८॥
पाद्यं पादाम्बुजे दद्यादनेन मनुना ततः ।
उपचारमिमं तुभ्यं ददामि परमेश्वर ॥३९॥
मूलान्ते सायुधायादि शक्त्यन्तमनुनाऽमुना ।
दद्यात्पुष्पाञ्जलिं तस्मै पाद्यान्ते साधकोत्तमः ॥४०॥
पाद्यस्थाने त्वर्घ्यशब्दं नतिस्थाने द्विठं ? वदेत् ।
तदा मन्त्री तदन्ते च शिरस्यर्घ्यं विनिर्दिशेत् ॥४१॥
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा पूर्वोक्तमनुना सुधीः ।

अर्घ्यशब्दं परित्यज्य राजन्नाचमनं वदेत् ॥४२॥
स्वाहास्थाने स्वधां ब्रूयादनेनाचमनं मुखे।
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा त्यजेदाचमनं पदे ॥४३॥
मधुपर्कं प्रयुञ्जीत तद् दद्याद् वदने बुधः।
पुष्पाञ्जलिं विधायाथ दद्यादाचमनं पुनः ॥४४॥
तेनैव मनुना तत्र दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः।
पादुके परिधायाथ भगवन् रत्ननिर्मिते ॥४५॥
स्नानमण्डपमायाहि स्नानाय त्वीश दिग्गतम्।
सम्प्रार्थ्य च प्रयत्नेन स्नानवस्त्रं सुशोभनम् ॥४६॥
अभ्यङ्गोद्वर्तनं कुर्यान्महाराजोपचारवत्।
क्षीरदध्याज्यमधुभिः खण्डेनोष्णोदकेन च ॥४७॥
गन्धाद्भिः कारयेत्स्नानं दद्यादाचमनीयकम्।
केशाङ्गमार्जनं वस्त्रं दत्वा सूक्ष्मे दुकूलके ॥४८॥
यज्ञसूत्रं ततो दद्याद् दद्यादाचमनं पुनः।
पादुके परिधायाथ भगवन् रत्ननिर्मिते ॥४९॥
आगच्छ निर्मितं याम्यमलङ्काराय मण्डपम्।
प्रार्थनापूर्वकं चेष्टदेवतां मण्डपं नयेत् ॥५०॥
संस्थाप्य मण्डपे याम्ये दिव्यमाल्यानुलेपनैः।
अन्यैराभरणैर्दिव्यैर्नानारत्नसमन्वितैः ॥५१॥
अलङ्कृत्य ततश्छत्रचामरादर्शपूर्वकम्।
पादुकायुगमारुह्य पञ्चपाद्यपुरःसरम् ॥५२॥
यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह।
प्रार्थनापूर्वकं चेत्थं योगपीठं नयेत्सुधीः ॥५३॥
तत्रोपवेश्य गन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत्।
यष्टुरभिमुखो देवो देवाभिमुखतो दिशा ॥५४॥
प्राच्यादिहरितो ज्ञेया पूजाहोमादिकर्मणि।
न्यासक्रमेण मनुना पुष्टितैर्मातृकाक्षरैः।
अभ्यर्च्य देवं गन्धाद्यैरङ्गादीन् पुनरर्चयेत् ॥५५॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य सम्बोध्य स्वेष्टदेवताम्।
नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ॥५६॥
अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्।
अमृतानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥५७॥
चन्दनं मलयोत्पन्नमनाघ्रातं सुशीतलम्।
कर्पूरागरुकस्तूरीहिमाम्बुक्षोदितं शुभम् ॥५८॥

सकाश्मीरं सवैल्वं तद् यक्षकर्द्दममुत्तमम् ।
परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ॥५९॥
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ।
अनन्यार्पितपूतं चाच्छिद्रं पूज्यं नवं शुभम् ॥६०॥
गुणवधे(द्धे)मसम्भूतं नानागन्धमनोहरम् ।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृहाण परमेश्वर ! ॥६१॥
साराङ्गारैर्घृतविलुलितैर्जर्जरैः संविकीर्णैः
कर्पूराद्यैर्घनपरिमलैर्धूपमापाद्य मन्त्री ।
दद्यान्नीचैरसुरमथनायापरेणाथ दोर्म्णा (ष्णा) ।
घण्टां गन्धाक्षतकुसुमकैरर्चितां वादयन् सः ॥६२॥
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥६३॥
इत्थं धूपं प्रकुर्वीत ताम्रकांस्यादिनिर्मिते ।
भाजने द्विपदे भुग्ननाले पद्माकृतौ शुभे ॥६४॥
साराङ्गारविनिक्षिप्तैर्गुग्गुलागरुवृक्षजैः ।
निर्यासादुत्थितैर्गन्धद्रव्यैरथोदितैः ॥६५॥
अनन्यार्पितधूपोऽयं शस्यतेऽर्चनकर्मणि ।
वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा ॥६६॥
आरोप्य दर्शयेद् दीपानुच्चैः सौरभशालिनः ।
स्वप्रकाशो महान् दीपः सर्वतस्तिमिरापहः ॥६७॥
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
दीपोऽपि धूपवर्त्यादिपद्माकारविनिर्मिते ॥६८॥
प्रतिपत्रं प्रदीपश्च वर्त्या गव्यघृताक्तया ।
ततो नैवेद्यताम्बूलमुखवासादि चार्प्य च ॥६९॥
अन्यानिवेदिता पूजा काल एव प्रशस्यते ।
अभ्यर्च्यैवं च तस्याज्ञां गृहीत्वाऽङ्गानि पूजयेत् ॥७०॥
प्रायः प्रथमतस्तेषां क्वचिदेवान्यथा भवेत् ।
देवतायाश्चाभिमुख्यमारभ्याङ्घ्र्यादि कल्पयेत् ॥७१॥
रुद्रानेकादशानर्चेत् क्रमात् पूर्वादितः सुधीः ।
अध ऊर्ध्वं तथा मध्ये राजन् सम्पूज्य भक्तितः ॥७२॥
सर्वान् कामानवाप्नोति तेषां नामानि च ब्रुवे ।
अघोरः पशुपः शर्वो विरूपो विश्वरूपकः ॥७३॥
त्र्यम्बकश्च कपर्द्दी च भैरवः शूलपाणिकः ।
ईशानोऽथ महेशश्च देवस्य परितो नृप ॥७४॥

अभ्यर्च्य चार्घ्यंतो येन पूजां देवे समर्प्य तु ।
पुष्पाञ्जलिं समर्प्याथ सद्योजातमथार्चयेत् ॥७५॥
शिवस्य पश्चिमे वक्त्रे भावयन् ब्रह्मदैवतम् ।
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यादिमन्त्रेण पूज्य च ॥७६॥

मन्त्रं जपेत् ततो राजन् ऋष्यादिस्मृतिपूर्वकम् ।
ऋषिः सद्योऽस्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते ॥७७॥
ब्रह्मा च देवता प्रोक्ता लं बीजं श्वेतवर्णकम् ।
हंसारूढः सृष्टिकर्त्ता सृष्ट्यर्थे विनियोजनम् ॥७८॥

इति ज्ञात्वा ततस्तस्य कलाः सम्पूजयेत् क्रमात् ।
ऋद्धिः सिद्धिर्धृतिर्लक्ष्मीर्मेधा कान्तिः स्तुतिः प्रभा ॥७९॥
सद्योजातकला ह्येता अष्टौ च परिकीर्तिताः ।
श्वेताक्षतैः श्वेतपुष्पैः पूजयेद्धंसवाहनम् ॥८०॥

प्रालेयामलमिन्दुकुन्दधवलं गोक्षीरफेनप्रभं
भस्माभ्यङ्गमनङ्गदेहदमनं ज्वालावलीलोचनम् ।
ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणैः स्तुतिपरैरभ्यर्चितं योगिभि-
र्वन्देऽहं सकलं कलङ्करहितं स्थाणोर्मुखं पश्चिमम् ॥८१॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा वामदेवं ततो ( थो ) त्तरे ।
वामदेवस्य मन्त्रेण वामदेवाय चेति च ॥८२॥
मन्त्रस्य वामदेवस्य वामदेव ऋषिः स्मृतः ।
जगती छन्द इत्यत्र देवो विष्णुः सनातनः ॥८३॥
नं बीजं गौरकाश्मीरवर्णमुक्तं मनीषिभिः ।
आपस्तत्त्वं स्थितिविधौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥८४॥
गन्धादिना समभ्यर्च्य कलाः सम्पूजयेत्ततः ।
रजसी च तथा रक्षा रती (तिः) पाली च कामिका ॥८५॥
संजीविनी प्रिया बुद्धिः क्रियाधात्री च भ्रामरी ।
मोहिनी हि जरा चैव पूजयेत् पुरतः क्रमात् ॥८६॥
वामदेवकला ह्येतास्त्रयोदश वरानने ।
तुलसीशतपत्रैश्च यजेद् गरुडवाहनम् ॥८७॥
गौरं कुङ्कुमपिञ्जरं सुतिलकं व्यापाण्डुगण्डस्थलं
भ्रूविक्षेपकटाक्षवीक्षणलसत्संसक्तकर्णोत्पलम् ।
याजुर्वेदमयं सदा प्रहसितं नीलालकालंकृतं
वामं सिद्धसुरासुरेन्द्रनमितं वक्त्रं हरस्योत्तरम् ॥८८॥

शिवस्य दक्षिणे वक्त्रे रुद्रं तं पूजयेत् ततः।
अघोरेति च मन्त्रस्य अघोर ऋषिरीरितः ॥८९॥
छन्दोऽनुष्टुब्देवताऽत्र रुद्रो बीजं तु रेफकम्।
नीलवर्णो वृषारूढः संहारे विनियोजनम् ॥९०॥

अघोरस्य कलाः पूज्यास्तामसी मोहमी (नी) क्षया।
तृष्णा व्याघ्री मृता चापि क्षुधा चैव तृषा तथा ॥९१॥
अघोरस्य कला ह्येता अष्टौ च परिकीर्तिताः।
नीलोत्पलैः करवीरैः पूजयेद् वृषवाहनम् ॥९२॥

कालाभ्रभ्रमराञ्जनाचलनिभं व्यावर्तपिङ्गेक्षणं
भालेन्दुद्युतिकोटिदंष्ट्रयुगलं प्रोद्भासिबिम्बाधरम्।
सर्पोत्तुङ्गफलासहस्त्रमणिभिः कापालमालाधरं
घोरं दक्षिणमीश्वरस्य वदनं भ्रूभङ्गरौद्रं च यत् ॥९३॥

ततः पूर्वमुखं शम्भोः सूर्यरूपं महाद्युतिम्।
तत्पुरुषस्य मन्त्रस्य पुरुषो (ष) ऋषिरीरितः ॥९४॥
गायत्री छन्द आख्यातं देवता सूर्य उच्यते।
यं बीजं पीतवर्णश्च रथारूढो निगद्यते ॥९५॥

संसृष्टिस्थितिसंहारपिधानकृतरूपिणे।
नत्वा कला यजेत् पश्चात्पूर्वादिक्रमतः सुधीः ॥९६॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिस्तथैव च।
तत्पुरुषकला ह्येताश्चतस्रः परिकीर्तिताः ॥९७॥

दूर्वाङ्कुरैरर्कपुष्पैः पूजयेद्रथवाहनम्।
आयुष्यं वर्द्धयेत्तस्य ध्यायेत्सवार्थसिद्धये ॥९८॥
संवर्त्ताग्नितडित्प्रतप्तकनकं संस्पर्द्धितेजोमयं
गम्भीरस्वरसामवेदमुदितं प्रोद्भासिताम्राधरम्।
गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गपिङ्गलजटाभालेन्दुनेत्रत्रयं
वक्त्रं तत्पुरुषं सुरेन्द्रनमितं पूर्वं मुखं शूलिनः ॥९९॥

अथोर्ध्वमुखमीशानमन्त्रस्य ऋषिरीरितः।
ईशानस्त्रिष्टुबित्युक्तं देवता श्रीसदाशिवः ॥१००
हं बीजं हि सशक्तिश्च प्रणवः कीलकं परम्।
जम्बूपक्वफलाभासो विनियोगार्थसिद्धये ॥१०१॥

तत ईशानमन्त्रेण तमीशानं प्रपूज्य च।
ततः कला यजेत्तस्य परितः पूर्वतः क्रमात् ॥१०२॥

शशिनी चाङ्गदा रिष्टा मरीचिज्ञानदा तथा ।
ईशानस्य कलाः पञ्च निरञ्जनपदानुगाः ॥१०३॥
हंसो हंसेति यो ब्रूयात् हंसो नाम सदाशिवः ।
बिल्वैः कनकपुष्पैश्च पूजयेत् सिंहपीठगे ॥१०४॥
व्यक्ताव्यक्तगुणोत्तरं च विमलं षट्त्रिंशतत्त्वात्मकं
वेदाद्यक्षरमन्त्रशास्त्रनिलयं ध्येयं सदा योगिभिः ।
सर्वज्ञत्वमतीश्वरत्वमचलं सूक्ष्मातिसूक्ष्मं परं
शान्तं पञ्चममीश्वरस्य वदनं खंव्यापि तेजोमयम् ॥१०५॥
इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा अर्घ्योदकमनन्यधीः ।
देवस्य दक्षिणे हस्ते सपर्यां तां निवेदयेत् ॥१०६॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिंगमाहात्म्ये वाष्पान्वये पञ्चवक्त्रपूजाकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

## अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

ततः षट्कोणमध्ये तु षडङ्गावरणं यजेत् ।
केसरेष्वग्निकोणादि हृदयादीनि पूजयेत् ॥१॥
नेत्रमध्ये दिक्षु चास्त्रमङ्गमन्त्रैर्नमोऽन्तकैः ।
तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ॥२॥
वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ।
(धा) तव्या विदुषाऽनेन क्रमेणैवाङ्गदेवताः ॥३॥
क्षालयित्वा ततः पाणिमादाय सुमनोऽञ्जलिम् ।
अभि (भी) ष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ॥४॥
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।
इत्युच्चार्य क्षिपेत्पुष्पं देवतामूर्ध्नि साधकः ॥५॥
प्रत्यावृत्ति बुधः कुर्यादित्थमावरणार्चनम् ।
ततः पूर्वादिपत्रस्थकेसरेषु क्रमेण च ॥६॥
उमा देवी ततः पूज्या पूज्या वै शंकरप्रिया ।
गौरी च पार्वती काली कोटरी विश्वधारिणी ॥७॥
अष्टमी पार्वती ज्ञेया सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ।
अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सल (ले) ॥८॥
भक्त्या समर्पये तुल्यं द्वितीयावरणार्चनम् ।
पत्रमध्ये गणपतिं क्षेत्रपालं कुमारकम् ॥९॥

स्वामिपूर्वं पुष्पदन्तं तथैव च कपर्द्दिनम् ।
नन्दिकेशं महाकालं भृंगिरीट (टि) मिति क्रमात् ॥१०॥
पूर्वादितः समभ्यर्च्य सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ।
आदित्यं पूर्वतोऽभ्यर्च्य सोममग्नौ च भूमिजम् ॥११॥
दक्षिणे निर्ह्(ऋ)ते सौम्यं पश्चिमे च बृहस्पतिम् ।
वायव्ये शुक्रमभ्यर्च्य शनिमुत्तरतो यजेत् ॥१२॥
ईशान्यां राहुकेतुभ्यां सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ।
नन्दिनं च महाकालं भृंगिरीटं (टिं) वृषं तथा ॥१३॥
स्कन्दं कपर्दिनं चैव ऋषिदेवं तथा पुनः ।
महादेवं ततोऽभ्यर्च्य सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ॥१४॥
पूर्वे हेतुकपीठं तु आग्नेय्यां त्रिपुरान्तकम् ।
वेतालं दक्षिणे भागे नि(ऋं)र्हृतावासपत्रकम् ॥१५॥
पश्चिमे वारुणं पीठं वायव्ये च कुलान्तकम् ।
उत्तरे यक्षपीठं तु ईशान्यां भीमपीठकम् ॥१६॥
इति क्रमेण सम्पूज्य सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ।
चतुरस्रत्रिरेखायां इन्द्रादीनर्चयेत् क्रमात् ॥१७॥
इन्द्रं वै पूर्वदिग्भागे अग्निमाग्नेयदिश्यथ ।
दक्षिणे यमराजानं नैर्हृं(ऋं)तौ निर्हृं(ऋं)तिं यजेत् ॥१८॥
पश्चिमे वरुणं वायौ वायुमुत्तरतो यजेत् ।
कुबेरमीशदिग्भागे ईशानं सम्यगर्चयेत् ॥१९॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माऽप्य (णम) धोऽनन्तमिति राजन् ततोऽर्चयेत् ।
जातु तोयपयोमध्येऽनन्तं पूर्वेशयोस्तु कम् ॥२०॥
इति सम्यगथाभ्यर्च्य सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ।
इन्द्रादिपुरतः पश्चात् तेषामस्त्राणि पूजयेत् ॥२१॥
वज्रं शक्ति तथा दण्डं खड्गं पाशमथाङ्कुशम् ।
ततः सम्यगथाभ्यर्चेद् गदां शूलं कमण्डलुम् ॥२२॥
चक्रं सम्पूज्य राजेन्द्र सपर्यां प्राग्वदर्पयेत् ।
वाहनानि यजेत् पश्चात् तेषामग्रत एव हि ॥२३॥
ऐरावतं तथा मेषं महिषं प्रेतमेव च ।
मकरं च मृगाश्वं हि वृषभं हंसकूर्मकम् ॥२४॥
इति सम्पूज्य सम्प्राथ्यं कुसुमाञ्जलिमर्पयेत् ।
अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ॥२५॥

भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम् ।
इत्यावरणपूजां तु कृत्वा प्रक्षाल्य हस्तकौ ॥२६॥
धूपपात्रस्थितांगारे क्षिप्त्वागरुशिरा(ला)दिकम् ।
पात्रमस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य हृदा पुष्पं समर्पयेत् ॥२७॥
संस्पृश्य वामतर्जन्या मूलं श्लोकं च सम्पठेत् ।
वनस्पतिरसोपेतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ॥२८॥
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
सांगाय सपरीत्यन्ते वाराय डेंत देवता (?) ॥२९॥
धूपं समर्पयामीति नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरन् ।
अर्घ्याम्बु प्रक्षिपेद् भूमौ ततो घण्टां प्रपूजयेत् ॥३०॥
गजध्वनिमन्त्रमा(म) तः स्वाहान्तञ्च दशाक्षरः(रम्) ।
वादयन् वामहस्ते तां कीर्तयन् देवतागणान् ॥३१॥
धूपयेद (द्द) क्षहस्तेन देवतां नाभिदेशतः ।
दीपदानं ततः कुर्यात् पूर्वमेव मयेरितम् ॥३२॥
स्वर्णादिभाजने साज्यशर्करं पयसादिकम् ।
परिवेष्य यथाशक्ति प्रोक्षेत्कैर (?) स्त्रमन्त्रितः ॥३३॥
अस्त्रेण पात्रं परितः परिषिच्य यथाविधि ।
चक्रमुद्रामथारच्य प्रोक्षेत्तैर्मन्त्रितैर्जलैः ॥३४॥
वायुबीजेनार्कवारं ततस्तज्जातमारुतैः ।
नैवेद्यदोषं संशोष्य (ध्य) चित (न्त) येद् दक्षिणे करे ॥३५॥
अग्निबीजं तस्य पृष्ठे वामं करतलं न्यसेत् ।
तं दर्शयित्वा नैवेद्यं तदुत्थेनाग्निनाखिलम् ॥३६॥
नैवेद्यदोषं सन्दह्य ध्यायेद् वामकरेऽमृतम् ।
तत्पृष्ठे दक्षिणं हस्तं कृत्वा तत्र प्रदर्शयेत् ॥३७॥
मुद्रां च सौरभीं पश्चाद् गन्धपुष्पैस्तमर्चयेत् ।
दक्षहस्ते जलं धृत्वा मूलं श्लोकं च सम्पठेत् ॥३८॥
साङ्गायादि पदं प्रोक्त्वा (च्य) नैवेद्यपदमुच्चरेत् ।
पर्यन्ते कल्पयामीति चुलुकोदकमर्पयेत् ॥३९॥
अथामृतोपस्तरणमसीत्यादि नयेत्ततः ।
ग्रासमुद्रां वामदोष्णा (षा) विकचोत्पलसन्निभाम् ॥४०॥
प्रदर्शयेद्दक्षिणेन प्राणादीनि प्रदर्शयेत् ।
प्राणाग्निहोत्रे मू(म)त्रास्तांस्तु वक्ष्यामि भूपते ॥४१॥

स्पृशेत्कनिष्ठोपकनिष्ठके द्वे स्वाङ्गुष्ठमूर्ध्ना प्रथमे तु मुद्रा ।
तथाऽपरा तर्जनिमध्यमे स्याद् अनामिका मध्यमिके तृतीया ॥४२॥
अनामिका तर्जनि मध्यमा स्यात् तद्वच्चतुर्थी सकनिष्ठिकास्ताः ।
स्यात्पञ्चमी तद्वदिति प्रदिष्टा प्राणादिमुद्रा निजमन्त्रयुक्ताः ॥४३॥

प्राणापानव्यानोदानसमानास्तारपूर्विकाः ।
चतुर्थ्यग्निवधूयुक्ताः प्राणाद्याः कथिता अमी ॥४४॥

ततो निवेद्य मुद्रिकां प्रधानया करद्वये ।
स्पृशन्ननामिकां निजां मनुं जपन् प्रदर्शयेत् ॥४५॥

मूलमन्त्रं पठित्वास्य सम्बोधनपुरःसरम् ।
सत्पात्रं सद्‍धविः सौख्यं विविधानेकभक्षणम् ॥४६॥

निवेदयामि भवते सानुगाय जुषाण तत् ।
इति पुष्पाञ्जलिं कुर्यादस्त्रेण कल्पयेद्दिशः ॥४७॥

ब्रह्मेशाद्यैः ससुखमभितः सूपविष्टैः समेतो
देव्या सिञ्जद्वलयकलया सादरं वीज्यमानः ।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरो हासयन् पंक्तिभोक्तॄन्
भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसानेकलिङ्गः ॥४८॥

शालीभक्तं सुभक्तं शशिकरससितं पायसापूपसूपं
लेह्यं पेयं च चोष्यं सितममृतफलं घारिकाद्यं सखाद्यम् ।
आज्यं प्राच्यं समृज्यं नयनरुचिकरं राजिकैलामरीचि-
स्वादीयः शाकराजी परिकरममृताहारजोषं जुषस्व ॥४९॥

व्यात्वैवं विधिवद् विद्वन् वैश्वदेवं समाचरेत् ।
दीर्घविस्तारितो हस्तं चतुरङ्गु[ल] म(मु) च्छ्रितम् ॥५०॥
दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम् ।
संस्कृत्य तं यथान्यायं साधको देवताधिया ॥५१॥
तत्र सम्पूज्य गन्धाद्यैर्देवतामुक्तविग्रहम् ।
तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥५२॥
सर्पिषा वा तिलैर्वापि भक्षै(क्ष्यै)र्वा पायसेन वा ।
जुहुयात् साधकश्रेष्ठः पञ्चविंशतिसंख्यया ॥५३॥
पश्चाद् व्याहृतिभिर्हुत्वा गन्धाद्यैः पुनरर्चयेत् ।
देवतां योजयेत्पीठमूर्त्तौ वह्निं विसर्जयेत् ॥५४॥
अवशिष्टेन हविषा गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ।
देवतायाः पार्षदेभ्यो बलिं दद्याद् विचक्षणः ॥५५॥

ये रौद्राःस्थानपा ये च भैरवाश्च विनायकाः ।
योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥५६॥
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥५७॥
इत्यष्टदिक्षु दत्वा तु करौ संक्षालयेत्ततः ।
चुलुकोदकममृतापिधानमसि वद्वयम् (मापिब स्वयम्)॥५८॥
अनेन देवताहस्ते दत्वा चाथ विचिन्तयेत् ।
उच्छिष्टभोजनं स्वीयदेवताया निदेशितम् ॥५९॥
गतसारं तु नैवेद्यं ततश्चैनं समुद्धरेत् ।
उच्छिष्टं तद्भुजे दत्वा किञ्चित्स्थानं विशोधयेत् ॥६०॥
चण्डेशं च नमस्कृत्य गण्ड (ण्डू) षादि निवेदयेत् ।
ताम्वूलं च ततो दत्वा मुखवासादिसंयुतम् ॥६१॥
पूगीचूर्णं सकर्पूरं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलालवंगखदिरैस्ताम्बूलमिति कीर्तितम् ॥६२॥
पूगीफलानि निर्भिद्य मध्ये कीटादिवर्जितम् ।
सुचिक्कणनिपक्वानि योज्यानि विनिवेदयेत् ॥६३॥
घोटा (अधौता)न्यबाष्पितान्यत्र वर्जयेत् पूजनं (ने) सदा ।
सुधौतानि सुपक्वानि चन्द्रबिम्बसमानि च ॥६४॥
सुगन्धीनि मनोज्ञानि नागवल्लीदलानि च ।
सुतीक्ष्णानि निवेद्यानि जीर्णानि परिवर्जयेत् ॥६५॥
म्लानानि चैव शुष्काणि नात्यन्तसुतलानि च ।
मौक्तिकैर्निर्मितं चूर्णं प्रशस्तं विनिवेदयेत् ॥६६॥
पाषाणजं तु मध्यं स्याच्छर्करं चाधमं स्मृतम् ।
शुक्तिकासम्भवं नैव ताम्बूले विनिवेदयेत् ॥६७॥
आरार्तिकं ततोऽभ्यर्च्य क्रमान्नीराजयेच्च तम् ।
घण्टां वामकरेणाथ वादयन् साधकोत्तमः ॥६८॥
चतुष्टयं पादतले निराजनं द्वौ नाभिदेशे मुखमण्डलैकम् ।
सर्वांगदेशेषु च सप्तवारानारार्तिकं भक्तजनाश्च कुर्युः ॥७९॥
पुष्पाञ्जलिं ततः कृत्वा छत्रमादर्शचामरान् ।
संवीज्य व्यजनेनाथ नृत्यवाद्यादिभिस्तथा ॥७०॥
सन्तोष्य देवं स्तुत्वा च प्रदक्षिणमथाचरेत् ।

नन्दिशंकरयोर्मध्ये योऽन्तरायं व्रजन् चरेत् ।
प्रदक्षिणामतो राजन् सर्वे निरयगामिनः ॥७१॥
यथाशक्ति जपं कृत्वा ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ।
तं जपं देवताहस्ते दत्वा सम्पूज्य पूर्ववत् ॥७२॥
स्तुत्वा तु विविधैः स्तोत्रैः साष्टाङ्गैः प्रणिपत्य च ॥७३॥
शिष्टं गन्धमर्घ्यतोये विलोड्य पाणौ कृत्वा दक्षिणे मूलमन्त्रम् ।
सप्तावृत्त्या संजपेत् सर्वतीर्थीभूतं ध्यात्वा प्रोक्षयेदात्मनोऽङ्गम् ॥७४॥
देवताचा (र्चा) वशिष्टं यत् सलिलं चार्घ्यमध्यगम् ।
अङ्गलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥७५॥
पुष्पादिशिष्टं यद्वस्तु दत्वा तत्परिचारि(र)के ।
स्वयं स्वीकृत्य भक्त्या वै स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः ॥७६॥
आत्मार्पणविधानेन स्वात्मानं सम्यगर्पयेत् ।
शरीरमर्थसम्प्राप्तिमेकलिङ्गाय चार्पयेत् ।
आत्मदारादिकं चैव सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥७७॥
कृमिकीटकभस्मादिविष्ठादुर्गन्धमूत्रकम् ।
श्लेष्मरक्तत्वचाचर्म न वाचापि नृपोत्तम ॥७८॥
पुष्पाञ्जलिं पुनर्दत्वा तन्मूर्तावुपसंहरेत् ॥७९॥
परिवारगणं सर्वमुपसंहारमुद्रया ।
क्षमस्वेति वदन् मूलमन्त्रेण व्यापकं त्रिधा ॥८०॥
विधाय देवतां पश्चात् स्वीयहृत्सरसीरुहे ।
सुषुम्णावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वर्तयेत्सुधीः ॥८१॥
गन्धाद्यैर्मानसैरिष्ट्वा ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ।
ध्यात्वेष्टदेवतारूपमात्मानं प्रजपेन्मनुम् ॥८२॥
शास्त्रदृष्टेण (न) विधिना भक्तिमान् स्थिरमानसः ।
संख्यापूर्तौ पुनः कुर्यात् ऋष्यादिप्राणसंयमान् ॥८३॥
ततो जपदशांशेन होमं कुर्याद् दिने दिने ।
अथवा लक्षसंख्यायां पूर्णायां होमसाचरेत् ॥८४॥
होमाद् दशांशतः कुर्यात् तर्पणं देवतामुखे ।
तर्पणस्य दशांशेन मार्जयेदात्ममूर्धनि ॥८५॥
मार्जनस्य दशांशेन कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
होमाशक्तौ जपं कुर्युर्होमसंख्याचतुर्गुणम् ॥८६॥
षड्गुणं चाष्टगुणितं यथासंख्यं द्विजातयः ।

द्विजस्त्रीणां तु विज्ञेयो द्विजातीनां समो जपः ॥८७॥
स्वामिन्युक्तो जपः शूद्रे केचिदाहुरितो ऽन्यथा ।
होमाशक्तौ चतुर्नेत्रसंख्यं सर्वो जपेन्मनुम् ॥८८॥
यस्मिंश्च निगदेनैव जपसंख्या विधीयते ।
तत्र सर्वत्र मन्त्राणां संख्यावृत्तिर्युगक्रमात् ॥८९॥
कल्पोक्तैर्वक्र(र्धं)ते संख्या त्रेतायां द्विगुणा स्मृता ।
द्वापरे द्वि(त्रि)गुणा ज्ञेया कलौ प्रोक्ता चतुर्गुणा ॥९०॥
एवं यः पूजयेन्नित्यं स शैवपदवीं व्रजेत् ।

सूत उवाच—

इति ते कथितं सम्यक् (ग्)यथाक्रममनुत्तमम् ॥९१॥
यः पठेन्नियतो भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः ।
पूजाफलमवाप्नोति शिवस्यानुचरो भवेत् ॥९२॥
शिवपूजाविहीनो यः स नरो नरके पचेत् ॥९३॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये बाप्पान्वये पूजाकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

## अथ षड्विंशोऽध्यायः

शौनक उवाच—

पादुकामन्त्रमाख्यातं पूर्वं तत्प्रकटीकुरु ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि साङ्गमृष्यादिपूर्वकम् ॥१॥

सूत उवाच—

श्रूयतां मुनिशार्दूल पादुकां गुरुरूपिणीम् ।
यां ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥२॥
सुषुमाणोऽप्यथ ब्रह्मन् विनयेन समन्वितः ।
वेदगर्भात्तु यां प्राप्य सर्वसौभाग्यवानभूत् ॥३॥
वाङ्माया कमला (:) प्रान्ते हसख फ्रें (?) हसौं तथा ।
आनन्दभैरवौ प्रोक्तौ तथा पल्लववर्जितौ ॥४॥
सहखफ्रेमथोच्चार्य स्वगुरुत्रयनामकम् ।
सिद्धः श्रीह्यमुकानंदनाथ [श] चिच्छवितपूर्वकम् ॥५॥
देव्यं श्रीपदं प्रोच्य साधको दुःखनाशिनीम् ।
पादुकां पूजयामीति सर्वदा भक्तिमांश्चरेत् ॥६॥
नत्यन्तां संस्मरेन्मन्त्री स्वीयमूर्ध्नि फलप्रदाम् ।
पादुकाया ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द उच्यते ॥७॥

वाङ्मायाबीजशक्ती च चतुर्थं कीलकं स्मृतम् ।
चतुर्वर्गाप्तये प्रोक्तं ऋषिणा नृपतिं सदा ॥८॥
त्रिराद्यै [ : ] पुनरेकैकमेकैकेन षडंगकम् ।
बीजैर्यथाविधि कृत्वा ध्यायेन्मूर्द्धाम्बुजे गुरुम् ॥९॥
शिवरूपं स्वप्रकाशमानन्दं परमव्ययम् ।
मनुष्यो नाट्यसंरम्भं द्विनेत्रं द्विभुजं सदा ॥१०॥
मानसैरुपचारैश्च सम्पूज्य गुरुमात्मनः ।
आदौ त्रिकालमेवं हि संस्मृत्यान्यत् समाचरेत् ॥११॥
द्विकालमेककालं वा संसेवेत् साधकोत्तमः ।
इति ते कथितं ब्रह्मन् किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥१२॥

**शौनक उवाच—**

सूत सूत महाभाग सुषुमाणस्य धीमतः ।
तत्पुत्रस्य च यद्वृत्तं तत्सर्वं कथयस्व मे ॥१३॥

**सूत उवाच—**

मन्त्रस्य ग्रहणाद्देवं (वः) पूजनादपि तत्क्षणात् ।
आविर्भूत्वा (य) दृषन्मूर्तौ तत्क्षणाद् वरदोऽभवत् ॥१४॥
यथा ध्यातं तथा तेन रूपं कृत्वाऽब्रवीदिदम् ।
सुषुमाण महाप्राज्ञ यत्ते मनसि वर्तते ॥१५॥
तदद्य प्रार्थयित्वाशु प्रसन्नोऽस्मि सदा त्वयि ।
भक्तोऽसि धर्मशीलोऽसि तद्वृणुष्व समीहितम् ॥१६॥

**राजोवाच—**

भगवंस्त्वत्प्रसादेन त्रिकालं ज्ञानमाप्नुयाम् ।
येनाहं दुःखसंसारात् मुक्त्वा सद्गतिमाप्नुयाम् ॥१७॥
तव पादाम्वुजे देव भक्तिरस्तु सदा मम ।
यथाऽधुना दृश ष)न्मूर्तावाविर्भूत्वा(य) प्रसन्नतः (?)॥१८॥
वरदोऽसि तथा नाथ सर्वदा मे कृपां कुरु ।
एतावदेव याचेऽहं किमन्यद् भक्तवत्सल ॥१९॥

**श्रीमदेकलिङ्ग उवाच—**

वत्स तुभ्यं मया दत्तं यदद्य प्रार्थितं त्विह ।
गोविन्द त्वं तथा मत्तो वृणीष्वावहितो वरम् ॥२०॥

**गोविन्द उवाच—**

मत्पित्रा याचितं यद्यत् तत्सर्वं दीयतां मम ।
मज्जनन्यास्तथा स्वामिन् सर्वान् कामान् प्रपूरय ॥२१॥

हृद्गतं त्वं विजानासि सर्वदृक् सर्वसाक्ष्यसि ।
किमन्यद् बहुधोक्तेन कृपां कुरु जगत्प्रभो ॥२२॥

**श्रीमदेकलिङ्ग उवाच—**

भवद्भिश्चिन्तितं चित्ते तत्सर्वं सम्भविष्यति ।
अत्रार्थे संशयो मास्तु सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥२३॥

**वायुरुवाच—**

इत्येतत् श्रुतवान् राजा एकलिङ्गात्ज (ज्ज) गत्पतेः ।
स्वं स्वं सुतं कलत्रं च वरदानेन तोषितम् ॥२४॥
हर्षादश्रूणि मुञ्चन् सो (स) विनयेन ववन्द च ।
एकलिङ्गं तथा देवीं स्तुत्वा नत्वा विनिर्ययौ ॥२५॥
गुरुणा ज्ञापितः शीघ्रं गतो गच्छन्निजालयम् ।
गोविन्दोऽपि तथा बाल्यादारभ्याराधयन् शिवम् ॥२६॥
बुभुजे विविधान् भोगान् गार्हस्थस्याश्रमोचिताम् ।
यु (यौ) वराज्येऽथ संस्थाय पितरं पर्यसेवयत् ॥२७॥
एवं कतिपयैर्वर्षैः कृतं राज्यमकण्टकम् ।
स राजा सुषुमाणोऽपि भुक्त्वा भोगान् यदृच्छया ॥२८॥
राजधानीं स्वपुत्राय समर्प्य त्वरया ह्यगात् ।
गुरुपादौ स्मरन्नत्र त्यक्तं स्वीयं कलेवरम् ॥२९॥
योगमार्गस्य विधिना एकलिङ्गस्य सन्निधौ ।
गोविन्दोऽपि तदन्त्येष्टिं कृत्वा पृथ्वीं शशास ह ॥३०॥
क्षात्रधर्मेण धर्मज्ञस्त्रायन्नन्यान् स भूमिपान् ।
स्वीयान्पुष्णंस्तदा सोऽपि कालेन महता पुनः ॥३१॥
सोऽपि स्वराज्ये संस्थाप्य आलुनामानकं सुतम् ।
तस्मादभूद्विश्वनाथो विश्वस्य स्थितिहेतवे ॥३२॥
संस्थाप्य तं विश्वनाथं योगमार्गमवाप्तवान् ।
चतुर्थाश्रमधर्मज्ञः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥३३॥
ऐकलिङ्गस्य चाभ्यर्णे कालनामा नृपोत्तमः ।
विश्वनाथः स्वराज्ये तं कुमारं शक्तिपूर्वकम् ॥३४॥
संस्थाप्य विग्रहे सोऽपि शस्त्रपूतो दिवं ययौ ।
तस्मादभून्नृपश्रेष्ठः शालिवाहनसंज्ञकः ॥३५॥
तत्पुत्रो नरवाहश्च जातः सर्वत्र विश्रुतः ।
कीर्तिवर्मेति तत्पुत्रस्तत्पुत्रो नरवर्मकः ॥३६॥

तत्पुत्रः कर्णनामाऽभूत् राजा कर्ण इवापरः ।
तस्मादभूत्सहस्राक्षः श्रीपुञ्जस्तस्य नन्दनः ॥३७॥
श्रीपुञ्जादथ कर्णोऽभूत्कर्णोच्चरणमल्लकः ।
तस्मादभूच्च खंगारः खंगारात् क्षेत्रपो ह्यभूत् ॥३८॥
क्षेत्रपादथ कर्णोऽभूत् कर्णाज्जाता बहुप्रजाः ।
तेषां धुरंधरः श्रीमान् तेजसिंह इति प्रभुः ॥३९॥
तदात्मजोऽमरः प्रोक्तः सिंहस्येव पराक्रमी ।
तस्मादभूत्स(सु)बाहुर्यः स्वबाहुबलविक्रमः ॥४०॥
तस्मादभूद्रत्नसिंहो रत्नाकर इवापरः ।
तत्पुत्रो जयसिंहश्च शास्त्राग्निदग्धकिल्बिषः ॥४१॥
लक्ष्मीसिंहश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रोऽतिपराक्रमी ।
हम्मीरसंज्ञको भूपः पालयन् पृथिवीमिमाम् ॥४२॥
तत्सूनुः क्षेत्रपो नाम मोकलस्तु तदात्मजः ।
तत्सूनुः कुम्भकर्णोऽभूत् कुम्भकर्णात्पराक्रमी ॥४३॥
तस्यैवं शासतः पृथ्वीं बहुकालमगात् तदा ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदविदांवरः ॥४४॥
योगमार्गेण स्वं देहं त्यक्त्वा सायुज्यमाप्तवान् ।
ततस्तत्तनुजा जाताः परस्परविरोधिनः ॥४५॥
स्पर्द्धया नीचसंसर्गाच्छूद्राचारपरा [अ]भवन् ।
अ(स्व)धर्माच्च च्युतास्ते वै भवान्याः शापकारणात् ॥४६॥
ब्राह्मणान् क्लेशयन् सर्वान् दत्तदानापहारकाः ।
देवस्वमपि हर्तारः क्रूराश्चौराश्च तेऽभवन् ॥४७॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् म्लेच्छैरागत्य क्लेशिताः ।
परस्परमभूत्तेषां विग्रहश्चातिदारुणः ॥४८॥
एवं कतिपयैर्वर्षैर्गते (तैस्) तं मुनिसत्तम ।
हारीतस्य च शिष्यं ते विनयेनाभिवाद्य च ॥४९॥
म्लेच्छैराक्रमितां पृथ्वीं शाध्यस्मान् येन प्राप्नुमः ।
भ्रष्टराज्यान् कृपासिन्धो स्वराज्ये संनिवेशय ॥५०॥
त्राहि त्राह्याश्रितान् भक्तान् ब्रह्मन्न गतिरन्यथा ।

सूत उवाच—

इति तेषां वचः श्रुत्वा क्षणमात्मनि चिन्तयन् ॥५१॥
भवान्या वचनाज्जातमिति निश्चित्य वै हृदि ।
शिवां तथैकलिङ्गं च पूजयध्वं यथाविधि ॥५२॥

गुरोः परम्परायातं त्यक्त्वाऽन्यपथगामिनः ।
अथश्चैतादृशं ज्ञातं देशोपद्रवजं भयम् ॥५३॥
तस्मादत्रैव संस्थाय पूजयध्वं सदाशिवम् ।
इति श्रुत्वा तदा ते वै शूद्राचारैरपूजयन् ॥५४॥
तेषां धुरन्धरो जातो राजमल्ल इति प्रभुः ।
एकलिङ्गोऽपि तां पूजामङ्गीकृत्य प्रसन्नतः (प्रसादितः) ॥५५॥
राष्ट्रसेनामथाहूय एकलिङ्गोऽब्रवीदिदम् ।
श्येने (सेने) सहायमेतेषां कुरु शीघ्रं ममाज्ञया ॥५६॥
इति श्रुत्वा तु सा देवी तेषां साहाय्यमाचरत् ।
चित्रकूटे पुनस्तेषां संस्थाप्यात्रागताऽथ सा ॥५७॥
तदारभ्य तु ते सर्वे शूद्राचारपरायणाः ।
राज्यं चक्रुर्यथापूर्वं क्षात्राभासाश्च ते पुनः ॥५८॥
यदा यदा शिवे भक्ति न कुर्वन्ति तदा तदा ।
एवमेवोपद्रवैश्च म्लेच्छाधीना भवन्ति हि ॥५९॥

**शौनक उवाच—**

हारीतस्य च शिष्योऽसौ किंनाम्ना ख्यातिमागताः(तः) ।
एतन्मे संशयं सूत निराकर्तुमिहार्हसि ॥६०॥

**सूत उवाच—**

विद्याचार्य इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥६१॥
दयावाननसूयश्च एकलिङ्गं च पूजयन् ।
तपश्चचार सुमहल्लोकानुग्रहकारणात् ।
तत्तेजसा च शुशुभे क्षेत्रं नागह्रदं परम् ॥६२॥
एकलिङ्गोऽथ भगवांस्तस्यैव वशमाययौ ।
तथा स विन्ध्यवासापि पाति पुत्रमिवौरसम् ॥६३॥
तपसा स्वीयवशगां कृत्वाऽत्रैव स्थितः स हि ।
तयो रूपमनुध्यायन् ब्रह्मचर्याश्रमाग्रणीः ॥६४॥
यस्य दर्शनमात्रेण नृणां सर्वार्थसिद्धये (यः) ।
भवन्ति च तथाभूतः सत्यधर्मपरायणः ॥६५॥
शिष्यप्रशिष्यैः सहितो मठे तत्र व्यवस्थितः ।
ब्राह्मणान् पाठयन्नित्यं तदा क्षत्रविशानपि ॥६६॥
कुम्भादयो नृपा ह्यासन् तदाज्ञापरिपालकाः ।
यष्टिं पाणौ गृहीत्वा ते स्वमौद्धत्यं विहाय च ॥६७॥

प्रतीहार इव द्वारि पूर्वज्ञाननियन्त्रिताः ।
स्वराजधानीं सम्प्राप्य राजचिह्नानि (न्य) धारयन् ॥६८॥
एकलिङ्गस्य तस्यापि ( ऐक्यं समवगम्य ) च ।
सोऽपि तान्वर्धयन्नाशीर्वादिनाभिविवृ (वर्) द्धय च ॥६९॥
ततः सोऽपि महाधीमान् चतुर्थाश्रममग्रहीत् ।
शिवानन्दाश्रमाभ्यर्णे कालेन निधनं गतः ॥७०॥
तस्य शिष्यप्रशिष्याश्च बहवस्तन्मठे किल ।
विद्याः प्रवर्तयन् देशे चतुर्दशाख्यकास्ततः ॥७१॥
आचरन् स्वयमाचारान् श्रुतिस्मृत्युदितान् स्वकान् ।
प्रेरयन् ब्राह्मणादींश्च स्वस्वधर्मे विशेषतः ।
एकलिङ्गाज्ञया ब्रह्मन् शुशुभुस्ते तपस्विनः ॥७२॥
एवं बहुसमा नीताः स्वधर्मं परिपालयन् ।
एतस्मिन्नन्तरे चैव कलिराविर्बभूव ह ॥७३॥
स तस्य भूपहृदये प्रविश्य मतिमन्यथा ।
करेण कारयामास चैकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥७४॥
शम्भुनारायणो नाम संस्मरन् शिवमेत्य च ।
तर्मुद्दिश्योपहास्येन यत्किञ्चिल्लपितो (तवान्) नृपः ॥७५॥
शम्भुर्निवारयामास मैवं वद नृपोत्तम ।
तथापि तेन हास्येन पूर्ववल्लपितं पुनः ॥७६॥
सोऽपि तापसवर्यस्तु क्रोधरक्तेक्षणोऽवदत् ।
भ्रष्टराज्यो भवाशु त्वं यतो राज्यमदेन हि ॥७७॥
भाषसे गुरुमुद्दिश्य गच्छ दुष्ट नृपाधम ।
एवमुक्त्वा गतः सोऽपि देशं त्यक्त्वा त्वरान्वितः ॥७८॥
नृपोऽपि चिन्तयाक्रान्तः सान्त्वयामास तं गुरुम् ।
गते नैव गतः, सोऽपि सशिष्यः खिन्नमानसः ॥७९॥
काश्यां निवासमकरोन्निग्रहानुग्रहक्षमः ।
एतस्मिन्नन्तरे विप्र षण्मासाभ्यन्तरे महत् ॥८०॥
म्लेच्छैः सह विरोधेन युद्धमुग्रमभूत्तदा ।
वर्षद्वादशपर्यन्तं न सुखं . लेभिरे पुनः ॥८१॥
सख्यं चक्रुश्च तैः साकं सेवया विनयेन च ।
एवं कतिपयैर्वर्षैर्गते (तैः) त (स्त) त्सन्ततौ पुनः ॥८२॥
भविष्यति नृपः कोऽपि धर्मनिष्ठः प्रतापवान् ।
पितृपैतामहादीनां राज्यं संपालयिष्यति ॥८३॥

चक्रवर्तीव शुशुभन् (?) म्लेच्छादींस्त्रासयन् पुनः ।
स्ववीर्यबलकोशेन स्वराज्यं स करिष्यति ॥८४॥
ततः परम्परायातो (ता) गुरुमार्गानुगामिनः ।
ततः सम्मान्य तानत्र स्थापयिष्यति तन्मठे ॥८५॥
शम्भुनारायणस्याथ शिष्यानाहूय भक्तितः ।
यथापूर्वं च महती पूजाऽग्रेऽपि भविष्यति ॥८६॥
एकलिङ्गस्य विधिना जीर्णोद्धारक्रमेण हि ।
कारयिष्यन्ति तच्छिष्या यथाशास्त्रं तथा ततः ॥८७॥

वायुरुवाच—

इति बाष्पस्य वृत्तान्तं कथितं ते महामुने ।
अन्वयं चापि भूतस्य बाष्पस्य च महात्मनः ॥८८॥
य इदं कीर्तयेन्नित्यं बाष्पान्वयमनुत्तमम् ।
शृणुयाद्वा प्रयत्नेन एकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥८९॥
गृहगोष्ठवनारामनदीनगसुरालये ।
समीपे वा गुरोः सिद्धिः शीघ्रं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥९०॥
स दुःखौघाद् विनिर्मुक्तः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
अश्वमेधसहस्राणि वाजि (ज) पेयशतानि च ॥९१॥
कोटिकन्याप्रदानेन यत्फलं प्राप्यते नरैः ।
तत्फलं प्राप्यते ह्यस्मिन् वंशश्रवणकीर्तनात् ॥९२॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये बाष्पान्वये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

## अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारद उवाच—

अष्ट तीर्थानि यानीह प्रथितानि समीरण ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि नामतो व्यक्तितः क्रमात् ॥ १ ॥
माहात्म्यमपि तेषां यत्तद् वर्णय विस्तरात् ।
सर्वे देवाः सऋषयो यत्र स्नात्वा सुभक्तितः ॥ २ ॥
स्वं स्वमासाद्य कामानि (कामं तु) चैत्रे मासि विशेषतः ।
यात्रार्थिनो विशेषेण तीर्थयात्रां चरन्ति ह (हि) ॥ ३ ॥

वायुरुवाच—

यदा कामदुधा याता गोलोकादिह नारद ।
शङ्करं द्रष्टुकामा सा तदा कैलासपर्वतात् ॥ ४ ॥
भैरवोऽपि स्वयं हर्षादिहायातो महाबलः ।
शिवस्य दर्शनाकांक्षी वियोगाद् बहुकालतः ॥ ५ ॥
सगणः सह योगिन्या भूतवैतालसंवृतः ।
चतुर्भुजस्त्रिनयनो बालार्कायुतसन्निभः ॥ ६ ॥
शूलं कपालं डमरुं खट्वाङ्गमपि धारयन् ।
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तमाल्यानुलेपनः ॥ ७ ॥
त्रिकूटाचलमध्ये तु पश्चिमायां तथा दिशि ।
स्वालयं स विनिर्माया (य) वापिका (कां) कारिता (कृतवान्) पुनः ।८।
सर्वतीर्थान्यथानीय सूर्यमण्डलतः प्रभुः ।
प्रतिष्ठां कारयित्वास्या वेदागमविधानतः ॥ ९ ॥
तत्र स्वयं सुसंस्नातो हर्षेण शिवमादरात् ।
ध्यायन् शिवां च तत्रैव शिवस्याविर्भवोत्सवे ॥१०॥
तदारभ्यादितीर्थं तत् सर्वतीर्थमिति श्रुतम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरो यस्तु स्नात्वा भैरवमर्चयेत् ।
स सर्वतीर्थस्नानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥११॥
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां कार्तिकस्यापि भैरवम् ।
भक्त्या ये पूजयिष्यन्ति ब्राह्मणानपि नारद ॥१२॥
भैरवः सर्वदस्तेषां सर्वदा सुप्रसन्नदृक् ।
यात्रार्थिनोऽप्यथादौ हि भैरवं सम्यगर्च्य च ॥१३॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥१४॥
इत्यनेन च मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य प्रथमं ततः ।
एकलिङ्गं समभ्यर्चेदन्यथा निष्फलं भवेत् ॥१५॥

नारद उवाच—

एकलिङ्गस्य पूजायां कानि कानि ह (किं किमत्र हि) चोदितम् ।
पत्रपुष्पफलादीनां फलं त्वं वक्तुमर्हसि ॥१६॥

वायुरुवाच—

अथावरणपूजादौ यथालाभं सुभक्तितः ॥१७॥

माल्यानि तु ततो दद्यात् सुगन्धैः कुसुमैस्तथा ।
निर्मितानि मनोज्ञानि पत्रैर्मरुबकोद्भवैः ॥१८॥
तुलसीपत्रिकापत्रैर्बर्बरीं तु विवर्जयेत् ।
मत्कुणीं बाकुचीं चैव तथा श्वेततुलस्यपि ॥१९॥
करवीराणि योज्यानि श्वेतरक्तभवानि च ।
नीलरक्तोत्पलैः श्वेतैः कमलानि सदा ददेत् ॥२०॥
कल्हाराणि तथा शस्तमे (शस्तान्ये) कलिङ्गार्चने सदा ।
कुमुदानि तु योज्यानि चम्पकानि [च] मालती ॥२१॥
मल्लिका वै कुरबकं बकुलं वन्धुजीवकम् ।
नागपुष्पं केसरजं कुङ्कुमोद्भवमेव च ॥२२॥
शतपत्री तथा श्रेष्ठा केतकीं वर्जयेत् सदा ।
देव्यै तु सर्वदा योज्या केतकी तु विशेषतः ॥२३॥
शिवे माधविका शस्ता शिवां चापि विशेषतः ।
करुणाकुसुमानि स्युः कुन्दाशोकभवानि च ॥२४॥
ह्रीवेरं च तथा श्रेष्ठं नन्दावर्त्तभवं तथा ।
काञ्चनारभवं पुष्पं कर्णिकारजमेव च ॥२५॥
शिवमल्ली तथा श्रेष्ठा पाटली द्विविधा भवेत् ।
भूतपत्राणि तत्पुष्पं कोमलाः पल्लवाः शुभाः ॥२६॥
शालमालतमालादिपल्लवाः परिकीर्तिताः ।
किंशुकं पारिभद्रं स्यादतिमुक्तकमेव च ॥२७॥
धत्तूरार्कभवं पुष्पमपामार्गस्य पल्लवाः ।
पत्रं नागबलायाश्च तत्पुष्पाणि च योजयेत् ॥२८॥
अगस्त्यपुष्पं तत्पत्रं पूजने श्रेष्ठमिष्यते ।
भृङ्गराजस्य पत्राणि मुण्डी गान्धारिका तथा ॥२९॥
आम्रातकस्य पत्राणि तथा दूर्वाङ्कुरा मताः ।
कुशपुष्पाणि योज्यानि जलजम्बूभवानि च ॥३०॥
बिल्वपत्रं सदा योज्यं हरितं शुष्कमेव च ।
चूर्णीभूतमथापि स्यात् सर्वतः श्रेष्ठमुच्यते ॥३१॥
तुलस्यपि तथैव स्यादेकलिङ्गार्चने सदा ।
आहरेदथ पुष्पाणि स्वयमेव विचक्षणः ॥३२॥
अन्याहृतेषु पुष्पेषु फलं स्वल्पं तथा भवेत् ।
क्रयक्रीते तथा पादं याचिते निष्फलं भवेत् ॥३३॥

चोरिते महदेनं (नः) स्यात्ततस्तं (तत्) परिवर्जयेत् ।
पुष्पाध्यायोक्तपुष्पाणि पत्राणि विविधानि च ॥३४॥
स्वयं निष्पाद्य यत्नेन क्षालयित्वा जलैस्ततः ।
उक्तस्थाने च संस्थाप्य निर्माल्यानि विसर्जयेत् ॥३५॥
सौवर्णानि च पुष्पाणि निर्माल्यानि कदाचन ।
मौक्तिकादीनि रत्नानि योजयेच्च पुनः पुनः ॥३६॥
नूतनं वस्त्रयुग्मं स्यात् नित्यं संक्षाल्य चार्पयेत् ।
सच्छिद्रं मलिनं जीर्णं त्यजेत् तैलादिदूषितम् ॥३७॥
निर्गन्धकेशकीटादिदूषितं चोग्रगन्धकम् ।
मलिनं तत्तु संस्पृष्टमाघ्रातं ख (त्व) विकाशितम् ॥३८॥
अशुद्धभाजनानीतं स्वा (ह्व) त्वानीतं च याचितम् ।
कदापि न सपर्यार्थमाहरेच्च विचक्षणः ॥३९॥
चम्पकं कमलं त्यक्त्वा कलिकामपि वर्जयेत् ।
पत्रं पुष्पं फलं देवे न प्रदद्यादधोमुखम् ॥४०॥
पुष्पाञ्जलौ न तद्दोषस्तथा सर्वत्र भूपते ।
जम्बूदाडिमजम्बीरतिंतिणीबीजपूरिकाः ॥४१॥
रम्भा धात्री च बदरी रसालः पनसोऽपि च ।
येषां फलैर्यजेद्देवमेकलिङ्गाख्यमव्ययम् ॥४२॥
यद् यद् वाञ्छति भृत्यो यस्तत्तदस्मादवाप्नुयात् ।
इति भैरवमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च ॥४३॥
सर्वतीर्थस्य माहात्म्यं प्राप्नुवन्त्यतिभक्तितः ।
भैरवस्तु सहायः स्यात्तेषां नास्त्यत्र संशयः ॥४४॥
वेदागमपुराणेषु प्रथितो भैरवस्तथा ।
तस्य नित्यं विशेषेण पूजयेद् योऽतिभक्तितः ।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥४५॥

**नारद उवाच—**

अन्यानि कथमत्रासन् तीर्थानि हि समीरण ॥४६॥
शृण्वन्न मे मनस्तुष्टिमुपयाति कुतूहलात् ।

**वायुरुवाच—**

विन्ध्यवासा यदायाता स(स्व)सखीभिः समन्विता ।
कैलासादिह तं द्रष्टुं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥४७॥
स्थानं दृष्ट्वाऽतिरम्यं च हर्षेण महता पुनः ।

विश्वकर्माणमाहूय वाटिका कारिता शुभा।
सर्वर्तु फलपुष्पाढ्या नानाद्रुमलतान्विता ॥४८॥
तस्यां सा क्रीडयामास सखीभिः सह नारद।
एतस्मिन्नन्तरे तस्यां भैरवः स समागतः ॥४९॥
विन्ध्यवासां नमस्कृत्य विनयेन समन्वितः।
अम्बाऽहं तृषितोऽस्म्यत्र जलं मे देहि सत्वरम् ॥५०॥
तच्छ्रुत्वा साऽतिहर्षेण कथयामास तं पुनः ॥५१॥
वत्स सू(शू)लाग्रभागेण पातालाज्जलमानय।
तव नाम्ना भवत्वत्र वापिका सर्वकामदा ॥५२॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य स तथैवाकरोत् पुनः।
पपौ सोऽपि जलं तत्र तस्याज्ञापरिपालकः ॥५३॥
तदारभ्याथ सा वापी ख्याता भैरवसंज्ञिका।
तस्या वाप्यास्तु तोयेन उद्धृतेन समाहितः ॥५४॥
स्नात्वा च विन्ध्यवासां तामभ्यर्च्य सविधानतः (?)।
स्तुत्वा नत्वा (?) च यो मर्त्यः स सर्वफलभाग् भवेत् ॥५५॥
इति भैरववाप्यास्तु उत्पत्तिं शृणुयात्तु यः।
स विधूयेह पापानि देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥५६॥

**नारद उवाच—**

त्वन्मुखादष्टतीर्थानि श्रुतानि च मयानघ।
नारायणस्य माहात्म्यं सलक्ष्मीकस्य कथ्यताम् ॥५७॥

**वायुरुवाच—**

यदा देव्या तु क्रोधेन शप्ताः सर्वे दिवौकसः।
तदा स देवदेवोऽपि एकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥५८॥
प्राकारान्तर्गते रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
रत्नसिंहासने तत्र शुशुभे स महामुने ॥५९॥
लक्ष्म्या सहारविन्दाक्षः सगणः स गरुत्मता।
शङ्खचक्रगदापद्मपीताम्बरधरो विभुः ॥६०॥
किरीटकुण्डलधरो वनमालाविभूषितः।
स्वर्णरत्नाङ्गदादीनि श्रीवत्साङ्कितविग्रहः ॥६१॥
अतसीपुष्पसंकाशो विद्युदाभां रमां दधत्।
रक्तवस्त्रपरीधानां नीलकञ्चुकिवक्षसम् ॥६२॥

नासामौक्तिकशोभाढ्यां रत्नताटङ्कमण्डिताम् ।
कोमलाङ्गीं विशालाक्षीं नवयौवनगर्विताम् ॥६३॥
कङ्कणादिविभूषाढ्यां रत्नोपलकराम्बुजाम् ।
नूपुराए(रा)वसुभगां पीनोन्नतपयोधराम् ॥६४॥
मन्दहासां प्रमुदितामन्योन्यालिङ्गनोत्सुकाम् ।
तामालिंग्य प्रियां सोऽपि नारायणोऽवसत्तथा ॥६५॥
चक्रेण सितधारेणाकरोत् पुष्करिणीं तदा ।
निजमण्डपपृष्ठेऽथ कमलाकुलिताम्बराम् ॥६६॥
तामालोक्यैकलिङ्गोऽपि साधु साध्विति चाब्रुवन् (चाब्रवीत्) ।
चक्रपुष्करिणीनाम्ना ख्यातिमेष्यति माधव ॥६७॥
योऽस्यां स्नाति सदा भक्त्या चोद्धृतेन जलेन हि ।
तमाशु वरदो भूत्वा प्रसीदामि न संशयः ॥६८॥
माघफाल्गुनचैत्रे च अस्यां यो धर्ममाचरेत् ।
स याति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥६९॥
चक्रपुष्करिणीतोये नारायणं च योऽर्चयेत् ।
लक्ष्म्या सहैव सो (स) याति वैष्णवं पदमुत्तमम् ॥७०॥
नारायणस्य माहात्म्यं यः शृणोतीह भक्तितः ।
पठेद् वा यः प्रयत्नेन स तस्य गतिमाप्नुयात् ॥७१॥
अण्डजाश्चोद्भिजा वापि स्वेदजाश्च जरायुजाः ।
सर्वे ते सद्गतिं यान्ति चक्रपुष्करिणीजलात् ।
अथ वा तत्समीरेण स्पर्शतो मोक्षमाप्नुयात् ॥७२॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये श्रीनारायणप्रादुर्भावो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

## अथाष्टाविंशोऽध्यायः

**नारद उवाच—**

येन क्रमेण स मुनिः स्नानं चक्रे यथाविधि ।
कुटिलाद्यष्टतीर्थेषु तन्मे ब्रूहि समीरण ॥ १ ॥

**वायुरुवाच—**

भैरवं तु नमस्कृत्य तदाज्ञां परिगृह्य च ।
तीक्ष्णदंष्ट्रेति मन्त्रेण शिवशर्मा द्विजोत्तमः ॥ २ ॥
कुटिलोद्भवकुण्डे तु स्नात्वा सम्पूज्य शङ्करम् ।
दानं दत्वाऽऽह्निकं कृत्वा पुत्रपौत्रादिभिः सह ॥ ३ ॥

तपस्विनो महासिद्धा योगिनो नियतव्रताः ।
कणभक्षा निराहारा वायुभक्षा जितेन्द्रियाः ॥ ४ ॥
अम्बुपर्णाशिनः केचित् केचिन्मूलफलाशिनः ।
सिंहव्याघ्रादिभिः कीर्णैर्निवसन्ति मनस्विनः ॥ ५ ॥
खगा मृगाश्च गवया वाराहा वृक् (क) बिडालकाः ।
निवसन्ति मुनिश्रेष्ठ पक्षिणः प्रमदानुगाः ॥
पूर्वसंस्कारभावं हि भजमाना महाशयाः ॥ ६ ॥
गन्धर्वसिद्धमुनिकिन्नरगुह्यकाद्यैः
संसेव्यमानमनिशं सरसीरुहाक्षैः ।
श्रीसुन्दरीवलयसिञ्जितमङ्घ्रिभागे
नृत्यन्मयूरमणिमण्डितवेदिमध्ये ॥ ७ ॥
आधारेशो महेशस्तु वर्त्तते यत्र नारद ।
तस्य दर्शनमात्रेण महापातककोटयः ॥ ८ ॥
तत्क्षणाद् विलयं यान्ति संचिताः पूर्वजन्मभिः ।
ततस्तु दक्षिणे भागे तक्षकेशो महेश्वरः ॥ ९ ॥
तक्षकेण पुरा ब्रह्मन् स्वस्य संस्थितिहेतवे ।
स्थापितस्तत्र वै चक्रे स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१०॥
ततः प्रभृति क्षेत्रेऽस्मिन् नास्ति नागभयं महत् ।
स्नानात् सर्वप्रयत्नेन नो नागकुलजं भयम् ॥११॥
तत्र स्नात्वा नमस्कृत्य तक्षकेशं महेश्वरम् ।
नागसूक्तेन स मुनिः पूजां चक्रे विधानतः ॥१२॥
पुनस्तु भैरवेणाथ सर्वतीर्थमयं च यत् ।
तीर्थं सम्पादितं पूर्वं................................ ॥१३॥[1]
सर्वतीर्थेषु गदितं यत्फलं मुनिपुङ्गवैः ।
तत्फलं लभते जन्तुर्दर्शनान्मज्जनात्किमु ॥१४॥
भूतप्रेतपिशाचानां न भयं तत्र नारद ।
डाकिन्यः क्षेत्रपालाश्च यक्षाः किम्पुरुषास्तथा ॥१५॥
तं नरं पश्य (दृष्ट्वा) भीताः स्युः पलायन्ति दिशो दश ।
भूतप्रेतादिभीतश्चेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ॥१६॥

---

१. पाण्डुलिपि में इस स्थल पर ⌒ चिह्न लगा है, जिसका अर्थ है कि लिपिकार 'मार्जिन' में लिखना चाहता है, किन्तु कहीं इस चिह्न के अनुसार कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता ।

तदा प्रभृति नो भूतप्रेतादिगणजं भयम् ।
सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठ मदुक्तमवधारय ॥१७॥
ततस्तु करजे कुण्डे स्नात्वा देवीं प्रपूज्य च ।
वेदोक्तविधिना तत्र नित्यं कर्म समाप्यते ॥१८॥
तत्रस्थानां मुनीनां तु दर्शनं शिवभाविनाम् ।
महापातकराशीनां नाशनं कलिनाशनम् ॥१९॥

ततस्तु मुनिशार्दूल चक्रपुष्करिणीं शुभाम् ।
विष्णुना चक्रवर्येण निर्मितां पापनाशिनीम् ॥२०॥
मृत्कुशानपि संगृह्य हस्ते पादादिकं सुधीः ।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् स्नात्वा विष्णुं प्रपूज्य च ॥२१॥
लक्ष्मीं पद्मासनां तत्र वक्षःस्थलनिवासिनीम् ।
पुष्पगन्धादिभिः पूज्य नमस्कृत्य विधानतः ॥२२॥

तत उत्तरदिग्भागे सर्वसौभाग्यदायिनी ।
सर्वेषां मनुजानां तु विन्ध्यवासेत्ति विश्रुता ॥२३॥
एकलिङ्गस्य भक्तानां प्रथमं हि फलप्रदा ।
धेनुहारीतनागाद्यैस्तथेन्द्रेणापि वज्रिणा ॥२४॥
सेविता फलदा देवी मया दृष्टा पुरा किल ।
तत्समीपे तु महती वाटिका गह्वरे वने ॥२५॥

आम्रनिम्बकदम्बाद्यैर्बीजपूरैः सदाडिमैः ।
पनसैर्नालिकेरैश्च पुंनागैर्नागकेसरैः ॥२६॥
तालैस्तमालैर्हिन्तालैः पाटलैर्जातिचम्पकैः ।
कुटजैः कर्णिकारैश्च जम्बूप्लक्षविभीतकै [ः] ॥२७॥
जम्बीरैः करवीरैश्च नारिङ्गैः कदलीवटैः ।
पलाशैः खादिरैर्वंशैस्तथोदुम्बरविल्वकै [ः] ॥२८॥

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिगणावृतम् ।
मुनिचारणसिद्धैश्च किन्नरैर्युवतीवृतैः ॥२९॥
नृत्यवादित्रगीतैश्च वयोभिश्च निनादिता ।
तत्रास्ते सुमहत्तीर्थं भैरवेण पुराकृतम् ॥३०॥

रत्नवैडूर्यमणिभिर्वेदिकोपवने तथा ।
तत्र स्नात्वा मुनिवरो विन्ध्यवासां प्रपूज्य च ॥३१॥
तत्राह्नं कर्मविधिवत् सम्पाद्य द्विजसत्तमः ।
ततस्तु मुनिशार्दूल तीर्थानां परमं शुभम् ॥३२॥

उत्तरस्यां दिशि स्थितं जानीहि कुटिलातटे ।
खगैर्मृगैस्तथा व्याघ्रैः पक्षिभिर्विनिनादितम् ॥३३॥
केदारसंज्ञकं तीर्थं तन्नामानं महेश्वरम् ।
तत्र स्नानविधिं चक्रे विधिवद् विधिदर्शकः ॥३४॥
ततस्तु पूर्वदिग्भागे केदारक्षेत्रतोऽमलम् ।
अमृताख्यं महातीर्थं सिद्धौघमुनिसेवितम् ॥३५॥
सर्वतीर्थाधिकं प्रोक्तं मोक्षदं सर्वदेहिनाम् ।
यस्य सन्दर्शनादेव नृणां भवति वाञ्छितम् ॥३६॥
तत्र स्नानं प्रकुरुते लभते वाञ्छितं फलम् ।
सर्वपापोपपापानां नाशनं कामदं परम् ॥३७॥
तत्रस्था मुनयः सर्वे अमृतत्वं प्रपेदिरे ।
मया दृष्टा मुनिश्रेष्ठ योषितः पशुपालकाः ॥३८॥
पक्षिणश्च पतङ्गाश्च ये चान्ये दुष्टजातयः ।
स्वेच्छयैवामृतं तत्र लेभिरे मुक्तकल्मषाः ॥३९॥
तत इत्यष्टतीर्थेषु स्नात्वा चैन्द्रं सरो ययौ ।
हंसकारण्डवाकीर्णं सारसैश्च बकैस्तथा ॥४०॥
जलजैः स्थलजैश्चैव कमलैरुपशोभितम् ।
नानापक्षिगणाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम् ॥४१॥
चतुर्दिक्षु विशेषेण शुद्धात्मानस्तपस्विनः ।
निवसन्ति महात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥४२॥
केचित् पठन्ति सुधियः केचिद्ध्यायन्ति योगिनः ।
केचिच्छिष्यान् महाप्राज्ञान् पाठयन्ति द्विजोत्तमाः ॥४३॥
केचिज्जपन्ति विधिवत् स्नात्वा ध्यात्वा कृताह्निकाः ।
केचित्पुराणनिपुणाः श्रावयन्ति जनान् बहून् ॥४४॥
संन्यासिनो जितक्रोधास्त्यागिनः परमार्थिनः ।
भिल्लैश्च विविधाकारैर्वृतं परमधार्मिकैः ॥४५॥
शिवभक्तिरतैर्वीरैर्भूतहिंसादिवर्जितैः ।
दिव्यरूपविभूषाभिः सुरकन्याभिरावृतम् ॥४६॥
मुनिचारणगन्धर्वकिन्नरैः परिपूरितम् ।
ऋषिभिः सप्तभिः सार्धं निवसन्ति महर्षयः ॥४७॥
तत्र स्नात्वा मुनिवरः शिवशर्मा विधानवित् ।
तत्राह्निकीं क्रियां कृत्वा दत्वा हुत्वाभिपूज्य च ॥४८॥

पुत्रपौत्रादिभिः साद्धंमेकलिङ्गं महेश्वरम् ।
अभिपूज्य पुनस्तत्र कं कं (किं किं) धाम ययौ मुनिः ॥४९॥
इति ते कथितं ब्रह्मन् तीर्थानामुत्तमः क्रमः ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
सर्वसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम् ॥५०॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय साधकः स्थिरमानसः ।
स याति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥५१॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
कृतानि तेन चान्यानि सुकृतानि महीतले ॥५२॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शृणुयात् सुकृती नरः ॥५३॥
ये शृण्वन्ति पठन्ति भक्तिनिरता दृष्ट्वैकलिङ्गं शिवम्
सर्वाभीष्टफलप्रदं मुनिवरैराराधितं सुव्रतैः ।
योगि (योग) ध्यानरतैर्वशीकृतमनोव्यालैः सुरै राजितं
सर्वाभिः सुरकन्यकाभिरनिशं संसेव्यमानं परम् ॥५४॥
पञ्चक्रोशमिते समस्तसुखदे नागह्लदाख्ये परे
क्षेत्रे ये निवसन्ति मुक्तिसुलभास्तैरावृतं सुप्रभैः ।
गाङ्गेयं सकलं जलं सुरतरुप्रायःपरं तद्वनं
शैवास्ते मनुजा भवन्ति सततं सिद्धि लभन्ते पराम् ॥५५॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये [ तीर्थक्रम- ] वर्ण [नं] नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

## अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच—

राष्ट्रश्येनी पुरा प्रोक्ता या देवी रिपुनाशिनी ।
तस्याः पूजाविधिं ब्रूहि बाप्पाणां कुलदैवतम् ॥ १ ॥
केन क्रमेण स मुनिः पूजां चक्रे विधानतः ।
तत्समासेन मे वायो संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ २ ॥

वायुरुवाच—

शृणु नारद यत्नेन वक्ष्यमाणं शुभप्रदम् ।
यस्य संश्रवणादेव सद्यो मुच्येत किल्विषात् ॥ ३ ॥
कुटिलाद्यष्टतीर्थेषु स्नात्वा इन्द्रसरस्यथ ।
पुत्रपौत्रादिभिः साद्धं राष्ट्र [श्ये] नां समाययौ ॥ ४ ॥

तत्रस्थं भैरवं तत्र प्रथमं प्रतिपूज्य च ।
अन्या[न]पि गणांस्तत्र सम्पूज्य मुनिसत्तम ॥ ५ ॥
मणिवैडूर्यखचिते स्फाटिते ( के ) स्वर्णभूषिते ।
रक्तवस्त्रावृतां देवीं गौराङ्गीं स्वर्णभूषणाम् ॥ ६ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ।
पद्मपत्रविशालाक्षीं सुनासां पिकभाषिणीम् ॥ ७ ॥
मुक्ताविद्रुमहाराढ्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।
खड्गचर्मधरां वीरां धनुर्बाणोपशोभिताम् ॥ ८ ॥
सदा प्रसन्नवदनां शरच्चन्द्रनिभाननाम् ।
चतुर्भुजां महादेवीं वाह्यादियुवतीवृताम् ॥ ९ ॥
किन्नरैश्च मुनिश्रेष्ठ गन्धर्वैरुपसेविताम् ।
ददर्श मुनिशार्दूलः स्वयं भक्त्या ननाम च ॥१०॥
आगमोक्तेन विधिना धूपगन्धादिभिः सह ।
नानाफलैश्च नैवेद्यैः क्षीरखण्डाज्यमिश्रितम् ॥११॥
ताम्बूलादि समर्प्याथ आरार्ति (त्रि) कमथाचरेत् ।
मूलमन्त्रं मुनिश्रेष्ठ कृताङ्गन्यासपूर्वकम् ॥१२॥
यथा शक्त्या प्रजप्याथ पुनः स्तुत्वा उवाच ह ।❀
मातर्मे दीयतामाज्ञा मि(त्वि)ह स्थातुं सदानघे ॥१३॥
निर्विघ्नं त्वत्प्रसादेन भवत्विति ननाम च ।
तदारभ्य च तीर्थेऽस्मिन् वासं चक्रे महामुनिः ॥१४॥
शिवशर्मा सहैवाथ अथर्वाङ्गिरसस्तथा ।
शिष्यप्रशिष्यैः सहितमेकलिङ्गं हृदि स्मरन् ॥१५॥

**नारद उवाच—**

साङ्गं विधिं च मे वायो त्वं सम्यग्वक्तुमर्हसि ।
समन्त्रन्यासमस्यास्तु महाभयनिवृत्तये ॥१६॥

**वायुरुवाच—**

हारीताद्यैश्च मुनिभिस्तक्षकेन्द्रादिभिस्तथा ।
सेविता परमा शक्तो राष्ट्रश्येनेति विश्रुता ॥१७॥
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
रमलान्तं वर इति यूकारं बिन्दुसंयुतम् ॥१८॥
ततस्तु मन्त्रविद्राष्ट्रश्येनां तं (तां) समुद्धरेत् ।
नमःपदं (रः) समुच्चार्यं (र्यो) ह्यष्टवर्णात्मको मनुः ॥१९॥

---

❀ पाण्डुलिपि में इसके बाद 'शिवशर्मोवाच' पाठ है ।

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं, पायसैस्तद्दशांशतः ।
जुहुयादर्चिते वह्नौ देवीसन्तोषहेतवे ॥२०॥
ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रीछन्द उच्यते ।
देवता राष्ट्रश्येनेति रं बीजं यूं च शक्तिकम् ॥२१॥
कीलकं व्यजनं प्रोक्तं चतुर्वर्गार्थसिद्धये ।
विनियोगस्तु कथितो राद्यङ्गै रङ्गकल्पना ॥२२॥
मातृकान्यासपूर्वं तु षडङ्गं परिकल्प्य च ।
भूतशुद्धिं विधायाथ प्राणस्थापनमाचरेत् ॥२३॥
ततः शुद्धतनू मन्त्री देवतां भक्तितो यजेत् ।
पञ्चोपचारमार्गेण वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥२४॥
नैवेद्यादिषु सर्वेषु स्यादादावमृतीक्रिया ।
मूलमन्त्रेण पश्चात्तु कवचेनावगुण्ठनम् ॥
अस्त्रेण रक्षणं प्रोक्तं सर्वत्रैतन्न विस्मरेत् ॥२५॥
अर्घ्योदकेन तद्देव्यै मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
स्वाहेति कल्पयेद् देव्यै न ममेत्यन्ततो वदेत् ॥२६॥
आचामं [च] ततो दद्यात्ताम्बूलं विनिवेदयेत् ।
अनुलेपं ततो दद्यान्माल्यानि विविधानि च ॥२७॥
निर्मितानि मनोज्ञानि दत्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।
ततोऽङ्गाद्यावृतीनां च पूजनं सम्यगाचरेत् ॥२८॥
षट्कोणगर्भितं कुर्यात् अष्टपत्रं मनोहरम् ।
चतुर्द्वारसमोपेतं चतुरस्रं तथा लिखेत् ॥२९॥
मातृकायाः पीठशक्तीस्तत्र सम्पूज्य साधकः ।
षट्कोणेषु षडङ्गानि ब्राह्म्याद्याश्चाष्टपत्रके ॥३०॥
चतुरस्रास्त्ररेखासु इन्द्राद्यायुधवाहनाम् ।
पञ्चावरणसंयुक्तां देवीं सम्पूज्य भक्तितः ॥३१॥
पुनः प्रपूज्य विधिवद् विससर्ज मुनीश्वरः ।
इति ते कथितं (तो) ब्रह्मन् पूजाविधिरनुत्तमः ॥३२॥
एवं यः पूजयेद् भक्त्या स याति परमं पदम् ।
रणे वादे तथाऽरण्ये भयं तस्य न जायते ॥३३॥
एवं यः शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।
तयोस्तु वरदा देवी सद्य एव न संशयः ॥३४॥

तत्रस्था ये प्रकुर्वन्ति जपहोमार्चनादिकम् ।
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि सर्वं तत्सङ्गतां व्रजेत् ॥३५॥
नवरात्रं यताहारो मुनिर्ध्यानपरायणः ।
........................................................ ॥३६॥

**सूत उवाच—**

इति (ती) दं वायुना प्रोक्तं पुराणं परमार्थदम् ।
ब्रह्मपुत्रस्तथा श्रुत्वा पूजां कृत्वा दिवं ययौ ॥३७॥
त्रिकालं पूजयेद् भक्त्या तस्यासाध्यं न किञ्चन ॥३८॥
कुमारीपूजनं तद्वद् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।
यद्यद् वाञ्छति (न्ति) तत्सर्वं ददाति परमेश्वरी ॥३९॥

महाभये महोत्पाते बलिं तत्र विधानतः ।
राजानो ये प्रकुर्वन्ति तेषां शत्रुभयं न हि ॥४०॥
रणे क्रूरादिकार्येषु वज्रहस्तां च पक्षिणीम् ।
स्मरेत् सर्वप्रयत्नेन सौम्यरूपां च सौम्यके ॥४१॥

जन्मकोटिसहस्त्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।
शारदाऽपि च नो वक्तुं शक्नोति तद्गुणार्णवम् ॥४२॥
मदुक्तं तत्समासेन ब्रह्मपुत्रावधारय ।
मयाऽपि शक्यते नैव वक्तुं तद्गुणवैभवम् ॥४३॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि सर्वज्ञोऽसि विशेषतः ।
अज्ञवत् पृच्छ्यते यस्मादेकलिङ्गस्य वैभवम् ॥४४॥
स्मारितं विस्मृतं विद्वन् लोकानां हितकाम्यया ।
ममापि जन्मसाफल्यं जातं जातं मुनीश्वर ॥४५॥

**वेदगर्भ उवाच—**

सुषुमाण महाप्राज्ञ मदुक्तमवधार्य च ।
गणपं पूर्वमभ्यर्च्य साङ्गमृष्यादिपूर्वकम् ॥४६॥
देवानामधिदेवो यः पूजितः स फलप्रदः ।
त्वमेवं कुरु ते विघ्नं न भविष्यति सर्वथा ॥४७॥

**इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये राष्ट्रश्येना-**
**पूजाविधि[illegible]ऽध्यायः ॥[illegible]॥**

## अथ त्रिंशोऽध्यायः

**सुषुमाण उवाच—**

भगवन् भवता पूर्वं निर्विघ्नं ते भविष्यति।
इति यत्कथितं तच्च इदानीं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

**वेदगर्भ उवाच—**

वक्ष्यामि परमं गुह्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्।
विनायकस्य माहात्म्यं यथाथर्वा (?) च्छ्रुतं मया ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा त्वं समासेन विधिबोधितवर्त्मना।
कुरुष्व शीघ्रं विपेन्द्र मदुक्तं गोप्यमादरात् ॥ ३ ॥
एकलिङ्गस्य माहात्म्यं सर्वदेवोत्तमस्य च।
नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं यदि (दी) च्छेदात्मनः सुखम् ॥ ४ ॥
य (?) इमं परमं गुह्यं श्रुत्वा गुरुमुखात्ततः।
सर्वानभीप्सितान् सद्यः प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥
पुरा कृतयुगे विप्राः कल्पे वैवस्वते युगे।
मुनयः कलिदोषेण भाग्यहीनाः सुदुःखिताः ॥ ६ ॥
राजानश्च महात्मानो हीनसत्त्वाः सुविह्वलाः।
सदाराः साग्निहोत्राश्चाथर्वाणं शरणं ययुः ॥ ७ ॥
एकलिङ्गंसमीपस्थं सुरासुरनमस्कृतम्।
तत्राथर्वाणमासाद्य मुनयो मुनिपुङ्गवम् ॥ ८ ॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ध्यायन्तं शिवमव्ययम्।
भगवन् कलिदोषेण हीनसत्त्वाः सुदुःखिताः ॥ ९ ॥
श्रिया बहिःकृताः सर्वे तपःसिद्धिविवर्जिताः।
प्रत्युपायमपश्यन्तस्त्वामद्य शरणं गताः ॥१०॥
यथा न तपसो हानिः स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च।
न भवेच्चाग्निहोत्रस्य तथोपायं वदस्व नः ॥११॥
एवमुक्तो मुनिवरो अथर्व [ा] वेदवित्तमः।
चिन्तयामास युक्तात्मा प्रत्युपायं तपस्विनाम् ॥१२॥
चिरं चिन्तयतस्तस्य महर्षेर्भावितात्मनः।
प्रादुर्बभूव मनसा मन्त्रराजः षडक्षरः ॥१३॥
तप्तचामीकरप्रख्यो वक्रतुण्डाय हूमिति।
चिन्त्यमानस्य तस्याप्याथर्वणस्य (?) च भूपते ॥१४॥

षडक्षरस्य जपतो मन्त्रराजस्य तस्य च ।
षडङ्गानि क्रमेणैव प्रादुरासीन्मुनीश्वरे ॥१५॥
हृदये वै नमस्कारं स्वाहाकारं च मूर्द्धनि ।
शिखायां च वषट्कारं बाह्वोस्तु कवचं तथा ॥१६॥
वौषट्कारस्तु नेत्राभ्यां फट्कारोऽस्त्रेण संयुतम् ॥१७॥
स लब्ध्वा तु महामन्त्रं सषडङ्गं षडक्षरम् ।
सहस्रकृत्वो मतिमान् जजाप स महामुनिः ॥१८॥
जपंश्चैव सदाऽपश्यद् गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
लम्बोदरं त्रिनयनं पाशाङ्कुशधरं परम् ॥१९॥
वरदाभयहस्तं च सर्वाभरणसंयुतम् ।
तं दृष्ट्वा वरदं देवमेकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥२०॥
वायव्यां दिशि संस्थं तं सौम्यं सौम्यगणावृतम् ।
तुष्टाव परया भक्त्या वेदमन्त्रैस्तदा नृप ॥२१॥
तेन स्तवेन सन्तुष्टः प्रोवाच च गजाननः ।
प्रीतोऽस्मि साम्प्रतं ब्रह्मन् स्तवेनानेन सुव्रत ॥२२॥
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ।
तत्सर्वं प्रार्थयस्वाशु मा विलम्बं कुरुष्व च ॥२३॥

**अथर्वाङ्गिरस उवाच—**

मन्त्रस्यास्य विधानं मे यथावदनुवर्णय ।
येनानुष्ठितमात्रेण सर्वसौभाग्यमाप्नुयाम् ॥२४॥

**गणेश उवाच—**

ऋषिं च देवं च षडक्षरस्य छन्दश्च शक्तिं च शृणुष्व चैव ।
ऋषिं च शुक्रं त्वभिधेयभावान्मां विद्धि देवं वरदं गणेशम् ।
अनुष्टुभं शान्तिकपौष्टिकाद्यैराथर्वणं मन्त्रमिमं पठन्ति ॥२५॥†
रायस्योषस्य दाता च निधिदानान्नदो मतः ।
रक्षहणो बलगहनो मन्त्रराजः षडक्षरः ॥२६॥

**राजोवाच—**

भगवन् कृपया मह्यं स्तुतिं तच्छ्रावयाशु माम् ।
येन स्तवेन सन्तुष्टो गजास्यः फलदो ह्यभूत् ॥२७॥

---

† यहाँ लिपिकार ने ⌣ चिह्न लगाया है जिससे प्रतीत होता है कि वह यहाँ कुछ लिख रहा था किन्तु किसी कारण लिख न सका ।

**वेदगर्भ उवाच—**

गजाननं सिद्धगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलसारभक्षितम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारणं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥२८॥
मूषकोत्तममारुह्य देवासुरमहाहवे ।
योद्धुकामं महावीर्यं वन्देऽहं गणनायकम् ॥२९॥

**सूत उवाच—**

चित्रवस्त्रविचित्राङ्गचित्रमालाविभूषितम् ।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥३०॥
इति स्तुत्वा तु नत्वा च कृताञ्जलिपुटस्ततः ।
मौनमास्थाय पुरतः स्थितो (तं) ब्रह्मर्षिणा तदा ॥३१॥
गणेशस्तु पुनस्तं तु बोधयामास भूपते ।

**गणेश उवाच—**

य एतेन चतुर्थीषु पक्षयोरुभयोरपि ॥३२॥
शतं जुहोत्यपूपानां वत्सराल्लभते धनम् ।
इत्याम्नातं महामन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा समाहितः ॥३३॥
ब्रह्मचर्यपरो दान्तः सत्यवाक् (ग्) गुरुपूजकः ।
ब्रह्माध्ययनसंयुक्तो हविरश्नन्ममाग्रतः ॥३४॥
जपेद् द्वादशसाहस्रं तत्पुरश्चरणं भवेत् ।
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु समाहितः ॥३५॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्हविषा पायसेन माम् ।
भोजयेत् कार्यसिद्ध्यर्थं मन्त्रप्रवरदं गुरुम् ॥३६॥
अतःपरं किं बहुनोदितेन ब्रवीमि मत्प्राप्तिकरं ह्युपायम् ।
बद्ध्वासनं स्वस्तिकपङ्कजं च सुखासनं ध्यानगतं विचिन्त्य ।३७।
मण्डूकादीनि विन्यस्य परतत्त्वान्तमादितः ।
तत्र इक्षुरसाब्धिं च उपर्युपरिभावतः ॥३८॥
तत्कर्णिकायामुदितप्रकाशं मदीयमन्त्रप्रवरं तु भूयः ।
षडक्षरं बिन्दुसुखासनाढ्यं ध्यायेद्दलेष्वष्टसु चाष्टशक्तीः ॥३९॥
पूर्वादिक (क्र) मतो ज्ञेयास्तासां नामानि ते ब्रुवे ।
अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ॥४०॥
ईशित्वं च वशित्वं च प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ।
इत्यष्टसिद्धयः प्रोक्ताः शक्तयोऽष्टाऽथ सम्ब्रुवे ॥४१॥

रुचिराऽव्याहता कामाऽमोघा शक्ता वरप्रदा।
बुभुक्षा जीर्णिकेत्यष्टौ गणनाथस्य शक्तयः ॥४२॥
भद्रो मानी वरो नाम इत्येते शक्तिचारकाः।
एवं स्वनाभौ हृदये गले वा, आस्ये भ्रुवोरन्तयोर्ललाटे।
समस्तदेहेस्वथवा शिखाग्रे, विचिन्तयेन्मामभिपूजयेच्च ॥४३॥
एवं हि युञ्जन् विनिहन्त्यघौघान्, मासेन निर्वाणमुपैति योगी।
इमं च मन्त्रप्रवरं महार्हं, ब्रवीमि ते तुष्टिकरं द्वितीयम् ॥४४॥
षडक्षरं गुह्यतमं नमोऽन्तमाढ्यं कलौ सिद्धिकरं नराणाम्।
एतेन मां मङ्कणको महर्षिरतोषयत्सागरतीरभूमौ ॥४५॥
तस्माद्दर्षि मंकणकं तमेव षडक्षरस्यास्य समामनन्ति।
अङ्गानि पञ्चैव समामनन्ति अन्यत्समं त्वस्य समानभावात् ।४६।
एतावुभौ मन्त्रवरौ सगुह्यौ मम प्रियौ वेदरहस्यजातौ।
साङ्गौ सकल्पौ सगुरूपदेशौ कल्पेन यो वेद स वेद वेदान् ॥४७॥
मनोगतं वा सकलं वदामि मन्त्रप्रसादेन जगद्धिताय।
मन्त्रस्य माहात्म्यमपीह वक्तुं न शक्यतेऽथर्वण सत्यमेतत् ॥४८॥

**वेदगर्भ (सूत) उवाच—**

प्रदाय मन्त्रप्रवरं माहात्म्यमा(महात्मना)थर्वणे चार्थविदे तदा मुदा।
संस्तूयमानो दिवि सिद्धसंघैरन्तर्दधे कुञ्जरराजवक्त्रः ॥४९॥

**वेदगर्भ उवाच—**

ब्रह्मन् पूजाविधानं मे सम्यग् बोधित (तु) मर्हथ (सि)।
संग्रहेणेह कथितं न मया विदितं प्रभो ॥५०॥

**[ अथर्वाङ्गिरस उवाच ]—**

अग्नि(ग्नी)शासुरवायव्यकोणेषु हृदयादिकम्।
नेत्रं मध्ये दिक्षु चास्त्रं सम्पूज्य पत्रमूलके ॥१५॥
अणिमाद्या द्वितीयं तु इन्द्राद्याश्चैव भु (भू) पुरे।
तृतीयावरणं प्रोक्तं वज्राद्याश्च चतुर्थकम् ॥५२॥
पञ्चमावरणे चाथ वाहनानि प्रपूज्य च।
पुनर्गन्धादिना यष्ट्वा ताम्बूलं विनिवेद्य च ॥५३॥
आत्मार्पणविधानेन आत्मानं विनिवेद्य च।
परिवारगणं सर्वमुपसंहारमुद्रया ॥५४॥
देवे लीनानि सम्भाव्य स्वीयहृत्सरसीरुहे।
विसृज्य च पुनर्यष्ट्वा ननाम च मुहुर्मुहुः ॥५५॥

अथर्वा गणपं तोष्य गणेशाल्लब्धवैभवः ।
सर्वानाहूय तत्रस्थान् पार्श्वस्थानभिपूज्य च ॥५६॥
गणेशस्य च वृत्तान्तं सर्वं तेषां न्यवेदयत् ।
मन्त्रदानक्रमेणैव आशीर्दत्ता पुनस्तदा ॥५७॥
ते तु तद्विधिना ग्राह्य (ह्य) सुखं प्राप्तुं परं मुदा ।
अतस्त्वमपि राजेन्द्र ! गणपं पूर्वमर्च्य च ॥५८॥
अनेन विधिना भक्त्या पश्चात्तां मातरं भज ।
विन्ध्याद्रिवासिनीं सम्यगेकलिङ्गं पुनर्यज ॥५९॥
एवं च तत्र निर्विघ्नं भविष्यत्ति न संशयः ।
गणेशस्य च माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च ॥
तेषां शिवः सहायः स्यादुमास्कन्दसगाणपैः ॥६०॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये गणेशमन्त्रकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

## अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

**सुषुमाण उवाच—**

कथं सा विन्ध्यवासा वै पूज्या मे वद साम्प्रतम् ।
असौ भाग्येन लोकोऽयं दारिद्र्येण च पीडितः ॥ १ ॥
येन सौभाग्यमतुलं महदैश्वर्यसम्भवम् ।
शास्त्रज्ञानं कवित्वं च यशस्यं लभते नरः ॥ २ ॥

**वेदगर्भ उवाच—**

साधु पृष्टं त्वया राजन् वक्ष्यामि सकलं तव ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वमङ्गिराय (?) महात्मने ॥ ३ ॥
अङ्गिरोऽपि स्वशिष्यायाथर्वणाय (?) ददौ स च ।
हारीताय स्वशिष्याय सोऽपि मह्यं ददौ पुनः ॥ ४ ॥
मयाऽप्यत्रैव विधिना जपहोमार्चनादिभिः ।
साधितं च विशेषेण जप्यतेऽद्यापि वै मया ॥ ५ ॥
इतः पूर्वं मया नो(प्रो)क्तो मन्त्रराजो न कस्यचित् ।
एवं परम्पराप्राप्तं मन्त्रं भक्त्या शृणुष्व मे ॥ ६ ॥
अयोग्याय न दातव्यो मन्त्रो वै नृपसत्तम ।
यत्नेन गोपय त्वं च रहस्यं शीघ्रसिद्धिदम् ॥ ७ ॥

अलसं मलिनं क्रुष्टं दम्भलोभसमन्वितम् ।
दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं कृपणं भोगलालसम् ॥ ८॥
असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम् ।
अन्यायेनार्जितधनं परदारापरं सदा ॥ ९॥
विदुषां वैरिणं नित्यं ह्यज्ञं पण्डितमानिनम् ।
भ्रष्टव्रतं कष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम् ॥१०॥
बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम् ।
एवमाद्यगुणैर्युक्तं शिष्यत्वेन परिग्रहात् ॥११॥
गृह्णीयाद् यदि तद्दोषः प्रायो गुरुमपि स्पृशेत् ।
अमात्यदोषो राजानं जायादोषः पतिं यथा ॥
तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१२॥
तस्मात् शिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्य तु परिग्रहेत् ॥१३॥
कायेन मनसा वाचा गुरुशुश्रूषणे रतम् ।
अस्तेयवृत्तिमास्तिक्यं सदा धर्मकृतोद्यमम् ॥१४॥
ब्रह्मचर्यरतं नित्यं सत्यव्रतमकल्मषम् ।
प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाशयम् ॥१५॥
परोपकारनिरतं परार्थविगतस्पृहम् ।
स्ववित्तचित्तदेहैश्च परतोषकरं गुरोः ॥१६॥
ईदृग्विधाय शिष्याय मन्त्रं दद्यात्तु नान्यथा ।
यद(द्य)न्यथा वदेत्तस्मिन् देवताशाप आपतेत् ॥१७॥
माधवे यस्य या भक्तिर्महादेवे च या परा ।
मातापित्रोश्च या भक्तिस्तथा कार्या निजे गुरौ ॥१८॥
अथ मन्त्रं प्रवक्ष्यामि विन्ध्यवासास्वरूपदम् ।
उपदेशविधानेन गृहाण नृपसत्तम ॥१९॥
सर्वसौभाग्यजनकं सर्वलोकवशंकरम् ।
विद्यात् सिद्धिप्रदं नृणां महदाज्ञाकरं मनुम् ॥२०॥
उत्तिष्ठ पुरुष(षे)त्युक्त्वा किं स्वपिषीति चोच्चरेत् ।
भयं मे समुपेत्यन्ते (?) स्थितं पदं समुच्चरेत् ॥२१॥
यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवतीति (?) च ।
शमयाग्निवधूयुक्तं, सप्तत्रिंशाक्षरात्मकः (?) ॥२२॥
बृहदारण्यको नाम ऋषिरस्य प्रकीर्तितः ।
अन्त्यानुष्टुप् तथा चोक्तं छन्दो मन्त्रस्य देवता ॥२३॥

विन्ध्यवासा परानन्दस्वरूपा नृपसत्तम ।
ॐकारं विन्दुसंयुक्तं वीजं प्रोक्तं समृद्धिदम् ॥२४॥
स्वाहाशक्तिरिह प्रोक्ता वा तन्मे (?) इति कीलकम् ।
चतुर्वर्गाप्तये प्रोक्तं विनियोगोऽत्र वै नृणाम् ॥२५॥
षड्भिश्चतुर्भिरष्टाभिरष्टभिः षड्भिरिन्द्रियैः ।
मन्त्रार्णैरङ्गक्लृप्तिः स्याज्जातियुक्तैर्यथाक्रमम् ॥२६॥

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिनयनां सौदामिनीसन्निभां
चक्रं शङ्खवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां बिभ्रतीम् ।
ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुतां
ध्याये विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं पार्श्वस्थपञ्चाननाम् ॥२७॥

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
जुहुयाद्धविषा मन्त्री शालिभिः सर्पिषा तिलैः ॥२८॥
पीठमित्थं यजेत्सम्यक् नवशक्तिसमन्वितम् ।
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः ॥२९॥

सुप्रभावो (वा) जया (पा ?) सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः ।
पूर्वादिक्रमतोऽभ्यर्च्य तत्रावाह्यार्चयेत्पराम् ॥३०॥

पञ्चोपचारमार्गेण पश्चादावृत्तयो(तिम)र्चयेत् ।
षट्कोणेषु षडङ्गं स्यात् प्रथमावरणार्चनम् ॥३१॥
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम् ।
एवं षडङ्गमाराध्य दलमूलेष्विमाः पुनः ॥३२॥
आर्या दुर्गा तथा भद्रा भद्रकाली तथाम्बिका ।
क्षेमान्या वेदगर्भा च क्षेमंका(क)र्यष्टशक्तयः ॥३३॥

अस्त्राणि पत्रमध्येषु चक्रशङ्खासिखेटकान् ।
बाणकोदण्डशूलानि कपालान्तानि पूजयेत् ॥३४॥
ब्राह्म्याद्याः स्युर्दलाग्रेषु लोकपालास्ततः परम् ।
ततस्तेषामथास्त्राणि वाहनानि विधानतः ॥३५॥

चतुरस्र : समभ्यर्च्य पुनर्गन्धादिना यजेत् ।
सम्पूज्य भक्त्या विधिवत् नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥३६॥
राजोपचारानखिलान् दर्शयित्वा नृपोत्तम ।
स्तुत्वा यथावत् प्रणमेद् भक्तियुक्तस्तु साधकः ॥३७॥
ततः समुद्धरेद् देवीं परिवारसमन्विताम् ।
संहारमुद्रया राजन् स्वीयहृत्सरसीरुहे ॥३८॥

आनीय च पुनर्यष्ट्वा मानसैरुपचारकैः ।
आत्मदैवतयोरैक्यं सम्भाव्य विधिपूर्वकम् ।
गुरुं चैव तथाभ्यर्च्य ततः पूजां समापयेत् ॥३९॥
एवं प्रतिदिनं कुर्वन् कृतकृत्यो भवेद् ध्रुवम् ।
विन्ध्यवासाप्रसादात्तु शिव एव भवेद् ध्रुवम् ॥४०॥

राजोवाच—

भगवन् भवता पूर्वं बीजमन्त्रस्य विस्तरात् ।
विधानं सम्यगाख्यातं श्रुतं चैव मयाऽप्युत ॥४१॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सफलं जीवितं मम ।
त्वत्कृपालेशसम्पर्कात् सत्यमेतद् वदाम्यहम् ॥४२॥
नाममन्त्रस्य माहात्म्यं विधानमपि तस्य च ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४३॥
भक्तोऽस्मि तव दासोऽस्मि त्वमेव शरणं मम ॥४४॥

वेदगर्भ उवाच—

नाममन्त्रस्य माहात्म्यं निरुक्तिर(म)पि वच्मि ते ।
येन विज्ञान(त)मात्रेण भवाम्भोधौ न मज्जसे ॥४५॥
एकारेणोदिता माया ककारेणोच्यते शिवः ।
लिमित्याश्लेषवाच्यत्वात्तयोराश्लेषकारणात् ॥४६॥
[गो] गतिः सर्वत्रेति यदेकलिङ्ग इति स्मृतः ।
इत्येकलिङ्ग इति यत् स्वप्रकाशोऽत्र वर्ण्यते ॥४७॥
एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चापि दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥४८॥❀
एकमेवाद्वितीयं यन्नेह नानास्ति किञ्चन ।
इति यत् पठ्यते वेदे तदेवाविरभूदिह ॥४९॥
इति ते नाममाहात्म्यं दिङ्मात्रेण प्रकाशितम् ।
को वा (केन) विस्तरतो वक्तुं शक्यते बाष्पवंशज ॥५०॥

राजोवाच—

नाममन्त्रस्य यद्गोप्यं (प्यो) महिमानं (मायं) श्रुतं (तो) मया ।
त्वत्प्रसादादहं (थो) ब्रह्मन् विधानं चास्य कथ्यताम् ॥५१॥

---

❀ द्रष्टव्य ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १२।

एकलिङ्गैकलिङ्गेति ये जपन्त्यतिभक्तितः ।
तेषां पुरः समागत्य क्रीडते स जगत्प्रभुः ॥५२॥
वर्णान्तरसमायोगान्मन्त्रश्चाष्टाक्षरो भवेत् ।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि हिताय सकलस्य च ॥५३॥
परा प्रासादवीजं (?) तु नामादौ योज्य संजपेत् ।
तदे (दी) शानाख्यदेवस्य रूपं भवति भूपते ॥५४॥
नामान्ते स चतुर्थ्यन्तं (न्तः) नत्यन्तं (न्तः) च तथा स्मृतम् (तः) ।
अष्टाक्षरो भवेन्मन्त्रः सर्वसौभाग्यदायकः ॥५५॥
प्रणवाद्यो यदा जप्यस्तदा तत्पुरुषस्य तु ।
स्वरूपं तद्विजानीयात् सर्वकामार्थसिद्धये ॥५६॥
ह्रीमादौ तु तथा योज्य जप्यते वै यदा तदा ।
अघोरस्य स्वरूपं तज्जानीहि भुवि दुर्लभम् ॥५७॥
वागादौ तु यदा ध्यायेत् सद्योजातस्य धाम तत् ।
श्रीवीजमादौ संयोज्य यदा संजप्यते तदा ॥५८॥
वामदेवस्तथा (दा) ध्येयः सर्वतः सुखमिच्छता ।
पञ्चानामपि मन्त्राणामृषिर्ब्रह्मा समीरितः ॥५९॥
छन्दो गायत्रमाख्यातं देवः स्यादेकलिङ्गकः ।
अकारो बीजमित्युक्तो मकारः शक्तिरीरिता ॥६०॥
उकारः कीलकं प्रोक्तं विनियोगोऽत्र उच्यते ।
चतुर्वर्गाप्तये चैव यथावदनुपूर्वकम् ॥६१॥
प्रणवांशैर्द्विरावृत्या षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
एवं तु प्रणवाद्यस्य मन्त्रस्य विधिरीरितः ॥६२॥
तत्पुरुषमथो ध्यायेत् सर्वसम्पत्तिहेतवे ।
मायाद्यस्य च मन्त्रस्य हं बीजं शक्तिरीमिति ॥६३॥
रेफस्तु कीलकं प्रोक्तमन्यत् पूर्ववदेव हि ।
सद्योजातस्य मन्त्रस्य प्रणवांशैः षडंशकम् ॥६४॥
कुर्याद् यथाविधिः (धि) पूर्वं वामदेवस्य च ब्रुवे ।
शकारो बीजमित्युक्तमीकारः शक्तिरुच्यते ॥६५॥
रेफः कीलकसंज्ञः स्यादन्यान् पूर्ववदाचरेत् ।
अथेशानस्य मन्त्रस्य बीजस्यैवं विधिः स्मृतः ॥६६॥
एवं गुरुमुखात् प्राप्य यो जपेन्मन्त्रनायकम् ।
स एव पूज्यः सर्वेषां ब्रह्मादीनां न संशयः ॥६७॥

मयाप्येवं प्रतिदिनं जप्यते नृपसत्तम ।
मन्त्रस्यास्य प्रभावेन त्रिकालज्ञानमाप्य च ।
स्वं स्वं पदमनायासात् [गताः] शक्रादयः सुराः ॥६८॥
त्वमप्येवं नृपश्रेष्ठ मदुक्तमवधार्य च ।
एकलिङ्गं समाराध्य भुंक्ष्व भोगान् यदृच्छया ॥६९॥

राजोवाच—

भगवन् भवता पूर्वं मृष्यादिविनियोजनम् ।
कथितं तत्र वीजादि विविच्याख्यातुमर्हसि ॥७०॥

ऋषिरुवाच—

ईश्वरो जगतां बीजं शक्तिर्गुणमयी त्वजा ।
परमात्मा तथा बुद्धिर्वायुः कुण्डलिनीति च ॥७१॥
चतुर्विधे बीजशक्ती सर्वमन्त्रेषु चिन्तयेत् ।
ज्ञातव्यां (व्ये) सर्वमन्त्रेषु बीजशक्ती ततो निजे ॥७२॥
अन्यथा सिद्धिरोधः स्यात् (न्) नात्र कार्या विचारणा ॥७३॥
एवं सञ्चिन्त्य सुधिया पुरश्चर्यां समाचरेत् ।
ततो होमं स्त(त)र्पणं च पूजा(जां) ब्राह्मणभोजनम् ।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं पुरश्चरणकृद् भवेत् ॥७४॥
नाध्यातो नार्चितो मन्त्रः सुसिद्धोऽपि प्रसीदति ।
नाजप्तः सिद्धिदानेदु(प्सु)र्नाहुतः फलदो भवेत् ॥७५॥
पूजाहोमजपं ध्यानं तस्मात् कर्मचतुष्टयम् ।
प्रत्यहं साधकः कुर्यात् स्वयं चेत् सिद्धिमिच्छति ॥७६॥
वृथा न कालं गमयेन् निद्रालस्यादिना तथा ॥
षड्ऋतुप्रसवैर्द्रव्यैर्यथावदनुपूजयेत् ॥७७॥
अनिर्माल्यं सनिर्माल्यमर्चनं द्विविधं स्मृतम् ॥७८॥
दिव्यैर्मनोभवैर्द्रव्यैर्गन्धपुष्पैः स्रगादिभिः ।
यदर्चनमनिर्माल्यं दिव्यभोगापवर्गदम् ॥७९॥
ग्राम्यारण्यादिसम्भूतैर्यागद्रव्यैर्मनोरमैः ।
भक्तैर्यत् क्रियते सम्यक् सनिर्माल्यं तदर्चनम् ॥८०॥
जातमात्राणि पुष्पाणि घ्रातान्येव निसर्गतः ।
पञ्चमिश्रमहाभूतैर्भानुना शशिना तथा ॥८१॥
प्राणिभिश्च द्विरेफाद्यै (पौ)ष्पैरेव न संशयः ।
घ्रातपुष्पात्फलं सिद्ध्येदल्प(ल्पं) नो मानसो (से) तथा ॥८२॥

तस्मादपरिहार्यत्वादन्यथा चानुपायतः ।
अल्पबुद्धित्वतो नृणां बाह्यपुष्पैर्भवेत्क्रिया ॥८३॥
सा क्रिया त्रिविधा ज्ञेया फलनिष्पत्तिहेत्तवे ।
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि सर्वं यद्य(द)नुपूर्वशः ॥८४॥
यागोपकरणैः सर्वैः क्रियमाणोत्तमा मता ।
यथालब्धैर्विनिष्पाद्या दृष्टैः पूजा तु मध्यमा ॥८५॥
मन्त्रपुष्पात्तु निष्पाद्या पूजा चाधमसंज्ञिता ।
इत्यधिकारिभेदेन त्रिविधा परिकीर्तिता ॥८६॥
इत्येतत् कथितं दिव्यं रहस्यं सर्वसिद्धिदम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्त्या नित्यं प्रपूज्य च ।
न तस्य विद्यते किञ्चिद् दुर्लभं भुवनत्रये ॥८७॥
क्षीणायुः प्राप्तमृत्युर्वा महारोगहतोऽपि वा ।
सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥८८॥
त्वमपि श्रद्धया वत्स पूजनं शैवमुत्तमम् ।
कुरुष्व त्वं मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥८९॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्यें बाष्पान्वयो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

## अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

**शौनक उवाच—**

कोऽसौ राजाऽभवत्तस्य कुम्भकर्णस्य चान्वये ।
विरुद्धधर्मा क्रूरात्मा विस्तरेण वदस्व मे ॥ १ ॥

**सूत उवाच—**

योगराज इति ख्यातः क्रूरनक्षत्रयोगतः ।
भवान्याः शापयोगेन कलेश्चापि प्रभावतः ॥ २ ॥
दुष्टभावं समासाद्य देवान् विप्रान् मुनीश्वरान् ।
मिथ्याभिशापतः केषां केषाञ्चिच्चेष्टया रुषा ॥ ३ ॥
त्रासयामास दुर्बुद्धिः शूद्राचारपरायणः ।
वृत्तिलोपश्च देवानां ब्राह्मणानां चकार ह ॥ ४ ॥
विरोधी सर्वलोकानां दुष्टानां प्रतिपालकः ।
मद्यपानपरो नित्यं वेश्याक्रीडनकौतुकी ॥ ५ ॥

द्यूतक्रीडा तथा चौर्यं कुलस्त्रीणां च धर्षणम् ।
आखेटनं वा प्राणीनां घातनं तस्य भूपतेः ॥ ६ ॥
एवं दुर्वृत्ततस्तस्य म्लेच्छैः सह विरोधतः ।
आक्रामितः सर्वदेशो युद्धं चापि महद्ध्यभूत् ॥ ७ ॥
तस्य वापप्रभावेण स्वपुत्रेण निपातितः ।
रणवीरेति नाम्नाऽसौ धर्मात्मा सत्यसङ्गरः ।
देवता गुरुभक्तश्च श्रद्धावान् शिवपूजकः ॥ ८ ॥
हितैषी प्रियवाग्दाता शूद्राचारपरो जयी ।
देवानां ब्राह्मणानां च ददौ वृत्ति च संस्कृताम् ॥ ९ ॥
प्रतिवर्षमेकलिङ्गे यात्रां शिवमहोत्सवे ।
कृत्वा पुनः स्वराष्ट्रे च शशास पृथिवीमिमाम् ॥१०॥

**शौनक उवाच—**

कोऽसौ महोत्सवःशम्भोः कथं कस्मी (स्मि) न्नृतौ दिने ॥११॥
किं फलं तस्य म (मा)हात्म्यं विधिना केन वा भवेत् ।

**सूत उवाच—**

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन् शिवस्य चरितं महत् ॥१२॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वसम्पत्तिवर्धनम् ।
नरनारीनृपाणां च मनोरथफलप्रदम् ॥१३॥
व्रतं पाशुपतं नाम शिवलोकगतिप्रदम् ।
शिवभक्तैः सदा कार्यमेकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥१४॥
वसन्तर्तौ मधोः कृष्णे प्रतिपद्यां (दि) रवौ करे ।
धेन्वा संस्मारितो देव एकलिङ्गसमुद्भवः ॥१५॥
तदा देवाः समाजग्मुर्ब्रह्मेन्द्राद्या महर्षयः ।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरा यक्षपन्नगाः ॥१६॥
दिव्यदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टीरिवाकिरन् ।
बहुकालवियोगेन दर्शनं तस्य चाभवत् ॥१७॥
शम्भुं दृष्ट्वा ततो देवा हर्षनिर्भरमानसाः ।
पूजां चक्रुर्यथान्यायं स्तुत्वा दिव्यैः स्तवैर्विभुम् ॥१८॥
तदा महोत्सवं चक्रु (क्रू) रात्रौ जागरणेन च ।
गीतवाद्यादिभिः शम्भुं तोषयन्मु (यन्तो) मुहुर्मुने ॥१९॥
प्रतिपद्या (दा) दितिथिषु पूजां चक्रुर्दिवौकसः ।
यस्यां यस्यां तिथौ येन येन शम्भुः प्रतोषितः ॥

तस्यास्तस्यास्तिथीशत्वं ददौ तेषां सदाशिवः ॥२०॥
चतुर्दश्यां स्वयं देवो महोत्सवमथाकरोत् ।
हर्षयामास तान् देवान् मुमुदे शिरसा (शिवया) सह ॥२१॥

**शौनक उवाच—**

शम्भुना स्थापिता येऽत्र तिथीशास्तान् वदस्व मे ।
येषां विज्ञानतः सूत फलमाप्नोति मानवः ॥२२॥

**सूत उवाच—**

अग्निर्ब्रह्मा तथा गौरी गणेशः पन्नगेश्वरः ।
स्कन्धौ (न्दो) रविर्भैरवश्च दुर्गा धर्मोऽथ विश्वभृत् ॥२३॥
विष्णुर्मन्मथशम्भुश्च चन्द्रश्च पितरस्तथा ।
प्रतिपद्याद्यमान्तं (?) तु तिथीशाः परिकीर्तिताः ॥२५॥
तासु तेषां पूजनाच्च एकलिङ्गः प्रसीदति ।
संवत्सरफलं पूर्णं प्राप्नुवन्ति नरोत्तमाः ॥
तस्य व्रतविधिं वक्ष्ये पक्षकोत्सववर्तने ॥२६॥
प्रतिपद्या (दा) दिसर्वासु तीथीशु (तिषु) क्रमतो यजेत् ।
सम्भारं सर्वमासाद्य यात्रायाश्च शिवस्य च ॥२७॥
पूर्वेद्युः स्नानशौचादीन् कृत्वा रात्रौ हविष्यभुक् ।
ब्रह्मचारी भूमिशायी यज्जाग्रतमनुस्मरन् ॥२८॥
प्रातरुत्थाय गुर्वादीन् नत्वाह्निकं समाचरेत् ।
पुण्याहं वाचयित्वा च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥२९॥
गणेशादींश्च सम्पूज्य कुलदेवांस्तथा द्विजान् ।
सुवासिनीः कुमारीश्च सन्तोष्य दत्तदक्षिणः ॥३०॥
सङ्कल्पं कारयेद् भक्त्या अद्येत्यादि (?) प्रयोगतः ।
नियमं किञ्चिदालम्ब्य यात्रां कुर्यात् प्रसन्नधी [ः] ॥३१॥
जय शम्भो महादेव पार्वतीश जगत्पते ।
एकलिङ्ग कृपासिन्धो त्राहि मां शरणागताम् (तम्) ॥३२॥
इत्युच्चार्य शनैर्मार्गे गच्छन्नौद्धत्यवर्जितः ।
दयावान्नकृतद्रोहो वाद्याद्यैस्तोषयन् शिवम् ॥३३॥
रात्रौ जागरणं कुर्वन् गीतनृत्यादिभिर्मुदा ।
पौराणैर्वा कथालापैर्भक्तिभावसमन्वितैः ॥३४॥
प्राप्य नागह्रदं क्षेत्रमुपवासं चरेन्मुदा ।
प्रातरुत्थाय श्रद्धावान् प्रातःकृत्यादिकाः क्रियाः ॥३५॥

कृत्वेन्द्रसरसि स्नानं विधिना भस्मधारणम् ।
रुद्राक्षांश्च तथा शीर्षे कर्णयोर्वक्षसी (सि) भुजे ॥३६॥
प्राणायामादि सन्ध्या (न्ध्यां) च कुर्यात्तर्पणमेव च ।
श्राद्धं कृत्वा यथाशक्त्या दानं दद्यात्सुभक्तितः ॥३७॥
तत्रेन्द्रेशं समभ्यर्च्य भैरवादीन् ततो यजेत् ।
विन्ध्यवासां चैकलिङ्गं षोडशैरुपचारकैः ॥३८॥
सन्तोष्य गीतनृत्याद्यैः स्तुत्वा नत्वाभिनन्द्य च ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् पायसाद्यैः सुसंस्कृतैः ॥३९॥
गोभूहिरण्यदानानि दत्वा नत्वाऽभिनन्दयेत् ।
स्वकुटुम्बसमायुक्तः पारणं च समाचरेत् ॥४०॥
रात्रौ जागरणं कुर्याच्छिवसंकीर्तनादिभिः ।
एवं यः कुरुते भक्त्या न विघ्नैः परिभूयते ॥४१॥
धनधान्यसमृद्धैश्च स्वजनैः सह मोदते ।
ततः प्रतिपदायान्तु प्रातरुत्थाय दैहिकम् ॥४२॥
आवश्यकं च कृत्वाऽथ स्नायादिन्द्रसरोवरे ।
आह्निकं च निवृत्याथ (निर्वर्त्याथ) एकलिङ्गं समुच्चरेत् ॥४३॥
एकलिङ्गस्य चाग्नेय्यामग्नीश्वरमथार्चयेत् ।
अग्निना पूजितः शम्भुः प्रादुर्भूतस्तदग्रतः ॥४४॥
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ।
शिवस्य वचनं श्रुत्वा प्रणम्याग्निरुवाच ह ॥४५॥
ओजस्तेजो बलं ज्ञानं यज्ञादिकर्मसाधनम् ।
त्वत्पादपूजनं चास्तु सान्निध्यं तेऽस्तु मे सदा ॥४६॥

शिव उवाच—

तथाऽस्तु तव नाम्नाऽहं स्थास्याम्यत्रैव पावक ।
अग्नीश्वरेति मां भक्त्या पूजां कुर्वन्ति ये नराः ॥४७॥
तेषां सौख्यं धनं धान्यमारोग्यं चाङ्गपाटवम् ।
नाग्निजं च भयं तेषां पापरोगादि किञ्चन ॥४८॥
ममाग्रे श्राद्धदानादि जपहोमादिकाः क्रियाः ।
विधिना ये प्रकुर्वन्ति लभते (न्ते) वाञ्छितं फलम् ॥४९॥

[ सूत उवाच ]—

इत्युक्त्वा लिङ्गरूपेण स्थितस्तत्रैव शङ्करः ।
प्रतिपद्यां (दि) मधोः पूजां विशेषेण समाचरेत् ॥५०॥
रात्रौ जागरणं गीतवाद्याद्यैस्तोषयेच्छिवम् ।
एवं यः पूजयेद् भक्त्या सर्वान् कामान् समश्नुते ॥५१॥

द्वितीयायां विशेषेण कृत्वाह्निकविधानतः।
एकलिङ्गाच्च ईशान्यां ब्रह्मेश्वरमथार्चयेत् ॥५२॥
स्वयंभुवा पुराराध्य(द्धो) रुद्रपाठादिभिः शिवः।
प्रसन्नवरदः शम्भुराविर्भूतस्तदग्रतः ॥५३॥
तत्र श्राद्धं जपो होमो विद्यादानादिकं कृतम्।
तदक्षयफलं याति ब्रह्मेशस्य प्रसादतः ॥५४॥
रात्री जागरणं कुर्यात् तू (तौ) र्यत्रिकयुतो मुदा।
पारायणं वा वेदस्य पुराणश्रवणादिभिः ॥५५॥
भुक्त्वा भोग्यान् यथाकामान् शिवलोके महीयते।
तृतीयायां विन्ध्यवासां पूजयेद् भुक्तिमुक्तिदाम् ॥५६॥
आगमोक्तेन विधिना षोडशैरुपचारकैः।
सुवासिनीः कुमारीश्च पूजयेद् देवताधिया ॥५७॥
भूषणैः पट्टकूलैश्च दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
गीतनृत्यादिना रात्रौ महोत्सवं समाचरेत् ॥५८॥
सौभाग्यं वर्धते तस्य पुत्रपौत्रादिसम्पदः।
अवैधव्यं च नारीणां सर्वमाङ्गल्यवर्धनम् ॥५९॥
शतचण्ड्यादिकं कर्म जपहोमादिकं कृतम्।
विन्ध्यवासाप्रसादेन तदक्षयफलं लभेत् ॥६०॥
चतुर्थ्यां तु गणेशस्य पूजनं विधिवच्चरेत्।
दूर्वाङ्कुरै रक्तपुष्पैः सिन्दूरैर्मोदकैः फलैः ॥६१॥
नालिकेरैः पानकैश्च तर्पयेद् विघ्ननायकम्।
सङ्गीताद्यैश्च सन्तोष्य स्तुत्याद्यैश्च सुभक्तितः ॥६२॥
निर्विघ्नं जायते तस्य सर्वकार्येषु सर्वदा।
पञ्चम्यां तक्षकेशस्य पूजनं कारयेद् बुधः ॥६३॥
कुण्डे तक्षकके स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् पायसाद्यैश्च षड्रसै [:] ॥६४॥
गीतं तुर्यादिभिस्तत्र जागरं कारयेन्निशि।
नागानां वाऽथ सर्पाणां भीतिस्तस्य न जायते ॥६५॥
सौभाग्यं धनधान्यादि रत्नानि विविधानि च।
लभते वाञ्छितं सर्वमेकलिङ्गप्रसादतः ॥६६॥
ततः षष्ठ्यां कुमारस्य पूजा कार्या विशेषतः।
तत्र श्राद्धादिकं कर्म दानानि विविधानि च ॥६७॥

दत्तमक्षयतां याति शिवलोके महीयते।
तस्य चौरभयं नास्ति व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥६८॥
शत्रुतो न भयं तस्य संग्रामे विजयी भवेत्।
व्यवहारे रणे दुर्गे सर्वत्रैव जयी भवेत् ॥६९॥
सप्तम्यां भास्करं भक्त्या पूजनं विधिवच्चरेत्।
रक्तचन्दनदूर्वाभिः पुष्पै रक्ताश्वमारजैः ॥७०॥
अर्घ्यैः प्रीणाति सविता समन्त्रैर्मण्डलादिभिः।
जपादिकं कृतं तत्र तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥७१॥
अष्टम्यां भैरवेशस्य पूजा कार्या विशेषतः।
आगमोक्तेन विधिना बलिदानादिभिस्तथा ॥७२॥
रात्रौ च गीतनृत्याद्यैर्महोत्सवं समाचरेत्।
सन्तोष्य भैरवं भक्त्या सर्वान् कामान् समश्नुते ॥७३॥
सर्वापद्भ्यो विमुच्येत सर्वत्र विजयी भवेत्।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्निर्विघ्नैः परिभूयते ॥७४॥
नवम्यां पूजयेद् दुर्गां शुचिः प्रयतमानसः।
षोडशैरुपचारैस्तु बलिदानादिभिर्मुदा ॥७५॥
होमं कुर्याच्च विधिवच्छतचण्ड्यादिमान्त्रिकम्।
जपादिकं कृतं तत्र तदक्षयफलं भवेत् ॥७६॥
दशम्यां पूजयेद् भक्त्या धर्मेश्वरं द्विजोत्तम।
दक्षिणे चैकलिङ्गस्य धर्मेणाराधितः पुरा ॥७७॥
तस्य पूजनमात्रेण यमभीतिर्न जायते।
न पापेषु भवेद् बुद्धिः सदा धर्मे मतिर्भवेत् ॥७८॥
एकादश्यां विशेषेण विष्णोराराधनं चरेत्।
पञ्चामृतैः सुगन्धैश्च तुलसीशतपत्रकैः ॥७९॥
नानाभूषणवस्त्राद्यैर्धूपदीपैः सुभक्तितः।
नैवेद्यैः षड्रसोपेतैः पायसैर्मधुरान्वितैः ॥७०॥
नीराजनादिभिः कृत्वा उपवासं समाचरेत्।
रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिभिर्मुदा ॥८१॥
श्राद्धं दानं जपो होमः कृतं तदक्षयं भवेत्।
द्वादश्यां पूजयेद् भक्त्या लक्ष्मीनारायणं हरिम् ॥८२॥
षोडशैरुपचारैस्तु सम्पूज्य स्तवनादिभिः।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या पायसाद्यैर्मनोरमैः ॥८३॥

दीनाननाथान् सन्तोष्य पारणं च समाचरेत् ।
संगीतविधिना रात्रौ जागरं कारयेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥८४॥
त्रयोदश्यां तु कामेशं पूजयेत्सुसमाहितः ॥८५॥
पूर्वतश्चैकलिङ्गस्य कुमारस्य च दक्षिणे ।
कामेनाराधितः शम्भुस्तन्नाम्नाऽभून्महेश्वरः ॥८६॥
पूजयेत्तं विधानेन रात्रौ जागरणादिभिः ।
महोत्सवं गीतनृत्यैरितिहासकथानकैः ॥८७॥
सुखसौभाग्यसौन्दर्यं सौजन्यं लभते नरः ।
प्रियत्वं सर्वलोकेषु कौशल्यं स्यात् कलासु च ॥८८॥
तत्र दानादिकं कर्म शिवाप्रियकरं भवेत् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति वै नरः ॥८९॥
चतुर्दश्यां विशेषेण एकलिङ्गं समा (म) र्चयेत् ।
पञ्चशुद्धिं विधायादौ ततो यजनमाचरेत् ॥९०॥

**शौनक उवाच—**

पञ्चशुद्धिः कथं कुर्याद् येन पूजाफलं लभेत् ।
विधानं तस्य मे ब्रु( ब्रू ) हि सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥८१॥

**सूत उवाच—**

आत्मस्थानं द्रव्यमन्त्रं देवशुद्धिश्च पञ्चमी ।
यावन्न कुरुते ब्रह्मन् तावद् देवार्चनं कुतः ॥९२॥
स्नानभूतेन संशुद्धिः प्राणायामादिभिस्तथा ।
षडङ्गाद्यखिलैन्यसैरात्मशुद्धिरुदीरिता ॥९३॥
सन्मार्जनाऽनुलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत् कृतम् ।
वितानधूपदीपाद्यैः पुष्पमालादिशोभितम् ॥९४॥
पञ्चवर्णरजश्चित्रं स्थानशुद्धिरितीरिता ।
पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रैर्विधानवित् ॥९५॥
दर्शयेद धेनुमुद्रां वै द्रव्यशुद्धिरुदीरिता ।
ग्रथिता मातृकावर्णैर्मू (र्मू) लमन्त्राक्षराणि च ॥९६॥
क्रमोत्क्रमत्रिरावृत्तिर्मन्त्रशुद्धिरुदीरिता ।
पीठे देवं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित् ॥९७॥
मूलमन्त्रेण दीपिन्या मालिन्याऽर्घोदकेन च ।
त्रिवारं प्रोक्षयेद् विद्वान् देवशुद्धिरितीरिता ॥९८॥

पञ्चशुद्धिं विधायेत्थं पश्चाद् यजनमाचरेत् ।
सा पूजा सफला ज्ञेया चान्यथा निष्फला भवेत् ॥९९॥
षोडशैरुपचारैश्च रुद्रपादादिसूक्तकैः ।
पञ्चामृतैः सुगन्धाद्भिर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥१००॥
सुगन्धैः कुङ्कुमाद्यैश्च पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।
धूपैर्दिव्यैश्च दीपैश्च पक्वान्नैः पायसादिभिः ॥१०१॥
पानीयैर्दिव्यताम्बूलैस्तोषयेज्जगदीश्वरम् ।
नीराजनं च कर्पूरैर्दिव्यवादित्रसंयुतम् ॥१०२॥
छत्रं च चामरे चार्प्यं व्यञ्ज(ज)नं दर्पणं तथा ।
संगीतं नटनाटचं च पुराणश्रवणादिकम् ॥१०३॥
रात्रौ जागरणं कार्यं महोत्सवविधानतः ।
स्वयं संहर्षयन् देवान् शम्भुनाऽपि यतः कृतम् ॥१०४॥
देवैः सम्पूजितः शम्भुः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
तोषयामास देवादीन् यथायोग्यविधानतः ॥१०५॥
पूजितास्तर्पिताः सर्वे स्थापिताः स्वसमन्ततः ।
उवाच परया प्रीत्या लोकानां हितकाम्यया ॥१०६॥

[शम्भुरुवाच]—

अद्यप्रभृति भो देवा वार्षिकीयं महोत्सवम् ।
ये करिष्यन्ति मद्भक्त्या तेषां पुण्योदयो भवेत् ॥१०७॥
सर्वान् कामान् पूरयध्वं निजभक्तान् प्रसन्नतः ॥१०८॥
( स्वभक्तानां प्रसादतः )
चतुर्दश्यां सदा पूजा (जां) ये करिष्यन्ति मत्पराः ।
ऐश्वर्यं विजयं राज्यमारोग्यं प्राप्नुवन्ति ते ।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामान् शिवलोके महीयते ॥१०९॥

[सूत उवाच]—

इत्युक्त्वाथ सुरान् देवः स्थितस्तत्रैव तोषय (तोषितः) ।
अमावस्यां पौर्णमास्यां सोमनाथं प्रपूजयेत् ॥११०॥
तत्र श्राद्धादिकं कार्यमनन्तफलदं भवेत् ।
रात्रौ जागरणं कुर्याच्छिवभक्तिपरायणः ॥१११॥
शिवध्यानपरो नित्यं शिवनामानुकीर्तयन् ।
सर्वं शिवमयं पश्यन् भुक्तिमुक्त्योश्च भाजनः(नम्) ॥११२॥

विधिना वा मिषेणापि व्यासङ्गाद्वा प्रयत्नतः।
कुर्वन्ति वार्षिकीं यात्रामेकलिङ्गस्य सन्निधौ ॥११३॥

सर्वपापैर्विनिर्मुक्ता यान्ति शम्भोः परं पदम्।
पक्षमात्रं च मे (ये) भक्त्या शिवपूजां विधानतः ॥११४॥
करिष्यन्ति महात्मान एकलिङ्गस्य सन्निधौ।
सर्वयज्ञफलं ते वै लभन्ते भुवि मानवाः ॥११५॥

पक्षार्द्धं वा प्रकुर्वन्ति ह्येकलिङ्गमहोत्सवम्।
सर्वतीर्थकृतं पुण्यं शिवसायुज्यदं भवेत् ॥११६॥
एकादश्यादिदर्शान्तं महत्पुण्यफलप्रदम्।
पञ्चरात्रं विशेषेण भक्त्या महोत्सवं चरेत् ॥११७॥

प्रीणाति शङ्करः साक्षाद् भक्तानामभयप्रदः।
वहुना किमिहोक्तेन शिवसायुज्यदायकम् ॥११८॥
वायुना कथितं पूर्वं नारदाय महात्मने।
एकलिङ्गस्य माहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया ॥११९॥

ये शृण्वन्ति समाहिताः शिवकथां पापौघविध्वंसिनीं
पाठं शुद्धमनाः करोति मनुजः संसारसिन्धुप्लवम्।
ते सौख्यं धनधान्यबन्धुसुजनैर्भुक्त्वा यथेष्टान् सुखान्
प्राप्यान्ते शिवलोकमक्षयसुखं सायुज्यतां शाम्भवाः ॥१२०॥

यात्राभङ्गं ये करिष्यन्ति मूढाः शम्भोर्द्वेषं सज्जनानां च दुष्टाः
ये (ते)पच्यन्ते कुम्भिपाकादिघोरे नानायोनीर्भ्राम्यमाणाधमास्ते
शम्भोर्यात्रां यत्नतःकारयन्ति साहाय्यं वा कायवाग्निः(भिः)प्रकुर्यात्(र्युः)
मार्गे क्षेत्रे चान्नदानं प्रपादि कुर्वन्ते ये प्रीततां याति शम्भुः ॥१२२॥

सद्यो वामस्त्वघोरः पुरुष इति मुखैरीश्वरोऽपीन्दुकाष्ठा-
वाची पूर्वोर्ध्वगैः सत्कुजलशुचिमरुत्खैर्विधाता रमेशः।
रुद्रश्चेशः सदादिः शिव इति जगत्सृष्टिसंस्थाननाशा-
न्तर्द्धानानुग्रहैश्च प्रणवमयगुरुश्चैकलिङ्गोऽवताद् वः ॥१२३॥

इति श्रीवायुपुराणे मेदपाटीये श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्ये यात्राविधिमहोत्सव-
वर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ श्रीः ॥

मङ्गलं लेखकानां च पाठकानां च मङ्गलम् ।
मङ्गलं सर्वदेवानां भूमिपालस्य मङ्गलम् ॥ १ ॥
श्रीस्वरूपनृपदेशवर्यके नामतस्तु भुवि मेदपाटके ।
राजधानिकथितोदये पुरे लेखनं कृतमिदं शुभाक्षरम् ॥ २ ॥
यद्यशुद्धमथवापि शुद्धकं तत्क्षमध्वममलाशयात्मकाः ।
मानमत्र लिखने(लिखिते)महात्मनां शौद्धयशौद्धिमयमप्यलक्षितम् ॥

संवत् १९६८ माघशुक्ला ५ । यह पुस्तक संवत् १९१५ के साल महाराणा जी श्री स्वरूपसिंह जी के समय गोरवाल सदाशिव जी के हाथ की लिखी पुस्तक से लिखी गई ।

# परिशिष्टानि

## प्रथमं परिशिष्टम्

# श्रीमदेकलिङ्गमाहात्म्यस्य भिन्नपाठोद्धरणम्

[ प्रारम्भे अष्ट पद्यानि कामदेवस्तुतिपराणि पठितानि ]

अथ बाप्पधरणिनायकवंशोत्पत्तिं तु वर्णयाम्युच्चैः ।
या कीर्तनेन पुरुषान् पुनाति गङ्गेव किं बहुना ॥९॥

श्रीमद्वायुपुराणप्रभृतिषु नानाविधेषु शास्त्रेषु ।
अद्यापि या प्रसिद्धा श्रुता तु सर्वार्थसम्पदे भवति ॥१०॥

कैलाशाचलशृङ्गे रजतादिकधातुराजिरत्नयुते ।
वरकिन्नरगणविरचितगीते सन्निर्जरोपेते ॥११॥

[ अतःपरं पौराणिकैकलिङ्गमाहात्म्यस्य चतुर्थाध्यायस्थवस्तु आर्याच्छन्दसि वर्णितम् । तदनन्तरं कामधेनुवरदानसञ्ज्ञस्य अष्टमाध्यायस्य, इन्द्रवरदानसञ्ज्ञस्य नवमाध्यायस्य, तीर्थयात्राफलसञ्ज्ञस्य दशमाध्यायस्य च वस्तु तत्तच्छन्दसि यत्किञ्चित् पाठभेदेन निविष्टम् । ]

जयति जगति विख्यातं सकलमहीलोकपावनं सुमहत् ।
श्रीमदेकलिङ्गदैवतगोत्रं वैजवापाह्वम् ॥१॥

जयति तथाऽऽनन्दपुरे नागरकुलमण्डनो महीदेवः ।
यजनादिकर्मकुशलो विजयादित्याभिधो विप्रः ॥२॥

तत्तनयो द्विजवर्यः केशवनामा बभूव लोके ।
श्रुतयो यत्र चतस्रः षडङ्गसहिता विभान्ति ॥३॥

तस्य सुतो जगतीतलमखिलं तपसा सुखास्पदं कुर्वन् ।
नागा-राउल-नामा बभूव पात्रं स्मृतीनां यः ॥४॥

तत्पुत्रोऽजनि भोगारावलसञ्ज्ञो धराधिपैर्वन्द्यः ।
असाधरो (?)ऽस्य सूनुः श्रीदेवाह्वो तनुजन्मा ॥५॥

तत्तनुजः सर्वज्ञो दक्षाध्वरकृद्विभूतिभृद्विमलः ।
स महादेवो भगवान् (?) अभिधानेनाभिधेयः ॥६॥

तस्य कुलालङ्करणो गुहदत्तोऽन्वर्थनामधेयोऽभूत् ।
अद्यापि यस्य नाम्ना वंशोऽयं ख्यातिमान् जगति ॥७॥

यदुक्तं [सु] पुरातनैः कविभिरानन्दपुरसमागतः ।
विप्रकुलानन्दनो [हि] गुहदत्तः श्रीगुहिलवंशस्य ॥८॥

श्रीमानभूत् स नृपतिर्गुहिलाभिधानो
धर्माच्छशास वसुधां मधुजित्-प्रभावात् ।
यस्माद् ययौ गुहिलवर्णनतः प्रसिद्धि
गौहिल्य-वंशभवराजगणोऽत्र जातः ॥९॥

गुहिलधरणिनाथस्तुङ्गरिङ्गत्प्रताप-
स्तरुणतरणिरेखो म्लानयन् वैरिचन्द्रान् ।
व्यचरदतिविचित्रं सन्ततं यत्पृथिव्या-
मदरि [पर] वधूटी-पद्मिनीनां मुखाब्जम् ॥१०॥

तनुजोऽस्य चैकलिङ्गप्रसादसम्प्राप्तराज्यलक्ष्मीकः ।
श्रीमेदपाटवसुधामपालयद् बाष्पपृथ्वीशः ॥११॥

यदुक्तं पुरातनैः कविभि···· ···· ····
आकाशचन्द्रदिग्गजसङ्ख्ये संवत्सरे बभूवाद्यः ।
श्रीमदेकलिङ्गशङ्करलब्धवरो बाष्पभूपालः ॥१२॥

यो नागह्रदनगरे तोडरमल्लः कृपाणधरतिलकः ।
अध्याष्ट स म(हि)नरेशो बलतनुभोज्यैः स्वयं भीमः ॥१३॥
परिधाने यस्य पट्टी पञ्चत्रिंशत्करा दुकूलस्य ।
आच्छादनवरवस्त्रं षोडशहस्तं नृपस्य बाष्पस्य ॥१४॥
चतुरश्चतुरश्छागान् कवलयति स्मासनेन योऽगस्तिः ।
पञ्चाशत्पलकनकजटोडरधारणे तु यो धीरः ॥१५॥
द्वात्रिन्मणसुघटितकरवालं यो महान् करे चक्रे ।
एकप्रहारदानान्महिषद्वयपातने प्रबलः ॥१६॥
रायंगुरु-चायंगुरु-सेलगुरु-रायचायं-परमगुरुः ।
वागाङ्गला-रायाञ्चा मुहवनवयद (?) वंस विरुदानि[1] ॥१७॥

---

१. संगीतराजे पुष्पिकासु पठितोंऽशस्तुलनीयः, यथा—रायंगुरु-वायंगुरु-सेलगुरु-रायाञ्चा-परमगुरु-वागाङ्गला-रायाञ्चा-मुहवनराय-हिंसल्लराय-माचल्लपूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिणचतुर्दिशां रायाञ्चा आम्बुला-इत्यादि-विरुदावली-विराजमानः ।

अनेकगुणसन्निधिः सुचरितैकलीलावधि-
र्जयप्रतप्तस्त्र(शे)वधिः प्रहतवैरिवर्गोपधिः ।
यशोजितकलानिधिः सततसिद्धसन्निधिः
स शौर्यपरमावधिर्जयति बप्पवंशाम्बुधिः ॥१८॥

प्रत्यर्थिवामनयना-नयनाम्बुधारा-
संवर्धितः क्षितिभुजां शिरसि प्ररूढः ।
यः कुण्ठितारिकरवाल-कुठार-धार-
स्तं ब्रूमहे गुहिलवंशमपारशाखम् ॥१९॥

असुरवधफलोर्वी-मण्डलीकावतारा
हरय इव लसन्तः प्रोल्लसन्मावताराः ।
घनवनघनपट्टे सच्चतुर्दिक्कपाठे
बलिनृपजयिनोऽमी स्वामिनो मेदपाटे ॥२०॥

सम्प्राप्याद्भुतमेकलिङ्गचरणं भोजप्रसादात् पलं
चास्मै दिव्यासुवर्णपादकटकं हारीतराशिर्ददौ ।
[सद्] बाष्पः स पुनः पुराणपुरुषः प्रारम्भनिर्वाहणात्
तुल्योत्साहगुणो बभूव नृपतिः श्रीमेदपाटाधिपः ॥२१॥

बाष्पे शिवे लयमुपेयुषि नीलकण्ठ-
प्रौढप्रसादमवसादमवाप्य तस्य ।
वंशो जगत्त्रयपवित्र-चरित्रपात्र-
मवाप्य खण्डमखिलां जगतीं प्रशास्ति ॥२२॥

इह हि समरसिंहस्तस्य पुत्रः सुबाहु-
स्त्रिभुवन-परिसम्पत् कीर्तिगङ्गाप्रवाहः ।
धरत्ति धरणिभारं कूर्मपृष्ठवतारं
निजकरकमलेनाप्यायनायं (य) प्रवासं (सः) ॥४५॥

अजनि समरसिंहः कौस्तुभः क्षीरसिन्धा-
विव निधिरधिधाम्नामन्ववायेऽत्र भूपः ।
अधिगतपरभागः पुण्डरीकाक्षवक्षः-
स्थलपरिसरधृत्या प्राप्तसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥४६॥

दुर्गे श्रीचित्रकूटे विलसितनृपतौ सर्वसामन्तचूडा-
रत्नप्रद्योतिताङ्घ्रावभवदिति मतिर्दृश्यथा संप्रभाति ।
सत्यं कृष्णः स कृष्णोऽभवदुचितमिदं कृत्तिवासाः शिवोऽभू-
च्छीतांशुः प्रत्यहंयत् क्षितिमतिकलुषां युक्तमेतन्नबभार ॥४७॥

असुरनृसरजैत्रं चित्रकूटं पुराऽस्मिन्
भवति समरसिंहे शासति क्षोणिपाले ॥
कनककलशहेति-प्रस्फुरद्रश्मिजालै-
र्दिनमणि-किरणाली-सम्प्रकाशानपेक्षम् ॥४८॥
जगति कति न सन्ति प्रार्थितार्थप्रदान-
प्रकटितनिजशक्तिव्यक्तकीर्तिप्रपञ्चाः ।
परमिह परलोकः श्रीबशीकारसारं
श्रयति समरसिंहो दानमस्ताभिमानः ॥४९॥
क्वचित् कदाचिद् दानाम्बु हस्तो वर्षति वा न वा ।
श्रीमत्समरसिंहस्य स तु सर्वत्र सर्वदा ॥५०॥
किं कोऽप्यहो समरसिंहनरेश्वरस्य
सद्धैर्यशौर्यनयकीर्तिकलाकलापम् ।
सङ्ख्यातुमत्र पटुधीर्भविताऽथवाऽऽस्ते
तस्मादलं लपन-पल्लव-लालनेन ॥५१॥
विद्युद्विभ्रमचञ्चलं खलु नृणामायुर्धनं यौवनं
सञ्चिन्त्येति विरञ्चि (सञ्चिन्त्यैवमकारि) शुद्धमनसा
कीर्तिः परं स्थायिनी ।
चन्द्राख्यप्रिययान्वितं (तः) स्वयमिमं (मयं) धारेश्वरः कारितो
लक्ष्मीः श्रीर्वदतीव सन्निपतता धाराम्भसाऽहर्निशम् ॥५२॥
केकी कस्मादकस्मादनुसरति मुदं किं मरालः करालो
वाचालश्चातकः किं किमिति तरुशिखामङ्गलोऽयं बकोटः ।
नैषा वर्षा घनाली विलसितभुवने किन्तु भोजप्रयाणे
लक्ष्यं नैवान्तरिक्षं चलितहयखुरोधूर्त (द्धूत) धूलीपटेन ॥५३॥
तुरङ्गलाला-गजदाननीर—
प्रवाहयोः सङ्गममुद्वहन्ती ।
अस्य प्रयाणे निखिलाऽपि भूमिः
प्रयागलक्ष्मीं बिभरांबभूव ॥५४॥
आकर्ण्य पन्नगीगीतं यस्य बाहुपराक्रमम् ।
शिरश्चालनया शेषश्चक्रे कम्पं परं भुवः ॥५५॥
त्यागेनापि मनोहरेण कृतिनो यं कर्मणाऽऽचक्षते
यं प्रार्थ्यं प्रार्थयन्ति (गणयन्ति)वैरिसुभुजः शौर्येण सत्त्वाधिकम् ।
यं रत्नाकरमामनन्ति गुणिनो धैर्येण मर्यादया
यं मेरुं हि समाश्रयेण विबुधाः शंसन्ति सर्वोन्नतम् ॥५६॥

भृगुपतिरिव दृप्तारातिसंहारकारी
सुरगुरुरिव शश्वन्नीतिमार्गानुसारी ।
स्मर इव सुरतेषु प्रेयसीचित्तहारी
शिविरिव स बभूव त्रस्तसत्त्वोपकारी ॥५७॥

यस्य धनुर्गुणकिणवति बिभ्रति विश्वम्भरां भुजादण्डे ।
क्लेशविशेषमशेषं शेषः परिहृत्य मुदितोऽस्ति ॥५८॥

योऽर्थान् पुपोषार्थिजनार्थमेव
सन्नीतिदक्षो व्यसनैर्विहीनः ।
विहीनसंसर्गपराङ्मुखस्य
स्त्रीसङ्ग्रहो यस्य सुतार्थमासीत् ॥५९॥

मतिरतिरभवत् तस्यासतीष्वपि वधूषु रम्यासु ।
अन्यासु पुष्पजातिषु जात्यां खलु मधुकरस्येव ॥६०॥

स रत्नसिंह (हं) तनयं नियोज्य
स्वचित्रकूटाचलरक्षणाय ।
महेशपूजाहृतकल्मषौघ
इलापतिः स्वर्गपतिर्बभूव ॥६१॥

अपरस्यां शाखायां माहपराहप्रमुखा महीपालाः ।
यद्वंशे नरपतयो गजपतयश्छत्रपतयोऽपि ॥६२॥
राणत्वं प्राप्तः सन् पृथिवीपतिराहपो भूपः ॥६३॥
यादवसैन्धवदार्भिकमौरिकचौलुक्यचाहुमानामानाख्यः ।
मक्तुबांणहूणतोमरपरमाराद्यैः संसेव्यते भुवि यः ॥६४॥

यथा ते मिथिलानाथा मैथिला इति कीर्तिताः ।
सीसौदपुरभूपालास्तथा सीसोदका अमी ॥६५॥

राहपमहीपतनयो हरसूस्तन्नन्दनो बबरू राजा ।
अजनि यशःकर्णोऽस्मात् तदङ्गजो नागपालनृपः ॥६६॥

पुत्रोऽस्य पूर्णपालस्तदङ्गजः फेखरोऽथ नरनाथः ।
तज्जोऽथ भुवनसिंहस्तदात्मजो भीमसिंहनृपः ॥६७॥

तत्तनुजो जयसिंहस्तदङ्गजो लक्ष्म्यसिंहनामाऽऽसीत् ।
सप्तभिरप्यात्मजैः सह भित्त्वा रविमण्डलं दिवं यातः ॥६८॥

तथा चोक्तं पुरातनैः कविभिः............

षुम्माणवंशे खलु लक्ष्म्यसिंह-
स्तस्मिन् गते दुर्गवरं ररक्ष ।
कुलस्थितिं कापुरुषैर्विमुक्तां
न जातु धीराः पुरुषास्त्यजन्ति ॥६९॥

छित्त्वा शस्त्राणि शस्त्रै रथ रथनिकरैर्घातयित्वा रथौघा-
नश्वानश्वैर्निहत्य प्रबलगजतरान् पातयित्वा गजैश्च ।
हत्वा योधांश्च योधैरतिशकनिधनात् कालकालोपमेयो
लक्ष्मीसिंहस्य (श्च) कारातुलमतलमसं (यशः) [सङ्गरे]
सङ्गरज्ञः ॥७०॥

इत्थं म्लेच्छक्षयं कृत्वा सङ्ख्ये संवत्सरं नृपः ।
चित्रकूटाचलं रक्षन् शस्त्रपूतो दिवं ययौ ॥७१॥

[1]अर्चिभिः किमु सप्तभिः परिवृतः सप्तार्चिरत्रागतः
किं वा [2]सप्तभिरेव सप्तिभिरितो यातः ससप्तिर्दिवि ।
इत्थं सप्तभिरन्वितः (ते) सुतवरैस्तैः शस्त्रपूतैः सह
प्राप्ते बुद्धिरभूत् सुपर्वनृपतेः (?)श्रीलक्ष्मी (क्ष्म्य) सिंहे नृपे ॥७२॥

असिर्यस्यासातेर्भ्रमयतितरां शीर्षकमले
स राड् गोगादेवोऽपि हि समधिभूर्मालवभुवः ।
विजिग्ये येनासौ निजभुजभुजङ्गोर्जगरल-
प्रसारात् सिंहान्तः समभवदसौ लक्ष्म्यनृपतिः ॥७३॥

योऽवन्यां पतितोऽप्यस्त्रैः पतितो न स्वधर्मतः ।
चूघलं पातयामास युद्धे योधं नराधिपः ॥७४॥

तदङ्गजो रसीराणो (?) रसियो (को) रणभूमिषु ।
चित्रकूटेन निश्रेण्या त्रिदिवं प्राप्तवान् प्रभुः ॥७५॥

अभून्नृसिंहप्रतिमोऽरिसिंह-
स्तदन्वये भव्यपरम्पराढ्ये ।
बिभेद यो वैरि-गजेन्द्रकुम्भ-
स्थलीमन् (लू) नां नखखड्गघातैः ॥७६॥

---

१. वृत्तानुसारेणात्र द्वितीयवर्णेन गुरुणा भाव्यम् ।
२. सप्तभिरेव सप्तभिरेव रिहायात् साप्त इति मूलपाठः ।

पीतवैरिरुधिराद् विपुलाङ्गाद्
उद्गतादसिकृष्णभुजङ्गेन ।
अद्भुतं समभवत् सकलाशा-
मण्डनं नवयशो जलदाभम् ॥७७॥

शशिधवलया कीर्त्येव प्रताप-दिवाकराद्
द्युतिमिलितया मन्ये प्रत्यवाप निजासनम् ।
रजतनिचयं दास्ये वो महारजतं तथा
त्यजतु विपुलां चिन्तां साऽवनीपकमण्डली ॥७८॥

तदङ्गजहम्मीरः (तदङ्गजोऽभूद् हम्मीरः)
प्रेक्ष्य यद्दाम (न) मुत्तमम् ।
लज्जयेवादृश्यभावं प्राप्ताः कल्पद्रुमादयः ॥७९॥

राधवे (आहवे) चेलवाटेशमहंकारमहोदधिम् ।
निस्त्रिंशचुलुकैः सम्यक् शोषयामास यो नृपः ॥८०॥

प्रह्लानलपुरं हत्वा तथेलादुर्गनायकान् ।
जितवान् जितकर्णं यो ज्येष्ठं श्रेष्ठो महीभृताम् ॥८१॥

बलीयांसं बलीभुजनामानं मेदिनीपतिः ।
हम्मीरदेवो हतवान् अर्जयन् कीर्तिमुत्तमाम् ॥८२॥

तथा चोक्तं पुरातनैः कविभिः—
हम्मीरवीरो रणरङ्गधीरो
वाग्माधुरीतर्जितकेकिकीरः ।
धराधवालङ्करणैकहीरः
सदावनीभूषितसिन्धुतीरः ॥८३॥

मन्येऽभूत सुरगौरगौः समभवत् कल्पद्रुमः कल्पना-
तीतो रोहणपर्वतोऽपि सुधियां नो मानसं रोहति ।
चित्तस्याधिपतेर्जडाच्च जडता धत्तेऽधिकां भूधवे
दानप्रोन्नतचारुपाणिकमले कर्णादयः के पुनः ॥८४॥

यर्दपितैरर्थिजनस्तुरङ्गमै-
रनर्घ्यहेमाङ्गदहारकुण्डलैः ।
अलङ्कृतः कल्पतरौ कृताश्रयं
स (सु) राधिराजं हसतीव वैभवात् ॥८५॥

कटकतुरगह्रेषाविश्रुतेस्त्यक्तधैर्ये
व्रजति च रघुभूपे कांदिशं कोऽपलायि ।
अहह विषमघाटी-प्रौढपञ्चाननोऽसा-
वरिपुरमतिदुर्गं चेलवाटं विजिग्ये ॥८६॥

ईश्वराराधने दाने वीरश्रीवरणे रणे ।
कदाचिन्नैव विश्रान्तः करो हम्मीरभूपतेः ॥८७॥

स क्षेत्रसिंहे तनये निधाय
तेजः स्वकीयं त्रिदिवं जगाम ।
बध्नौ यथार्कोऽस्तमयं हि भावो (वं)
महान्तमत्र [स्व] निसर्गसिद्धम् ॥८८॥

ततोऽरिभूमीशमहेभसिंहः
स्नानादवित्रासितमत्तसिंहः ।
संस्रावनामोदितभृत्यसिंहः
शशास भूमिं किल खेतसिंहः ॥८९॥

संग्रामाजिरसीम्नि शौर्यविलसद्दोर्दण्डहेलोल्लस–
च्चापप्रोद्गतबाणदृ(वृ)ष्टिशमिताऽरातिप्रतापानलः ।
वीरश्रीरणमल्लमूर्जितशकक्ष्मापालगर्वान्तकं
स्फूर्जद्गुर्जरमण्डलेश्वरमसौ कारागृहेऽवीवसत् ॥९०॥

व्यर्थो हि नूनं महदुद्यमोऽय–
मित्थं वस(द)न् [तं]सफलं करिष्णुः ।
शोध्यां पुरीमातलमूलधारं
तं देलवाटं पुरमानिनाय ॥९१॥

वीरस्य यस्य समरेऽधिकरं कृपाणि(णीं)
कुञ्चीकृतां रिपुभटानिलवृद्धतृष्णाम् ।
दृष्ट्वा भुजङ्गयुवतीमिव वैरिवर्गा–
स्त्रासात् समुद्रमपि गोष्पदतामनैषुः ॥९२॥

माद्यन्माद्यन्महेभप्रखरकरहृतिक्षिप्तराजन्ययूथो
यं स्वानःपत्तनेशो दफर(?) इति समासाद्य कुण्ठाम्बभूव ।
सोऽयं मल्लो रणादिः क्रकुलवनितादत्तवैधव्यदीक्षः
कारागारे यदीये नृपतिशतयुते संस्तरं नापि लेभे ॥९३॥

शश्वच्चञ्चलवाजिवीचितरलं सच्छस्त्रतिम्याकुलं
माद्यन्कुम्भिसपक्षखेलदचलं सोत्पातमीलज्जलम् ।
....                    ....                    ....

यो रोषादपिबत् शकार्णवमगस्त्यं तं समूहेऽखिलम् ॥९४॥
हाडावटीदेशपतीन् स जित्वा
तन्मण्डलं चात्मवशं चकार ।
तदत्र चित्रं खलु यत्करान्तं
तदेव तेषामिह यो बभञ्ज ॥९५॥
यात्रोत्तुङ्गतरङ्गचञ्चलखुराघातोत्थितै रेणुभिः
सेहे यस्य न लुप्तराशिपटलो व्याजात् प्रतापं रविः ।
तच्चित्रं किल सान्तलादिकनृपा यत्प्राकृतास्तत्र सु-
स्तव्यैकः स पुराणकस्तु बलिनां सूक्ष्मो गुरुर्वाऽपरः ॥९६॥
येनानर्गलभल्लदीनहृदया श्रीचित्रकूटान्तिके
तत्तत्सैनिकघोरवीरनिनदप्रध्वस्तवीर्योदया ।
मन्ये यावनवाहिनी निजपरित्राणस्य हेतोरलं
भूमिक्षेपणभी[तिभिः]परवशा पातालमूलं ययौ ॥९७॥
अनीकं सदाऽभक्षि(?) येनाहिनेव
स्फुरद्भेकसेकाङ्गवीरव्रजे(ते)न ।
जगत्त्राणकृद्यस्य पाणौ कृपाणः
प्रसिद्धोऽभवद् भूपतिः क्षेत्रराणः ॥९८॥
शंसन् यो भृशमाजिलम्पटभटव्रातोच्छलच्छोणित-
च्छन्नप्रोद्गतपांशुपुञ्जविसरप्रादुर्भवत्कर्दमम् ।
अस्तोऽसौ महितो रण शकपतिर्यस्मात्तथा मालव-
क्ष्मापोऽद्यापि यथा भयेन श(च)कितः स्वप्नेऽपि तं
पश्यति ॥९९॥

वारं वारमनेकवारणघटासङ्घट्टवित्रासिता-
ऽनेकक्ष्मापतिवीरमालवशकाधीशैकगर्वान्तकः ।
संग्रामाजिरसंगतारिनगरीलुण्टाकबाहून् नृपान्
कारागारनिवासिनो व्यरचयद्यो गुर्जरान् भूमिपान् ॥१००॥
रिपून् ससजर्थ सरोजजन्मा-
ऽपेतोऽपि तान् संहरते सदैव ।
वनं (यं) न विद्मः कतरस्य हस्तं-
गतो द्वयोर्यास्यति कण्ठ(कान्त) भावम् ॥१०१॥

गुरोः प्रसादादधिगम्य विद्या-
मष्टाङ्गयोगस्थिरचित्तवृत्तिः ।
ब्रह्मैकतां [यः] परमात्मभूयान्
जगाम संसारनिवृत्तबुद्धिः ॥१०२॥

लीखा लेख्यः .... .... ....
विमोचितान् बहुविधघोर संस्यत (संसृते ?)
विलोकितुं जननिचयानिवागमत् ।
शिवान्तिकं शिवचरितः शिवाधच (?)
क(?) माम्बुजार्चन मरिहीण(?) कल्मषः ॥१०३॥

अर्णो धोरणिपारिजात [सु] तरुश्चण्डद्युतेर्दण्डभृत्
यद्वत्सर्वसुपर्वणामधिपतेरासीर्ज(ज्ज)यन्तो यथा ।
ईशस्येव प्रजननी(?) रघुपतेर्यद्वत् कुशो भूपते-
रस्यासीदतुलप्रतापतनयः श्रीमोकलेन्द्रो गजः ॥१०४॥

ऐश्वर्येण दिवस्पतिं, मृगपतिं शौर्येण, पाथः पतिं
गाम्भीर्येण, वपुःश्रिया रतिपतिं, कीर्त्या त्रियामापतिम् ।
औदार्यातिशयेन कर्णनृपतिं, न्यायेन सीतापतिं,
चातुर्येण बृहस्पतिं, व्यजनयत् श्रीमोकलोर्वीपतिः ॥१०५॥

यो विप्रान् नमितान् हृ (क) लिं कलयतः कार्श्येन वृत्तेरलं
वेदं साङ्गमपाठयत् कलिमलग्रस्ते धरित्रीतले ।
दैत्यान् (?) मीन इवापरः श्रुतवतामानन्दकन्दः कला-
कौशल्याददितिर्नवीनजलधौ भूमण्डलाखण्डलः ॥१०६॥

दृष्ट्वैनं रचयन्तमद्भुततुलां हेम्नः सदा सम्पदो
यागाज्याहुतितर्पितो व्यरचयन् मन्ये तलोपायनम् ।
तत्पूर्त्यै कनकाचलं करमहारज्जू च चेलोपमौ
सूर्याचन्द्रमसौ हिमाद्रिमकरौ दण्डं सुरग्रामणीः ॥१०७॥

एवं मुक्तगयां विमुक्तपितृभिः प्रोल्लङ्घ्यमानां हठाद्
दृष्ट्वा संयमनी लिखत्यनुशयादित्थं न भूमेर्यमः ।
किं सामर्थ्यमपोहितं खलु कलेर्याताः क्व कामादयो
युक्तं याति न कोऽधिकारविरतेश्चक्रेऽधिकां कालताम् ॥१०८॥

नलः किमैलः किमु मन्मथो वा
किमाश्विनेयद्वितयादिहैकः ।
कलङ्कमुक्तः किमु यामिनीशः
इत्थं जनो यत्र वितर्कमेति ॥१०९॥

आलोक्याशु सपादलक्षमखिलं जालन्धरान् कम्पयन्
दिल्लीं शङ्कितनायकां व्यरचयन्नादाय शाकम्भरीम् ।
पीरोजं समहम्मदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लसत्
कुन्तव्रातनिपातदीर्णहृदयान् तस्यावधीद् दन्तिनः ॥११०॥

नृपः समाधीश्वरसिद्धतेजाः
समाधिभाजां परमं रहस्यम् ।
आराध्य तस्यालयमुद्दधार
श्रीचित्रकूटे मणितोरणाङ्कम् ॥१११॥

तीर्थमत्र ऋणमोचनं महत्
पापमोचनमपि क्षितीश्वरः ।
चारुकुण्डमपि सेतुमण्डनं
मण्डनं त्रिजगतामपि व्यधात् ॥११२॥

यः सुधांशुमुकुटप्रियाङ्गणे
वाहनं मृगपतिं मनोरमम् ।
निर्मितं सकलधातुभक्तिभिः
पीठरक्षणविधाविव व्यधात् ॥११३॥

पक्षिराजमपि चक्रपाणये
हेमनिर्मितमसौ ददौ नृपः ।
येन नीलजलदच्छविर्विभु-
श्चञ्चलायुतद्रवाधिकं बभौ ॥११४॥

जगति विश्रुतिमाप स मोकलः
प्रतिभटक्षितिपाल (?) स मोकलः ।
रविसुराधिप शेष (?) स मोकलः
प्रतिनिधिर्भवने [षु] स मोकलः ॥११५॥

स नृवरो नृवरोचितवेषभृत्
पवनभृत्पवनोदितवैभवः ।
अवनतोऽवनतोऽपि महत्तरः
सकलमोकलमोकलमोकलः ॥११६॥

दण्डश्छत्रेषु भीतिर्विह (ग) तिविहतितो बन्धनं सारणीषु
प्रायः साराम्बु (?) हिंसा रतिततिषु कटाक्षोऽङ्गुलोष्वेव[छेदः]।
भेदः कोशेऽम्बुजानां हृतिरपि मनसश्चारु गेहेषु नित्यं
यस्मिन् शासत्यनर्घ्येऽभवदिह वसुधा राज-
राजन्वतीत्थम् ॥११७॥

व्यस्तै राजननन्दिनं (?) दिनमधि (?) पत्यैर्दधीच्यादिभि-
र्दानैरेभिरलंकृता ह्यनुकृतिर्व्यापारपारङ्गमैः ।
मन्येऽतीव निराकृताद्यवसुधानाथोरुदानक्रमः
श्रीमानत्र समस्तदाननिलयं ब्रह्माण्डदानं व्यधात् ॥११८॥

[1]आयुष्मान् उद्भूतः सततमनु भूतार्थनिगमः
क्षमः प्रौढक्षोणीपरिदृढदृढोन्मानदहति (तौ) ।
चरित्रे स्वीयेऽन्वर्थमति [सु] पवित्रेण कलयन्
कलौ धर्माधारो गुरुगरिमभूर्मोकलविभुः ॥११९॥

अङ्गाः सम्प्राप्तभङ्गाः स्मृतवनविटपाः कामरूपा विरूपा
बङ्गा गङ्गैकसङ्गा गतविरुदमदा जातसादा निषादाः ।
चीनाः सङ्ग्रामदीनाः स्खलदसिधनुषो भीतिशुष्कास्तुरुष्का
भूमेः पृष्ठे गरिष्ठे स्फुरति महिमनि क्ष्मापतेर्मोकलस्य ॥१२०॥

तापं तापं बाहुशौर्याग्निनासौ
क्षेपं क्षेपं वैरिरक्तौदकौघे ।
नायं नायं दार्ढ्यमेवं कृपाणीं
भेदं भेदं भानुबिम्बं विवेश ॥१२१॥

॥ इति वंशवर्णनम् ॥

मूलं धर्मतरोः फलं श्रुतवतां पुण्यस्य गेहं श्रिया-
माधारः सुगुणोत्करस्य जनिभूः सत्यस्य धामौजसः ।
धैर्यस्यापि परावधिः प्रतिनिधिः कल्पद्रुमस्याखिलां
वीरस्तत्तनयः प्रशास्ति जगतीं श्रीकुम्भकर्णो नृपः[2] ॥१॥

---

१. प्रथमेनाक्षरेणात्र लघुना भाव्यम् ।

२. कुम्भलगढप्रशस्तिगतं २३३ संख्यकपद्यम् ।

समस्तदिग्मण्डललब्धवर्णः
स्फुरत्प्रतापाधरितार्कवर्णः ।
स्वदानभूम्ना जितभोजकर्ण-
स्ततो महीं रक्षति कुम्भकर्णः ॥२॥

श्रीचित्रकूटे सुरराजवर्णः
प्रकृष्टदानादवधूतकर्णः ।
भूतेषु सर्वेषु च कुम्भकर्णः
प्रकाशते विष्णुरिवावतीर्णः ॥३॥

उपास्य जन्मत्रितये गजास्य-
कनीयसो मातरमेकशक्तेः ।
श्रीकुम्भकर्णोऽयमलम्भि साध्व्या
सौभाग्यदेव्या तनयस्त्रिशक्तिः ॥४॥

अतः क्षितिभुजां गणे निजकुलस्य चूडामणिः
प्रसिद्धगुणसम्भ्रमो जग(य)ति कुम्भनामा नृपः ।
प्रवीरमदभञ्जनः प्रमुदितः प्रजारञ्जना-
दजायताभि(कु)जायतेक्षणजितेन्द्रियाणां
मन्दिरः (वरः)॥५॥

वेदानुद्धृत्य पश्चाद् भुवमपि भुजयोस्तां बिभर्ति क्षिणोति
क्षुद्रान् बध्वा बलिद्विड् बलमहिततरं क्षत्रमुत्साद्य हत्वा ।
रक्षोरूपाद्रिमुर्वी (?) भरनृपशमनः सुक्षमी म्लेच्छघाती
जीयात् श्रीकुम्भकर्णो दशविधकृतिकृत् श्रीपतिः कोऽपि
नव्यः ॥६॥

लक्ष्मीशानन्दकृत्वा त्रिभुवनरमणीचित्तसम्मोहकृत्वा
लावण्यावासभृत्वा वपुरमलतया कुम्भकर्णो महीन्द्रः ।
कामं कामोऽस्तु सोऽस्त्री गुरुत इह परं स्त्रीजनं जेतुकामः
सङ्ग्रामेऽनेन साक्षात्क्रियत इति मतं स्त्रीजनोऽस्त्री-
जनोऽपि ॥७॥

विभ्राजते सकलभूवलयैकवीरः
श्रीमेदपाटवसुधोद्धरणैकधीरः ।
यस्यैकलिङ्गनिजसेवक इत्युदारा
कीर्तिप्रशस्तिरचलान् सुरभीकरोति ॥८॥

आ (नी) ताः काश्चिद्धठेन प्रतिनृपतिभटान्
दण्डयित्वा च काश्चित्
काश्चिद् राजन्यवर्यैर्धनगजतुरगैः सार्द्धमानीय दत्ताः ।
अन्याः प्रोढा विधाटीबलकृतहरणप्रत्यहं राजकन्या
नव्या नव्या महीभृत् सविधपरिणयत्येष कामो नवीनः ॥९॥
यवाली दवाली शिखावत् शिखाली
समालीढभाली कराली प्रतालो (?) ।
मुनेरन्धकारे क्षणाद्यस्य सङ्ख्ये
क्षिपक्षेपमन्यैर्नयद् भूपदीपैः ॥१०॥
त्यक्ता दीनादीनदीनाभिधात-
दीना बद्धा येन सारङ्गपुर्याम् ।
योषाः प्रोढाः पारसीकाधिपानां
ताः सङ्ख्यातुं नैव शक्नोति कोऽपि ॥११॥[१]

महामहोयुक्ततरो न चैष
स्वस्वाभिघातेन धनार्जनान्ते ।
इ (अ) हीव सारङ्गपुरं विलोड्य
म (न) हेमदं (व) त्या जितवान्[२] भवं (च) ॥१२॥
गर्जन्म्लेच्छतिमिङ्गलाकुलतरं रङ्गत्तुरङ्गोर्मिमन्
मातङ्गोद्धतनक्रचक्रममितप्राकारवेलाचलम् ।
एतद्दग्धपुराग्निवाडवमसौ यन्मालवाम्भोनिधिं
क्षोणीशः पिबति स्म खड्गचुलुकैस्तस्मादगस्त्यः स्फुटम् ॥१३॥[३]
आढिल्लिकुम्भनृपतिस्तरसैव मास-
मात्रेण नागपुरवासिशकान्निरस्य ।
आपश्चिमार्णवमिलामजयच्च चित्रं
शाकम्भरीवसुधयाऽजयमेरुणा च ॥१४॥
सा धारा येन भूमिः प्रतिभटवसुधाराजजैत्रोग्रधाम्ना
दीनेषु स्वर्णधारा धरणिवितरणादेकधाराधरो यः ।
निर्धारा यस्य नानागुणगरिमगतेः कः सुधाराशिमौलि-
र्यत्खड्गस्योग्रधारामसहत समरे नैव धारापुरीन्द्रः ॥१५॥

---

१. कुम्भलगढप्रशस्तौ २६८ तमं पद्यम् ।
२. जितवान् महं भवम् इति मूलपाठः ।
३. तत्रैव २७० तमं पद्यम् ।

अमीसाहं हत्वा रणभुवि पुरा मालवपतिं
जयोत्कर्षं हर्षादलभत किल क्षेत्रनृपतिः ।
तथैव श्रीकुम्भः खिलिविमहमदं गजघटा-
वृतं सङ्ख्येऽजैषीन्न हिलजः (?) × × (?) कोऽप्यसदृशः ॥१६॥

हेलोन्मूलितमल्लवंशककुदं बन्दीम (क) रन्नबुंदं
दुर्गाद्रावितदुष्टतापमृगकं भङ्क्त्वा पुरं वायसम् ।
तोडामण्डलमग्रहीच्च सहसा जित्वा शकं दुर्जयं
जीव्याद् वर्षशतं सभृत्यतुरगः श्रीकुम्भकर्णो भुवि ॥१७॥

शेषाङ्गद्युतिगर्वहृन्नरपतेर्यस्येन्दुधामोज्ज्वला
कीर्तिः शेषसरस्वती विजयिनी यस्यामला भारती ।
शेषः स्फीतिधरः क्षमाभरभृतौ यस्योरुशौर्यो भुजः
शेषं नागपुरं निपात्य च कथाशेषं व्यधाद् भूपतिः ॥१८॥

शकाधिपानां व्रजतामधस्ता-
दर्शयन्नागपुरस्य मार्गम् ।
प्रज्वाल्य पेरोजमशीतिमुच्चां
निपात्य तं नागपुरं प्रवीरः ॥१९॥

निपात्य दुर्गं परिखां प्रपूर्य
गजान् गृहीत्वा यवनीश्च बद्ध्वा ।
अदण्डयद् यो यवनाननन्तान्
विडम्बयन् गुर्जरभूमिभर्तुः ॥२०॥

मूलं नागपुरं महच्छकतरोरुन्मूल्य नूनं मही-
नाथो यः पुनरच्छिदत्समदहच्चाश्वान् मशीत्या सह ।
तस्मान्म्लानिमवाप्य दूरमपतन् शाखाश्च पत्राण्यहो
सत्यं याति न को विनाशमधिकं मूलस्य नाशे सति ॥२१॥

लक्षाणि च द्वादशगोमवल्ली-
रमोचयद् दुर्यवनालयेभ्यः ।
तं गोचरं नागपुरं विधाय
चिराय यो ब्राह्मणसादकार्षीत् ॥२२॥

---

१. १८–२३–तमपद्यानि कीर्तिस्तम्भप्रशस्तौ १८–२८–तमपद्येषु क्रमभेदेन प्राप्तानि ।

कैलाशाचलसुन्दरं हिमगिरिश्रीगर्वसर्वङ्कषं
नानाहेमवदानतं [सु] किरणैर्मेरोर्हसन्तं श्रियम् ।
स[र्वो] र्वीतिलकोपमं मुकुटवच्छ्रीचित्रकूटाचले
कुम्भस्वामिन आलयं व्यरचयच्छ्रीकुम्भकर्णो विभुः ॥२३॥
समकरोदचलेश्वरसन्निधा–
वचलदुर्गमसौ जगतीपतिः ।
यवनवारवधादिव तोषितो
मुकुटमबुंदभूमिभृतो व्यधात् ॥२४॥[1]
योऽयं राजगुरुश्च दानगुरुरित्युर्व्यां प्रसिद्धश्च यो
योऽसौ सेलगुरुगुंरुश्च परमः प्रोद्दामभूमीभुजाम् ।
यो वल्गाधिकवीरवन्दितपदः प्राच्यप्रतीच्योत्तर–
प्रोद्यद्दक्षिणभूपमण्डनमणिः कुम्भो विजेजीयते ॥२५॥
अमूमुचच्चतुर्वेदविचारचतुराननः ।
गयां यवनकारातो गं (?) जातस्तापसीभिश्च ॥२६॥[2]
गयाकाशीप्रयागादिविमुक्तिः प्रतिवत्सरम् ।
न स्तुतिः कुम्भभूभर्तुः कुलाचारो यतोऽस्य सः ॥२७॥
वेदपारायणं यस्य सहस्रं ब्राह्मणोत्तमाः ।
गायन्ति सर्वतीर्थेषु राजवेश्मसुवेश्मसु ॥२८॥
पात्रसादकृतवित्तमादरात्, विप्रसादकृतभूयसीभुंवि(वः) ।
कृष्णसादकृतमानसं नृपः, शास्त्रसादकृतदृष्टिगौरवम्[3] ॥२९॥
आलोड्याखिलभारतं विलसितं सङ्गीतराजं व्यधात्
औद्धत्यावधिरञ्जसा समतनोत् सूडप्रबन्धाधिपम् ।
नानालंकृतिसंस्कृतां व्यरचयच्चण्डीशतव्याकृतिं
वागीशो जगतीतलं कलयति श्रीकुम्भदम्भात् किल[4] ॥३०॥
अज्ञानार्णवमग्नमज्ञजनताऽहङ्कारवेलावली-
छन्नं व्याप्तमनिन्दितैरकलुषैर्नव्यैरगाधैं रसैः ।
सङ्गीतामृतमद्भुतं निपुणधीरुद्धृत्य भूमीपति-
र्देवान् विष्णुरिवामृतं क्षितिसुरान् योऽपाययन्नित्यशः ॥३१॥

१. अत्रत्ये २४-२५ संख्यके कीर्त्तिस्तम्भप्रशस्तौ १४७-१४८ संख्यके स्तः ।
२. कीर्तिस्तम्भप्रशस्तौ १५५ संख्यकपद्यमिदम् ।
३. कीर्त्तिस्तम्भप्रशस्तौ १५६ संख्यं पद्यम् ।
४. तत्रैव १५७ संख्यम् ।

वेदा यन्मौलिरत्नं स्मृतिविहितमतं सर्वदा कण्ठभूषा
मीमांसे कुण्डले द्वे हृदि भरतमुनिव्याहृतं हारवल्ली ।
सर्वाङ्गीणं प्रकृष्टं कवचमपि परे राजनीतिप्रयोगाः
सार्वज्ञं बिभ्रदुच्चैरगणितगुणभूर्भासते कुम्भभूपः ॥३२॥

अष्टव्याकरणी विकास्युपनिषत्स्पष्टाष्टदंष्ट्रोत्कटः
षट्तर्की विकटोक्तियुक्तिविसरत् प्रस्फारगुञ्जारवः ।
सिद्धान्तोद्धृतकाननैकवसतिः साहित्यभूक्रीडनो
गर्जद्वादिगणान्विदार्य [जयते] प्रज्ञास्फुरत्केसरी ॥३३॥

येनाकारि मुरारिसङ्गतिरसप्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिर्व्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविन्दके ।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योद(ऽज) यद्
वाणीगुम्फमयां चतुष्टयमयं सन्नाटकानां व्यधात् ॥३४॥[१]

श्रीवासुदेवचरणाम्बुजभक्तिलग्न-
चेता महीपतिरसौ स्वरपाटतेनान् ।
धातूननिन्द्य-जयदेवकवीन्द्रगीत-
गोविन्दकं व्यरचयत् किल नव्यरूपान् ॥३५॥

सकलकविनृपालीमौलिमाणिक्यरोचि-
र्मधुररणितवीणावाद्यवैशद्यबिन्दुः ।
मधुकरकुललीलाहारिशारीरशाली
जयति जगति कुम्भो भूरिशौर्यांशुमाली ॥३६॥[२]

राजानः कति वा न सन्ति भुवने भूयस्तरश्रीभृतः
किं तैरक्षततत्त्वशून्यहृदयैरुद्धैर्यभावाश्रयैः[३] ।
साहित्यामृतसिन्धुरक्षरविदां बन्धुः प्रबन्धे कृती
दोर्दण्डाधि-नृपान्धकारतरणिः कुम्भोऽग्रणीः क्ष्माभृताम् ॥३७॥

---

१. कीर्त्तिस्तम्भप्रशस्तौ १५८ संख्यं पद्यम् ।

२. तत्रैव १६० संख्यम् ।

३. रुद्धैगतश्रयैः इति मूलपाठः ।

तावत्कल्पतरुर्विभाति विपुलस्तावच्च चिन्तामणि-
स्तावत् कामगवी च दानजनिभूस्तावत् सुवर्णाचलः ।
तावत् कर्णमहीपतिश्च सुमतिस्तावद् बलिर्भूपति-
र्नो यावत् कनकार्तिमार्गणगणैः श्रीकुम्भकर्णोऽर्थ्यते ॥३८॥[1]

आबाल्याद् विजयोत्सुकस्य विभवैर्विष्णोः प्रियां पुण्यतः
पात्रप्रीणनमेव धर्ममवतः सत्योक्तमातन्वतः ।
दाने दैत्यभिदः सतां गुणयतो रक्षार्थपक्षस्थिते
श्रीमत्कुम्भनरेश्वरस्य सुधियः के के न रम्या गुणाः ॥३९॥

विचित्रचैत्रोत्सवसङ्गतारि–
सामन्तसीमन्तवतींशिरःसु ।
सिन्दूरपूरानपसार्यं दूरं
सेनारजो यस्य पदं न्यधत्त ॥४०॥

विपञ्चीं विन्यस्य स्वकरकमले कोमलभरैः स्वरैः ।
स्वस्थानस्थैर्नखमुख[गदितैर्नादयन्] तन्तुततिभिः ॥४१॥

नाटकप्रकरणाङ्कवीथिका–
नाटिकासमवकारभाणके ।
प्रोल्लसत्प्रहसनादिरूपके
नव्य एष भरतो महीपतिः ॥४२॥[2]

स्फूर्जद्गुर्जरमानवेश्वरसुरत्राणो[हि]सैन्यार्णव-
व्यस्ताव्यस्तसमस्तवारणवनप्राग्भारकुम्भोद्भवः ।
औद्धत्यप्रथमानपार्थिवरणप्रारम्भदीक्षागुरु-
र्वर्ण्यः [कुम्भ] महीपतिर्वसुमतीविश्वेश्वरो राजते ॥४३॥[3]

गतत्राणः सुरत्राणो गुर्जरो जर्जरीकृतः ।
खेदितः खिलचीक्षेत्रे[ऽने]कशः कुम्भभृभुजा ॥४४॥

लाटः स्विद्यल्ललाटः स्फुटरटनपटुर्भोटभूपप्रदाता
कर्णाटः पूःकपाटो मुखपटघटितस्वाङ्गुलिर्जाङ्गलेन्द्रः ।
नश्यन्नङ्गः कलिङ्गः कुरुरुचितयो (?) मालवः कालचक्र-
स्त्यक्तौजा गूर्जरेशः समजनि जयिनो यस्य राज्ञः प्रयाणे ॥४५॥

---

१. कीर्तिस्तम्भप्रशस्तौ १६१ संख्यम् ।

२. तत्रैव १६६ ।

३. तत्रैव १७२ ।

येनासङ्ख्येयसङ्ख्यावनिभटसुभटौ वैरिघातैकदक्षौ
तत्तद्धस्ताश्वपत्याकुलतरकटकौ ढिल्लिकागुर्जरेशौ ।
छत्रे रत्नौघरश्मिप्रकरपरिलसत्सम्पदौ दण्डितौ तत्
कीटाः के कोटिशोऽन्ये हि जगदपसदा मालवाधीश्वराद्याः॥४६॥

स्वाट्चाद् [? पाद्] पट्टुः (?) समण्डलकरं मण्डोवरं मण्डयन्
भूमिं योऽजयमेरुगां सुफणजां भुञ्जन् भुजोर्जस्वलः ।
सेनासागरगौर्जरोत्तरसुरत्राणातपत्रासिमान्
भूपालावलिभालभूषणमणिः श्रीकुम्भकर्णो जयी ॥४७॥

रे मूढाः किमुपास्यते गुणिगणप्रावीण्यपाटच्चरो
भूभृद्वृन्दमनेककाकुरचनाचातुर्यचाटूक्तिभिः ।
श्रीकुम्भः सकलाभिलाषफलदश्चेदूर्जितः प्राप्यते
सौरभ्यं यदि मौक्तिके किमपरं श्लाघ्यं भवेद् भूतले ॥४८॥[1]

श्रीमन्मोकलभूपतेः समुदितः सौभाग्यभूमावधि-
र्या प्रासूत लसत्प्रतापतरणिं सौभाग्यदेवी सुतम् ।
येनासाद्य गुरोः कलाश्च सकला दत्वा द्विजेभ्यो भुवं
भुङ्क्ते कुम्भनरेश्वरः कुचभराभुग्नामिव प्रेयसीम् ॥४९॥[2]

वेणीव्याजलसद्भुजङ्गललनालावण्यलीलालया
सौन्दर्यामृतदीर्घिकापरिलसन्नालीकनेत्रद्वया ।
कुम्भारम्भकुचद्वयोपरिलसन्नामुक्तमुक्ताचया
यस्यानङ्गकुतूहलैकपदवी कुम्भल्लदेवी प्रिया ॥५०॥

कृष्णः कुम्भेन्द्रभूपः प्रमुदितकमला कुम्भलादेविकेयं
भोगिन्यो गोपकन्या भुवि नवमथुरा चित्रकूटाचलस्था ।
नन्दः श्रीमोकलेन्द्रः प्रकटितशुभसौभाग्यनाम्नी यशोदा
रक्षोव्रातं निहन्तुं पुनरजनि जगद्गोपरूपो मुरारिः ॥५१॥

स श्रीकुम्भमहीपतिरखिलां जगतीं प्रतिपालयन्
श्रीमत्कुम्भलमेरु[3] दुर्गं कृत्वा बलजितारिगणः ॥५२॥

तदनु स्वपूर्वपुरुषकर्णनरेश्वरस्य दुर्गमहारम् ।
श्रीकलशमेरुसञ्ज्ञं करोति कुधराधीशः ॥५३॥

---

१. रसिकप्रियेत्याख्यायां गीतगोविन्दवृत्त्यामन्तिमपुष्पिकान्तर्गतं पद्यमिदम् ।

२. कीर्त्तिस्तम्भप्रशस्तौ १८०–१८१ संख्ये पद्ये ।

३. इतः पूर्वं 'शौर्यान्' इति मूलपाठेऽधिकम् ।

श्रीमेदपाटं देशं रक्षति यो दुर्गमन्यदेशांश्च ।
तस्य गुणानखिलानपि वक्तुं नालं चतुर्वदनः ॥५४॥
तत्रादौ ब्रह्मसूतः पुलस्त्यनामा बभूष (व) ऋषिराजः ।
तस्याश्रमः पवित्रो ह्याहोरे पर्वतेऽद्यापि ॥५५॥
सुरनरफणिगणवन्द्यो यत्र पुलस्त्येश्वरो महादेवः ।
श्रीविप्रोऽसौ स्म लभते कैकस्यां रावणादिसुतान् ॥५६॥
यस्मिन्नाहोरगिरौ मतिमान् दशकन्धरो महातेजाः ।
आराध्य चन्द्रचूडं लङ्कापतिभावमापन्नः ॥५७॥
यत्र वटाः श्रीरावणकुम्भविभीषणसहोदरैरुप्ताः ।
अद्यापि मूर्तिमन्तो जटाः प्रतिभान्तीव धूर्जटेरेव ॥५८॥
यः पूर्वं भरताय नाट्यनिगमं पद्मोद्भवः प्रीतितः
साङ्गं शम्भुरदीदिशत् स समयादुत्सन्नकल्पोऽभवत् ।
लोकानां हितकाम्यया स भगवान् श्रीकुम्भकर्णः क्षमा-
धीशव्याजमुपेत्य वीतविषयं तं वक्ति भूयो वशी ॥५९॥

ग्रन्थान् सम्यगधीत्य बुद्धिविषयं नीत्वाऽनुभूयार्थतः
कृत्वा दर्शनगोचरानभिनयैर्नानाभिनेयाश्रितैः ।
तान् शिष्यप्रतिशिष्यशिक्षणपथं नेतुं यथाऽवस्थितान्
श्रीकुम्भः पृथिवीश्वरः प्रयतते स्वोपज्ञसन्दर्भतः ॥६०॥

यः पूर्वं चतुराननेन चतुरः संस्मृत्य वेदांस्ततस्
तत्त्रैवर्णिकतां विधानपरतां चावेक्ष्य सम्यक् स्मृतः ।
श्रीकुम्भः सकलागमैकनिलयः शास्ताखिलक्ष्माभृताम् ।
सं[बध्नाति हि] सार्ववर्णिकमिमं वेदं विदामग्रणीः ॥६१॥
यः श्रुत्वा भरतं चतुर्भिरखिलैर्भाष्यैश्च रत्नाकरं
सोपायं बहुशो विलोक्य निखिलान् नाट्यागमान् वीक्ष्य च ।
गौरीनन्दिमते मतङ्गशिवसङ्गीते सशार्दूलके
दृष्ट्वा दत्तिलदुर्गशक्तिभणतीस्ता नारदोक्तीरपि ॥६२॥
वायुस्वातिमहेन्द्रकश्यपमरुत्सून्वर्जुनाद्यैः कृतान्
रम्भातुम्बुरुकम्बलाश्वतररक्षोराजसन्दर्भितान् ।
श्रीसोमेश्वरभोजराजरचितान् ग्रन्थान् विलोक्य त्वमुं
तत्सारेण समुच्चितेन कुरुते कुम्भो नृपग्रामणीः ॥६३॥[1]

---

१. अत्रत्यानि ५९–६३ संख्यकानि पद्यानि सङ्गीतराजे १।१।१।३६–४० संख्यकानि ।

स श्रीकुम्भो धराधीश (:) श्रीवाद्यक्षीरसागरम् ।
कल्लोलकेलि कलन्तं (?) तरङ्गोद्भङ्गसन्ततिम् ॥६४॥

तालपाटकदम्बाढ्यं छन्दोनद्यागमोत्कटम् ।
सद्वाद्यद्वीपसन्दोहं विरदाम्बुदसौहृदम् ॥६५॥

पाटरत्नविधानेद्धं राजवर्णोर्मिराजितम् ।
लघुगुरुद्रुतव्रात–प्लुतपर्वतशोभितम् ॥६६॥

(श्री) मत्कलशवाद्यश्रीनारायणपरायण (:) ।
तनुते श्रीमतेनैव सौख्यपीयूषवृद्धये ॥६७॥

इति महाराजाधिराज-राद्यरायांराणेराय-
महाराणा-श्रीकुम्भकर्णमहेन्द्रेण विरचिते मुख-
वाद्यक्षीरसागरे राजवर्णनो नाम............।
बाष्पात् पञ्चाशत्पञ्चभिः पुरुषैरलंकृतोऽयं वंशः
श्रीमदेकलिङ्गपूजा कर्तव्या ततो महान् (महत्)
श्रेयो भविष्यतीति वचनात् ॥

॥ अथ पञ्चायतनस्तुतिः ॥

ध्यात्वा श्रीगणनायकं भगवतीं देवीं तथा भारतीं
स्मृत्वा श्रीभरतादिकान् मुनिवरान् सङ्गीतविद्यागुरून् ।
कृत्वा भारतशास्त्रसारचतुरं सङ्गीतराजं नवं
श्रीमान् कुम्भनरेश्वरः प्रकुरुते वाद्यप्रबन्धान् सुधीः ॥१॥

छन्दोभिः सुमनोहरैः श्रवणयोः पीयूषधारोत्करै-
र्वर्णैः प्रासविभूषितैर्यतिलयस्वस्थानसंवेशितैः ।
ताले कुत्रचिदीप्सिते कविरिव प्रायः प्रबन्धान् सुधी-
धुर्यः कोऽपि सुकाव्यकारनृपतिर्बध्नाति बन्धोद्धुरान् ॥२॥

॥ अथ गणेशः ॥ यतिताले ॥

अव्ययमद्वयरदनं शुभसदनं द्विरदवरवदनम् ।
गणपतिमतिगुणगणपतिमिह सेवे कुम्भनृपसुखदम् ॥१॥

षण्मुखमुखानि पातुं पय आशु कुचद्वये यस्याः ।
विवदन्ते सा गौरी श्रीकुम्भक्ष्मापतिं पातु ॥२॥

वन्दे वरदां वरदाङ्कुशपाशाभयकरां तु तामार्याम् ।
पथ्यां कुम्भनृपप्रार्थ्यां हरिहरभुजदृष्टिमुदितरुचिराम् ॥३॥

श्रीकुम्भभूमिपकुलोदयसेतुहेतु-
जींवातुरातुरनृणां झषकेतुहेतुः ।
गङ्गोत्तरङ्गरसरङ्गसदुत्तमाङ्गः
स्तादेकलिङ्ग उपलिङ्ग हरो हराङ्गः ॥४॥

॥ आदिताले ॥

सर्वारम्भे प्रथमतयैवाराध्यः
कुम्भाध्यातः सफलितसम्पत्साध्यः ।
सिन्दूरौघः प्रकटितसम्पाशो यः
सिद्धीशोऽव्याज्जलधरमालारूपः ॥५॥

जय जय कुम्भनृपाघनिवारण
जय जय कुङ्कुमकलितनवारण ।
जय जय वदनविराजितवारण
छन्दोऽडिल्लाजितहरिवारण ॥६॥

यद्वक्त्रे मदलेखा, यं ध्यायन्ति च लेखाः ।
यो लोकत्रयपाताऽसौ कुम्भोदयदाता ॥७॥
लम्बोदरदेवः, कुम्भाहृतसेवः ।
पूर्णा परमध्या, देयात् तनुमध्या ॥८॥

॥ प्रतिमण्ठताले ॥

हेरम्बो निर्विलम्बोऽवितनतरचितानन्दकन्दप्रसादः
केलिक्रोडत्कपोलद्वयमदमधुपश्रोणिझङ्कारनादः ।
सन्तानस्रग्धराम्बा-कृतसुखसुषमा-सारसल्लासहास्यः
सोऽस्तु श्रीकुम्भकर्णावनिरमणमणेः सिद्धिदः सिन्धुरास्यः ॥९॥

शुण्डादण्डोद्दण्डं चण्डं वक्त्रे तुण्डं बिभ्राणं
× × दित्यै क्ष्माखण्डं खण्डं खण्डं कुर्वाणम् ।
कामक्रीडासव्रीडं श्रीकुम्भश्रेयोदातारं
दुर्गाभर्गोऽपत्यं सेवे देवं [ पारे ] संसारम् ॥१०॥

गणनया गणनायको गुहो मुखपङ्क्तिगुरुनासिकामहो ।
वदतोरिति (?) कुम्भभूपतेर्वैतालीयरवैः शुभायते ॥११॥

॥ यतिताले ॥

मतिविद्यासागर-कारुण्याकर-गौरीशङ्करसञ्जातं
गुणलीलानिर्भर-भूतारोद्धर-कुम्भाधीश्वरविख्यातम् ।
सुरवीथीवन्दित-विश्वानन्दित-सिन्दूराञ्चित-सामोदं
भजताधारं सुकृतागारं सुरश्रृङ्गारं परमानन्दम्
( सानन्दम् ) ॥१२॥

वृषद्विजविराजित-देह कपोल [वि] लोलमधुकृतगेह ।
त्रिनेत्रचतुर्भुज-शोभितधामद धज्जय (?) निर्मल-
मौक्तिक-दाम ।
मोदकवल्लभ वल्लभदैवत मोदकवल्लभ मुख्यसुरार्चित ।
विघ्नप शैलसुताशिवमोदक, राजसि कुम्भमहीपति-
मोदक ॥१३॥

इति गणेशः ॥ अथ सूर्यः ॥

करमोदक धामसुलोचन, देव दिनेश जगत्त्रयनायक ॥
..................कुम्भमहीपमहोदयदायक ॥१॥

॥ अद्भु [त] ताले ॥

रागे सहस्रकिरणा..................श्रीः
किङ्किल्लिकिंशुकशुकाननकाननश्रीः ।
प्राप्ता वसन्ततिलका तिलकप्रकाशा
श्रीकुम्भभूपति [वि] राज-विराजिताशा ॥२॥

अचलदिग्वासिता व्योमचूडामणे
कलशभूपोल्लसितचिन्तामणे ।
नमति यस्त्वामुदारं सदारं शुभा
भजति तं भामिनी तूर्वशीसंनिभा ॥३॥

विद्यालयग्राहितेजःप्रपन्नः, सेवासमारम्भ × × प्रसन्नः
पूर्वाद्रिसान्द्रार्द्रसिन्दूरपूरः, हृद्ध्वान्तविध्वंसने भाति शूरः ।
सूर्यो भास्वान् धर्मधामेति नामा, भूयात्कुम्भप्राप्त-
धर्मार्थकामः ।
अद्धा श्रद्धाशालिनीष्टा हि चित्ते, भुक्ति मुक्ति भक्ति-
रेवास्य दत्ते ॥४॥

॥ झम्पाताले ॥

अथ तोटकघोटकयानवरं, नलिनीवनकोकविशोककरम् ।
नृपकुम्भकृपाकरमुष्णकरं, भज मानवदानवदर्पहरम् ॥५॥

भुजङ्गप्रयातद्विषद्‌बन्धतस्तं, त्रिशम्भुत्रयीतत्त्वतेजःप्रभूतम् ।
महादेहसन्दोहरक्षःप्रमाथं, भजे भास्वरं भास्करं
कुम्भनाथम् ॥६॥

स्रग्विणीत्वष्टकन्येसतोरणे (?) यः क्षमोऽपारसंसारसंतारणे ।
भासतेऽहस्करः सौमनस्तस्करः, कुम्भभूपप्रभारूप-
सम्पत्करः ॥७॥

॥ मण्ठताले ॥

पद्मिनीपरागरागयुक्तरक्तरश्मिराशि-
भासमान-सानशैलसानुचित्रभानुराज ।
राजमान-मोषपोष-हृष्ट-तुष्ट-सर्वदेव
सर्वदा जयावनीत-कुम्भगीतवृत्तसेव ॥८॥

ग्रहेशविघ्ननाश-वासुदेव-शङ्करीश्वराः
प्रपञ्चपञ्चभूत-भूतिदास्तु पञ्चचामराः ।
इमे हि येऽपि पञ्च तेषु मुख्य एव राजसे
नमो दिनेश देव ! तेऽस्तु दत्तकुम्भतेजसे ॥९॥

॥ इति सूर्यः ॥ अथ नारायणः ॥

चराचरं जगच्चिरं स्वलीलया सृजेदिदं
दधाति पाति सेवितो ददाति यः स्थिरं पदम् ।
नरा नरायणं नमन्तु कुम्भराणतारणं
क्षमारमामनोरमं परं तमादिकारणम् ॥१॥

यत्पदाब्जवन्दनं महाघखण्डखण्डनं
वत्स राम राम राम नाम यामदण्डनम् ।
तूणकोपनीतवाणभिन्नरौद्ररावणं
[तं] भजामि राघवं हि कुम्भकामपूरणम् ॥२॥

पीनमीनकूर्मकोल-नारसिंह-रूपता
वामनोग्ररामरामकृष्ण(राम)बुद्धकल्किता ।
सेव्यतामनन्तदेवतावतार-सारता
भाति भक्तकुम्भभक्तिचामराभिवीजिता ॥३॥

वासुदेवभक्तिरेव मुक्तिदा
कुम्भकर्णसेविताऽस्तु सिद्धिदा ।
श्येनिकाऽपि तुङ्गरङ्गरञ्जनी
श्येनिका भवाघसैन्यभञ्जनी ॥४॥

॥ द्रुतमण्ठताले ॥

श्रीकृष्णजयोदयधर्मधीर
शंपद्धडिबन्धुसुसिन्धुतीर ।
कुम्भेशकृपालयकेलिकीर
नम्रामरकोटिकिरीटंहीर ॥५॥

भुजगशशिभृताध्यातः, स सदुपनिषदा ख्यातः ।
हरिहरवपुराकारः, कलशनृपवराधारः ॥६॥

कुमारललिता दुर्गा, स्वबाणकृपयोदग्रा ।
यमाश्रयति[1] गोपीशं, स पातु कलशाधीशम् ॥७॥

विश्वगुरुर्माणवकः, सर्वपिता यः शिशुकः ।
भूपतिकुम्भाभिमतं, यच्छतु विष्णुः सततम् ॥८॥

विष्णोर्भक्तिर्नृणां पथ्या, वक्त्रे चन्द्राधिका तथा ।
पापोत्तापार्त्तिनाशाढ्याऽस्तु, श्रीकुम्भाश्रिता दृढा ॥९॥

विद्वन्मानसगम्यं, सेवे[2] सन्ततरम्यम् ।
कुम्भस्वामिनमन्तं, सत्यं धारिणिकान्तम् ॥१०॥

सर्वान्तर्यामी, श्रीकुम्भवामी ।
एको वाऽलिङ्गः, शम्भुर्भात्युग्रः ॥११॥

॥ इति नारायणः ॥ अथ शिवः ॥

॥ यतिताले ॥

शिवशङ्कर-विश्ववशङ्करदुर्द्धर-किङ्कर-शङ्कर-दोषहरं
शशिशेखर-राजित-राजत-भूधर-वास-विलास-कलासकरम् ।
सचराचर-कन्द-मुकुन्द-मुखामित-दैवत-सेवित-दिव्यपदं
भज शैलभवाबिभुमेव नृपप्रभुकुम्भमथार्पितशर्म-मुदम् ॥१॥

---

१. 'यमाश्रय किल' इति मूलपाठः ।
२. सेवेऽहं सतत० इति मूलपाठः ।

॥ त्रिपुटतालें ॥

कवितालिकानल-चन्द्र-निर्मल-चित्रभानु-सुलोचनं
श्रय सिद्धसाधकशम्भुसेवक-कुम्भकिल्बिषमोचनम् ।
भवशर्वरुद्रमहेश-मुक्तिद-सिद्धि-सिद्धिद-सर्वदं
पुरदक्षसन्मख-कक्ष-दारण-दक्षमुज्ज्वल [सं] विदम् ॥२॥

आदिदेवमनादिमुज्ज्वलधामकामदमद्वयं
ब्रह्मरुद्रमहेश-मुद्रित-पादपङ्कजमव्ययम् ।
हस्तशूलनिरस्तमूल-समस्तदुर्जयदानवं
सर्वदा नृपकुम्भसर्वदमाश्रयेत् सुखसम्भवम् ॥३॥

शुभशुभद ! सर्वद ! सर्वदा [शिव] शम्भुशिव-शिव-शिवकरः
सर्वज्ञहरिहर कुम्भसुखकर, विभवभवभवभयहरः ।
सारसी सधुरवरसितमानसहंसमहसारसी (?)
परब्रह्म-परमानन्द-कन्दविनोदनाद (?) मुदावली ॥४॥

॥ एकतालीतालें ॥

सद्वृषवाहनमद्भुतवाहनमर्पितकुम्भनृपेशजयं
कुङ्कुमपिञ्जरवज्रसुपिञ्जर-कुञ्जर-मुञ्जर-वाजि-जयम् ।
शारद-पद्म-विशारद-लोचन-चन्द्रमुखी-सुख-केलिकरं
तं भजतां मदिरा-मद-राग-तमोहरणं तदघौघहरम् ॥५॥

कैलासविलासं त्रिकुट [नि] वासं हिमरुचिहासं बहुभासं
सुरसुरभिजनीलं प्रकटितलीलं सहजसुशीलं विश्वेशम् ।
एकाधि [क] लिङ्गं त्रिभङ्गगङ्गं सुचित्तरङ्गं योगीशं
गुणगणगौरीशं गणत गिरीशं कुम्भनृपेशं भोगीशम् ॥६॥

पृथ्वीपाथोविश्वत्राण-स्वाहाधोशानन्ताकारं
विष्वक्तेजः शीताद्योतिर्यज्ञेशात्माधेयाधारम् ।
खुन्माणश्रीकुम्भक्षोणीशः श्रेयःश्रेणीनिर्माणं
........................................................................॥७॥

अमृतकिरणविषविषधरमित्र
नरबरयुवतिवपुषमुपचित्रम् ।
निटिलमुकुटतटपटुशिखिगङ्गं
विरचितकलशनृपतिरसरङ्गम् ॥८॥

चतुष्पदीकृतविषनिरतं, निजगणकुम्भनरेशनिभम् ।
ससुरासुरसेवकबहुसुखदं, सुरसरिदम्वुमुदं विशदम् ॥३॥

॥ इति शिवः॥ अथ चण्डिकाशक्तिः ॥

गुणगणसदन [विरा] जितकमले
मुररिपुहृदयनिवासिनि कमले ।
जय जय सुरसेवितपदकमले
नृपकुम्भसमर्पितजयकमले ॥१॥
श्रीभुवनेशी भवभयहन्त्री
कुम्भमहीशोदय-सुख कर्त्री
चन्द्रकिरीटा रविरुचिरन्या
सा जयति (तीह) सुदुर्गागम्या ॥२॥
निखिलकलसकला सुखी
रचितजया विजयातिसखी ।
जयति जया नृप एष सुखी
निज [हित] वहमृगनाभिनखी ॥३॥
भाति विभास्व [र] चम्पकमाला
कुम्भनृपेष्टश्रीजयमाला ।
.... .... .... .... ....
.... .... .... .... ....॥४॥

गोधिकयासन-चित्रगतिं, कुम्भकृतेभतुरङ्गजितिम् ।
त्वां भुवनेशि भवानि नवे, सञ्चरणं शरणं हि शिवे ॥५॥
चण्डी खण्डीकृतरिपुखण्डा, कुम्भप्र[ो]तावनिनवखण्डा ।
मत्ताकृत्तासुरहतिचण्डा, भूतोद्भूतौ पृथुलविचण्डा ॥६॥
या मधुकैटभमिश्रैश्चित्रपदा महिषाश्रैः ।
शुम्भनिशुम्भदुरङ्गा, साऽवतु कुम्भमभङ्गा ॥७॥
प्रामाणी पौराणी वाणी, योमा प्रोक्ता [सा] शर्वाणी ।
यस्यामोता विश्वश्रेणी श्रीकुम्भश्रेयोनिश्रेणी ॥८॥
हिमगिरितनुजा विदलितदनुजा ।
मधुमतिमुदिता कलशनृपसुता ॥९॥
कृष्णाभा मधुकैटभान्तकनिभा कुम्भप्रसादप्रभा
या लक्ष्मी महिषापहाऽतिमहती धूम्राऽसुरघ्नी शुभा ।
चामुण्डा क्षतचण्डमुण्डरुधिरोद्भूता च वागीडिता
पायाद्ध्वस्तनिशुम्भशुम्भदनुजा शार्दूलविक्रीडिता ॥१०॥

शौर्यौदार्यार्यधर्मोद्धरण-रणरणत्कारकीर्ते रसाक्ता
षुम्माणक्षोणिजानेर्गुणगरिमगिरा व्यास-कन्ह-प्रयुक्ता ।
यावत् सूर्येन्दुतारा जलधिजलधराधारगङ्गातरङ्गा
तावत् पञ्चाशिकेयं वसतु हृदयमतां कुम्भभूभृत्सुरङ्गा ॥११॥

विघ्नेशो विघ्नहर्ता तदनु दिनकरो ध्वान्तविध्वंसकर्ता
श्रीकान्तः श्रीनिवासः परपुरदहनः शङ्करो विश्वकर्ता ।
चण्डी चण्डासुरघ्नी त्रिदशगणवराः पञ्च पुण्यप्रपञ्चाः
पान्तु श्रीकुम्भकर्णं बहुसुखविधये मूर्तिमन्तो विरञ्चाः ॥१२॥

श्रीकुम्भदत्तसर्वार्थां श्रीगोविन्दकृतसत्पथा ।
पञ्चाशिकाऽर्थदासेन कह्लव्यासेन कीर्तिता ॥१२॥

॥ इति चण्डिका शक्तिः ॥ इति पञ्चायतनस्तुति-
च्छन्दःपञ्चाशिका सम्पूर्णा ।

चान्द्रं कुम्भनृपस्य तापशमनं सौरं तमःस्तोमहृत्
पुण्यं पावकबन्धुबन्धुरमघव्रातेन्धनध्वंसकृत् ।
बिभ्राणं प्रतिवक्त्रमक्षविषमं पञ्चाननः शङ्कर-
स्त्र्यक्षो रक्षतु पार्वतीप्रियतमः श्री एकलिङ्गेश्वरः ॥१॥

गङ्गा तुङ्गोत्तरङ्गा शिरसि शशिकला चारुकोटीरकोटी
काद्यां [?] कट्यामहीन्द्रः करयुगलगतं काण्डकोदण्डदण्डम् ।
तन्वङ्गी वामभागे गिरिवरतनया स्वर्धुनोस्पर्धिनी सा
रूपं यस्येति किञ्चिज्जयति स भगवानेकलिङ्गस्त्रिनेत्रः ॥२॥

कोऽपि नाके पिनाकीशः सोमः सोमशिरोमणिः ।
लोकपाली कपाली स्ताच्छम्भुः कुम्भसमुद्भवः ॥३॥

स्फूर्जन्मुद्रः सुरेन्द्रस्तपसि कृतयुगे भोजयुक्तेन्द्रतीर्थे
त्रेतायां कामधेनुर्निखिलफलनिधिस्तक्षको द्वापरेऽर्थी ।
हारीतोऽयं विनीतः समभजत कलौ बाष्पसत्सङ्गरङ्गः
कुम्भेन्द्रस्तूयमानोऽनिशमिह दिशतान् मङ्गलान्येकलिङ्गः ॥४॥

तद्भक्तषुम्माणधरेशधीरो
हम्मीरवीरो नृपमौलिहीरः ।
श्रीक्षेत्रसिंहो हतशत्रुसिंहो
लक्षोऽभवल्लक्षगुणैर्विलक्षः ॥५॥

॥श्रीमदेकलिङ्गाय नमः॥

इन्द्रः सर्वसुरेश्वरः कृतयुगे भक्त्या यमाराधयत्
त्रेतायां सकलाभिलाषफलिनी धेनुस्तथा द्वापरे।
नागेशः किल तक्षकः कलियुगे हारीतनामा मुनिः
सोऽयं सर्वजगद्गुरुर्विजयते श्री एकलिङ्गः प्रभुः ॥१॥
जयति जगत्त्रयनाथो जगतीपतिपूजितः सदा शम्भुः।
वाञ्छितफलप्रदोऽयं श्रीमान्नित्यैकलिङ्गाख्यः ॥२॥
कुटिलासरित्समीपे त्रिकूटगिरिगहनभूषणी नित्यम्।
अभिमतफलप्रदात्री देवी श्रीविन्ध्यवासिनी जयति ॥३॥

घनवंशकदम्ब[क]मध्यगतं, रसकूपमवैहि दुरापमतः।
परिगृह्य रसं सरसं वपुषा, स्थिरतां कुरु तापसवीर ततः ॥४॥

कूपान्तरे सहजसिद्धरसं दधानो
देवः स्वयं वसति यत्र सदैकलिङ्गः।
विद्याप्रबोधपरिभावितसिद्धबोधः
संशुद्धनिर्मलमहोमहनीयमूर्तिः ॥५॥

॥इति प्राच्यानि॥

श्रीलक्षसूनुर्बहुदानदक्षः
श्रीमोकलस्तत्तनयोऽतिदक्षः।
प्रतापदीपोज्ज्वलकीर्तिवर्ती
राजेत कुम्भो नृपचक्रवर्ती ॥६॥
शम्भुप्रसादालयशातकुम्भ-
कुम्भप्रभुः कान्तिरसौघपूर्णः।
अनेकलिङ्गानयमेकलिङ्गं
ध्यात्वैककोऽनेकमहीधराढ्यः ॥७॥

तत्स्वामिनं गिरिसुताकामिनं दत्तकामिनं।
एकलिङ्गं शिरोगङ्गं मुदा स्तौमि सदाशिवम् ॥८॥
यः श्रीमानेकलिङ्गो विधिहरिगिरिभृन्मुख्यलोकेश्वरोक्तैः[1]
सर्वेषामादिरीशः स्वमतिगति सदा स्तूयते गद्यपद्यैः।
तं देवं भव्यसेवं विविधगुणनिधिं मोकलेन्द्रस्य सूनु-
र्जातिच्छन्दोभिरेभिर्नरपतितिलकः कुम्भकर्णः स्तवीति ॥९॥

---

१. 'लोषे रसोषे' इति मूलपाठः।

सुभगैकलिङ्गमाले राजति रजनीसु रञ्जनो राजा ।
अमरसरिद्बहुलहरी-प्रकटीकृत-डुंपाडिडीरः [?] ॥१०॥

....  ....  ....  ....  त्र्यम्बक !

तवाम्बिकाप्रिय ! जटातटे धूर्जटे
धुनी ध्वनिति त्वय्येकलिङ्गरचित्ता ।
कुम्भनृपेणेव[1] सुमालतीमाला ॥११॥

छन्दोजातिगुणातिगं विधिमहासूक्ताद्यमेयश्रियं
छन्दोऽलङ्कृतिजातिगौरवगुणैः श्रीगोर्भिरुक्तादिभिः ।
षुम्माणान्वयमेदपाटजगतीसाम्राज्यदं दैवतं
भूभृत्कुम्भमनोरथार्थकरणं स्तौम्येकलिङ्गं शिवम् ॥१२॥

शिव शिव शिव-कर्ता सेवितोऽघौघहर्ता
भव ! भव भव-भेत्ता भक्तिभावस्य वेत्ता ।
हर ! हर हर दुःखं सर्वसर्वं त्वखर्वं
गिरि-गिरिशगुरुत्वं देहि मे स्तूयसे त्वम् ॥१३॥

॥इत्याशीः॥

[ अत्र 'पञ्चायतनस्तुतिप्रकरणस्यादिमपद्यद्वयं ध्यात्वा श्रीगणनायकमित्यादिकं वन्धोद्धुरानित्यन्तं पुनरावृत्तम् । ]

तुर्यो वृत्तस्य भागश्चरण इति मतस्तादृशा यत्र सर्वे
तद् वृत्तं [वै] समं स्यादिह यदि चरणो वर्णमात्रस्तदोक्तः ।
एवं चैकैकवर्णाधिकचरणतया जातयः स्युस्तदाद्याः
षड्विंशत्यावगम्यास्तदुपरिचलनाद् वृत्त(दण्ड)कान्युक्त-
[का]नि ॥१॥

उक्ताऽत्युक्ता मध्या प्रतिष्ठा तदनु सुप्रतिष्ठा च ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्तथा त्रिष्टुप् ॥२॥

जगती चातिजगती शर्कर्यतिशर्करी तदन्याष्टिः ।
अत्यष्टिधृ तिरतिधृतिकृतिप्रकृत्याकृतिर्विकृतिः ॥३॥

सङ्कृत्यभिकृतिरुत्कृतिरित्युक्ताप्रभृतिजातयः क्रमतः ।
कुम्भनृपेन्द्रेणोक्ता भक्तेन श्रीमदेकलिङ्गस्य ॥४॥

१. ० 'नृपेणे वन मालती०' इति मूलपाठः

तद्व्यक्तीनामेकमेकं क्रमेण
श्रीमुख्यानां छन्दसेष्टं विशिष्टम् ।
यद् यद् वृत्तं [स्यात्] स्वनाम्नाऽत्र जैत्रं
स्तोत्रं शम्भोरुच्यते तेन तेन ॥५॥

॥ इति जातीनामुद्देशः ॥

॥ आदिताले ॥

ॐ श्रीः सोक्ता ॥१॥
योऽस्त्रीशोऽभूत् । माता त्यक्ता ॥२॥
सन्मध्याऽर्धनारी भूतेशोऽन्तःकारी ॥३॥

वन्दे भूभृत्कन्यासक्तम् । प्रत्यष्टा (?) तायस्तं भक्तम् ॥४॥
सर्वस्योद्धृता कुम्भश्रीकर्ता । भात्यस्ता तिर्यक् स्वाम्या जातिः ॥५॥

निगमसवित्री-नुत इह सत्री । शशिवदनार्थः स कलशनाथः ॥६॥
उष्णिक् स्त्रीहृयह्लेषा, सर्वेभोन्मदलेखा ।
संसारार्णवपोतं, त्वामाप्ता कलशोक्तम् ॥७॥

स्थाणुरनुष्टुबुदग्रः, चित्रपदा कल उदयः ।
दक्षमखक्षमदक्षः, कुम्भकृपार्पितलक्षः ॥८॥

भुजगशशिभृतामूर्तिः, शिव तव बृहती कीर्तिः ।
विधिह[रि]परमापारः, कलशनृपकृपासारः ॥९॥

॥ एकतालीताले ॥

चम्पकमाला पङ्कजपङ्क्ति-भ्राजितभूताधीश्वरयुक्तिः ।
कुम्भनृपेच्छा-वत्सलशक्ति-र्भाति महेशोऽष्टामितमूर्तिः ॥१०॥

अचलसुतादयितासुमुखी
शिरसि शशी निटिलेऽस्य शिखी ।
त्रिमुखपरष्टुबनन्तगुणः
स जयति पालितकुम्भगणः ॥११॥

स्मरहर ! शङ्कर ! किङ्करता
तव गतजन्मनि येन कृता ।
हितगृहिणीं लभते सुमुखी-
मिह स सदैव विशेषसुखी ॥१२॥

दधासि महोरगमौक्ति[क]दाम
वरं जगतीवरविश्वललाम ।
महीश्वरकुम्भमहीशसुरङ्ग
विराजसि राजसितासितसङ्ग ॥१३॥

॥ झम्पाताले ॥

अतिजगत्युर्वशीस्ववंशीकारकः
समतिषट्त्रिंशदस्त्रौघसंहारकः ।
दशमुखोल्लासिकैलाशलीलास्पदः
प्रियतमालिङ्गितः कुम्भकामप्रदः ॥१४॥

गरिमगर्वोर्वशी सर्वलीलोदया
ललितलावण्यलीलारसा लीलया ।
पदयोर्या (पदतले)या नरीनृत्यते ते विभो
मधुकरीवादरादेकलिङ्ग प्रभो ॥१५॥

शुभनिलय दलय रिपुमुपचित्रं
पृथुलविषमभवजलधितरीशः ।
शुचिरुचिरहितहतकशबरीशः
कलय कलशनृपमुचितचरित्रम् ॥१६॥

॥ मण्ठताले ॥

सर्वदालि शक्वरीकृतातपत्रचामरः
कौटिलापगातटेसु[षु]मेदपाटशङ्करः ।
एकलिङ्गदेव एव सिद्धिविन्ध्यवासिनी
कुम्भराणदेवता जगज्जयप्रकाशिनी ॥१७॥

त्रिकूटचित्रकूटकाशिहेमभूधरोद्धुरं
त्रिनेत्रपञ्चवक्त्रमीशमुच्चपञ्चचामरम् ।
.... .... .... .... .... ....
प्रणौमि कुम्भराज्यदं कृतास्त्रचण्डपाण्डवम् ॥१८॥

सुदृष्टिर्दृष्टि[र्या]त्रिदशलतिका ते शिखरिणी
फलत्येवा [षा] मेशा [षाऽ] खिलसुमनसामिष्टकरिणी ।
शतानन्दानन्दाद्यमरवरसेवार्पितपद
प्रभो रक्ष त्र्यक्ष त्रिभुवनपते कुम्भसुखद ॥१९॥

॥ त्रिपुटताले ॥

उज्ज्वलं हसितं सितं निशितं तपोध्वनिरद्भुता
नीलकण्ठविकुण्ठिता सुरभीमभासुरता मता।
एकलिङ्गमनेकलिङ्गमनङ्गरङ्गमनोहरं
कुम्भराणशरण्य ! नौमि भवन्तमेव तमोहरम् ॥२०॥

॥ प्रतिमण्ठताले ॥

बिभ्रद्दैत्यकुरङ्गकुन्जरदले शार्दूलविक्रीडितं
देवानां फलितं हि तारकरुजः सर्वज्ञ ! ते क्रीडितम्।
सामुद्रोग्रविषादनादतिधृतिस्ते रुद्र ! रौद्राश्रया
कुम्भध्यानसुधानिधान ! जयति श्रीकण्ठसर्वोदया ॥२१॥

॥ त्रिपुटताले ॥

भुवि तालिकाधिककालिकालिकमालिकाकृतकोविदं
नृपकुम्भनायक-भक्तिदायक-शक्तिसायकसम्पदम्।
भज चित्रवारणचर्मधारणभक्ततारणविभ्रमं
लसदुत्तमाङ्गतरङ्गगङ्गमिहैकलिङ्गमुरुक्रमम् ॥२२॥

॥ प्रतिमण्ठताले ॥

या विद्या[सा] न विद्या प्रकृतिरितिगुणस्रग्धरा तत्तुरीयः
षड्विंशः साङ्ख्ययोगः श्रुतिपथविशदानन्दकन्दो द्वितीयः।
स श्रीमानेकलिङ्गः शुभकलशनृपस्तूयमानोरुतेजः
पूरकर्पूरगौरस्त्रिपुरहरगिरौ राजते राजतेजः ॥२३॥
देशेऽद्रौ मेदपाटे पटुतलकुटिलासिन्धुतीरे त्रिकूटा
सत्कूटोऽकूटमैन्द्रं सर इह निकटे स्रग्धराश्रेणिसेव्यम्।
शक्तिः सा विन्ध्यवासा प्रथितमथ तथा ताक्षिकं तीर्थमेत-
न्मध्ये वै लिङ्गरूपप्रकटिततनुकस्त्वेकलिङ्गाश्रितो नः[1] ॥२४॥

॥ एकतालीताले ॥

आकृतिरुन्मदिराम्भ[?]गलान्तलसन्मदिरारुणदृष्टि [शुभा ?]
त्र्यम्बकतारतरस्त्वयि तिष्ठति हेमलता ललितानुपमा।
त्वामुपमन्यु-नही[दी] दधिदुग्धदयापर .... .... .... .... ....
नौमि[सु]कुम्भ-कृपाकर-शङ्कर-सुन्दर-मन्दर-केलि-करम् ॥२५॥

---

१. '०न्मध्ये त्वलिङ्गरूपप्रकटतितनुज्ञो रयेकलिङ्गाश्रितो नः' इति मूलपाठः।

तं कम्बुकचक्रगदाधरवज्रधरादिचराचरचिन्त्यपदं
वि[वै]रञ्चिकृतिव्रजवर्जितमूर्जित····कुम्भनृपप्रमदम् ।
सेवे कुटिला-तटिनी-निकटे त्रिकुटाचल-काशिक-नागह्रदं
स्वाहं(यं) भव शर्मद-नर्मद-सर्वग-केवल····मुदारमुदम् ॥२६॥

श्रुतिसंस्मृतिसंविदगम्यमुमेशमुकुन्दतनुं [?]नृपकुम्भनुतं
सुरनायकभोजसरोवर-रक्षक-तक्षक-धारक-कुण्डयुतम् ।
इह मध्य-महाकलमेकललिङ्गमुपेतमुनीशमहेशवरं
प्रणमापर-पालित-लालित-बाष्पनृपाल-[कृपा]लवराज्य-
धुरम् ॥२७॥

सुरनरमुनिभिरभिकृति[स]कृतिभिर्हंसलयोचितमवधानं
भुजभुजभुजगवलयमतिलयमुज्ज्वलशूलधरं वृषयानम् ।
ग्रहिलगुणगुहिलकुलकलश-नृपाचल-राज्यनिवासनिधानं
पशुपतिमतिशिखिगणपतिजनकं कनकप्रियमद्भुतदानम् ॥२८॥

॥ प्रतिमण्ठताले ॥

ब्रह्माण्डाकृतिषु भवति भवति विविध-वितरण-वरमयवाहत्वं
शम्भो त्वत्पादयुगनत्तिकुशलकलशनृपतिरचितजगतीशत्वम् ।
देवेन्द्र त्रिदश-सुरभि-फणि-मुनिनृपकृत्त-युगयुतसुकृताकारं
त्वामोडे मृडमतिजडनिविडनिगड हर [हर शिव] महिमा-
गारम् ॥२९॥

॥झम्पाताले॥

जय जय जय मालवृत्तेश सर्वत्रिलोकेश्वरोद्दण्डचण्डेशचण्डो विभो
वरद वरमुदारकेदारकाशीत्रिकूटाचलोत्तुङ्गगङ्गैकलिङ्गप्रभो ।
भव भवदवकालकीलाप्रशान्तौ सुधाचण्डवृष्टिश्च माला-
सुवृत्तेश्वरः
प्रवलनृपतिकोटिकोटीरकुम्भक्षमाधीशसर्व[स्व]दस्त्वं नमस्ते
हर ॥३०॥

पुरवर-जलं[?]च मालावृत्तविद्याविनोदा-
न[व]द्यामोघसन्मेघमाला प्रकास्फुरत्[?]····
सच्चिदाकाशकैलासलीलाविलासाधिवासोत्तरङ्गैकगङ्गोत्तमैकाग्र-
लिङ्गप्रभो कुम्भकर्णप्रसादोदयानन्दकारी नमस्ते नमस्ते
नमस्ते ॥३१॥

जगदिन[?] जयमालावृत्तविख्यातकीर्ते !
धराद्यष्टमूर्ते मिलन्मेघमालावृहद्विश्वमूर्ते ।।
महादेव देवेश तुङ्गैकलिङ्गेश कर्पूरगौरेश
गौरीश कुम्भप्रभोदग्र शम्भो नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।।३२।।

।। श्रीमालावृत्तं यथा ।।

जय जय जय शम्भोऽथैकलिङ्ग स्मरारे पिनाकिन्
जय त्वं जय त्वं जय त्वं जय जय देवेश त्रिनेत्रेन्दुमौले
कपालिन् कपर्दिन् नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।।३३।।

प्रणयतु जयमाला दुर्गलोकेश्वरं तं[1]
जय त्वं जय त्वं जय त्वं नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।।३४।।

कुरु कुरु जयमालावृत्तकुम्भं विशङ्कं सदङ्कं
जय त्वं नमस्ते जय त्वं नमस्ते ।।३५।।

।। इति मालावृत्तम् ।। इति जातिच्छन्दांसि ।।

षड्विंशः प्रकृतः परोऽपि परमानन्दः पुमान् विश्रुतः
षड्विंशाधिक[वृत्त]जातिरचनाश्रीमुख्यवृत्तः सुतः ।
सो[ऽस्तु] स्वस्तिकृदेकलिङ्गगिरिशो ब्रह्माण्डपिण्डास्पदः
षट्त्रिंशत्कुलशस्त्रशास्त्रकुशलः श्रीकुम्भसर्वार्थदः ।।३६।।

आदावाराधितो यः कृतयुगसमये नाकिनां नायकेन
त्रेतायां कामधेन्वाभिमतफलदया द्वापरे तक्षकेण ।
हारीतेनापि बाष्पानुग[त]मिह कलौ बाष्पवंशोद्भवेन
श्रीकुम्भेनापि भक्त्या जयति स भगवानेकलिङ्गो गिरीशः ।।३७।।

काशी पुण्यप्रकाशीकृतशिववसतिश्चित्रकूटस्त्रिकूटो
विश्वेशस्त्वेकलिङ्गः सरिदिह कुटिला स्वर्धुनीस्पर्धिनीयम् ।
श्रीभोजेन्द्रस्तडागो मुखरचितमणिः कर्णिका कुम्भकर्णो
विद्यानन्दी विनोदी जयति गुरुगणैर्यस्तु जीवन्विमुक्तः ।।३८।।

आनन्दवृद्धादिपुराभिनन्दी
नन्दीशवृन्दी नृपकुम्भकर्णः ।
तदाज्ञया प्रेरित एव कह्न-
व्यासो व्यधात्तारक-मौक्तिकालिम् ।।३९।।

---

१. ० लोकेत्सरोकमिति मूलपाठः ।

दुर्गाऽम्बिकाऽद्रौ जयमालदुर्गे
कौम्भे पुरे धातुनिधौ समुद्रे ।
स्ताच्चन्द्रचूडस्तुतचन्द्रकान्ता
कुम्भश्रिये कल्हकृता सुवृत्ता ॥४०॥

कुम्भो नन्दतु, भूतले हरिहरौ कुम्भं सदा रक्षतां
कुम्भेनैव वशीकृता वसुमती कुम्भाय तुष्टाः सुराः ।
कुम्भादाप्तधनो जनस्त्रिभुवने कुम्भस्य कीर्तिः स्थिरा
कुम्भे पण्डितमण्डली स्थितिमती त्वं कुम्भ राज्यं कुरु ॥४१॥

॥ इति जातिच्छन्दोभिः श्रीमदेकलिङ्गस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

ॐ नमः श्रीगणेशाय । १. ॐ नमः सिद्धलिङ्ग, २. ॐ नम शिव-लिङ्ग, ३. जय जय जय (?) ४. जय त्वमखिललोकशङ्करलिङ्ग, ५. हरलिङ्ग, ६. हरिलिङ्ग, ७. हिरण्यगर्भलिङ्ग, ८. शिवलिङ्ग, ९. शर्वलिङ्ग, १०. सर्वज्ञ-लिङ्ग, ११. श्री ॐकारलिङ्ग, १२. उदयलिङ्ग, १३. आदिलिङ्ग, १४. उद्यमलिङ्ग, १५. उदितलिङ्ग, १६. उत्थितलिङ्ग, १७. गुरुलिङ्ग, १८. लघुलिङ्ग, १९. मथनलिङ्ग, २०. लम्बलिङ्ग, २१. गुरुलिङ्ग, २२. गुरुतर-लिङ्ग, २३. श्रीदेवलिङ्ग, २४. श्रीदेवेशलिङ्ग, २५. अनेकलिङ्ग, २६. नन्दनलिङ्ग, २७. नन्दकलिङ्ग, २८. नन्दिकेश्वरलिङ्ग, २९. आनन्दलिङ्ग, ३०. नन्दलिङ्ग, ३१. रसलिङ्ग, ३२. रहवट (?) लिङ्ग, ३३. श्रीमदेक-लिङ्ग, ३४. दशलिङ्ग, ३५. शतलिङ्ग, ३६. सहस्रलिङ्ग, ३७. अयुत-लिङ्ग, ३८. लक्षलिङ्ग, ३९. कोटिलिङ्ग, ४०. कोटीश्वरलिङ्ग, ४१. कटकलिङ्ग, ४२. अनेकलिङ्ग, ४३. अगणितलिङ्ग, ४४. बहुलिङ्ग, ४५. महालिङ्ग, ४६. लिङ्गलिङ्ग, ४७. लोकेश्वरलिङ्ग, ४८. गणेशलिङ्ग, ४९. गुणगणलिङ्ग, ५०. श्रीकामेश्वरलिङ्ग, ५१. श्रीकुम्भेश्वरलिङ्ग, ५२. श्रीमोकलेश्वरलिङ्ग, ५३. श्रीमदीश्वरलिङ्ग, ५४ महालिङ्ग, ५५. महादेवलिङ्ग, ५६. श्रीमहेशलिङ्ग, ५७. श्रीराजलिङ्ग, ५८. राजेश्वर-लिङ्ग, ५९. जागेश्वरलिङ्ग, ६०. यागेश्वरलिङ्ग, ६१. योगीश्वरलिङ्ग ६२. भोगीश्वरलिङ्ग, ६३. जङ्गमलिङ्ग, ६४. स्थावरलिङ्ग, ६५. जग-ज्जीवनलिङ्ग, ६६. जगदीश्वरलिङ्ग, ६७. जननीलिङ्ग, ६८. योगिनी-लिङ्ग, ६९. जनकलिङ्ग, ७०. भुवनलिङ्ग, ७१. भुवनेश्वरलिङ्ग, ७२. भवानीश्वरलिङ्ग, ७३. भुवनेश्वरीलिङ्ग, ७४. श्री भगवान् ( भगव ) लिङ्ग, ७५. अनङ्गलिङ्ग, ७६. भगलिङ्ग, ७७. भगभगलिङ्ग, ७८. शम्भुलिङ्ग, ७९. स्वयम्भूलिङ्ग, ८०. गौरीलिङ्ग, ८१. गङ्गालिङ्ग, ८२. गङ्गोदकलिङ्ग, ८३. गीर्लिङ्ग, ८४. गोलिङ्ग, ८५. श्रीगोपाल-

लिङ्ग, ८६. श्रीगोवर्धनलिङ्ग, ८७. गोकुललिङ्ग, ८८. गुहिलवंशवर्धन-लिङ्ग, ८९. लिङ्गैकलिङ्ग, ९०. अनन्तलिङ्ग, ९१. जगदेकलिङ्ग, ९२. एकस्त्वमेकलिङ्ग, ९३. एक एक एव लिङ्ग, ९४. श्रीमदेकलिङ्ग, ९५. एकलिङ्ग, एकलिङ्ग एकलिङ्ग नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥

कीर्तनेन तु रुद्रस्य पापं याति सहस्रधा ।
प्रचण्डपवनेनेव घनं जलदमण्डलम् ॥
यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं देवो जगज्जीवनम् ॥[1]
त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥[2]
भीतिर्नास्ति भुजङ्गपुङ्गवविषात् प्रीतिर्न चन्द्रामृते
नाशौचं नृकपालदामलुठनात् शौचं न गङ्गाजलात् ।
नोद्वेगश्चितभस्मनो न च सुखं गौरीस्तनालिङ्गना-
दात्मारामतया हिताहितसमः स्वस्थो हरिः (रः) पातु वः ॥
जगदङ्कुरकु(च्छे) दाय विशदानन्दमूर्तये ।
गलिताखिलभेदाय नमः शान्ताय विष्णवे ॥
॥ शुक्लां ॥[3]
मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥
इति श्रीमदेक[लिङ्ग] माहात्म्यं सम्पूर्णम् ।
॥ इति श्रीमदेकलिङ्गाय नमः ॥

---

१. सुप्रसिद्धं पद्यमिदम् ।
२. शिवमहिम्नःस्तोत्रे सप्तमं पद्यमिदम् ।
३. शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामित्यादिकं प्रसिद्धं सरस्वतीवन्दनात्मकं पद्यमत्र लिपिको लिखितुमिच्छतीति प्रतिभाति ॥

## द्वितीयं परिशिष्टम्

# सूचयः

## १. पात्रनामसूची

(अकारादिक्रमेण, पृष्ठसंख्यानिर्देशसहिता)

## २. देश-नदी-गिरि-तीर्थादि-नाम-सूची

(अकारादिक्रमेण, पृष्ठसंख्याङ्कसहिता)

## १. पत्र-पुष्प-फल-गन्ध-ओषधि-वनस्पति-नाम-सूची

(पूर्ववत्-क्रमेण)

## ४. पक्वान्न-नाम-सूची



## ५. आयुध-नाम-सूची

## तृतीय-परिशिष्ट

# भौगोलिक नामों का विवेचनात्मक विवरण

प्रस्तुत विवेचना का मुख्य आधार है नुन्दोलाल डे कृत अंग्रेजी पुस्तक—The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India—(तृतीय संस्करण)। प्रायः सभी सन्दर्भ इसी कोष से लिये गये हैं। हमारी ओर से जो कुछ विवेचन हुआ है उसे [ ] ऐसे कोष्ठक में रखा गया है। जहाँ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'उदयपुर का इतिहास' में से मन्दर्भ लिये गये हैं, वहाँ उल्लेख किया गया है। नामों का क्रम द्वितीय परिशिष्ट के अन्तर्गत २. संख्यक सूची के अनुसार है।

अङ्ग—भागलपुर के आसपास का प्रदेश जिसमें मुंगेर भी शामिल है। यह भारत के १६ प्रदेशों में से एक है। इसकी राजधानी चम्पा या चम्पापुरी थी। इस की उत्तरी सीमा का पश्चिमी छोर किसी समय गङ्गा और सरयू का सङ्गम था। रामायण के रोमपाद और महाभारत के कर्ण का यहाँ राज्य था। रामायण (बा० का० सर्ग २३, श्लो० १३-१४) में कहा गया है कि मदन को महादेव ने यहीं पर भस्म किया था, इसीलिये इस देश को अङ्ग कहा जाता है क्योंकि मदन उसके बाद अनङ्ग कहलाने लगे थे। अङ्ग का नाम सर्वप्रथम अथर्वसंहिता (काण्ड ५, अनुवाक् १४) में आया है। जार्ज बर्डवुड के अनुसार अङ्ग में बीरभूम और मुर्शिदाबाद के जिले भी शामिल थे। कुछ विद्वानों के अनुसार सन्थाल परगना भी इसी में थे। छठी शताब्दी ई० पू० में बिम्बिसार ने इसे मगध में मिला लिया था। उसका पुत्र कुणिक अथवा अजातशत्रु इसका उपशासक बना। उसका मुख्यालय चम्पा था। यह प्रदेश पाल-राजवंश के स्थापक गोपाल के अधिकार में आ गया। कन्नौज के गोविन्दचन्द्र (१११४ से ११५४ ई०) की पत्नी कुमारदेवी के मातामह महान् सम्राट् रामपाल के अधीन इस प्रदेश के उपशासक थे। इस प्रदेश में प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल इस प्रकार हैं—(१) ऋषि कुण्ड पर ऋष्यश्रृंग-आश्रम जो कि पूर्वी रेलवे के स्टेशन बरियारपुर के दक्षिण पश्चिम में है; (२) कर्णगढ अथवा कर्ण का किला भागलपुर से चार मील दूर है, (३) प्रदेश की प्राचीन राजधानी चम्पा या चम्पापुरी जो कि जैनों के बारहवें तीर्थङ्कर वासुपूज्य की जन्मस्थली

थी; (४) सुल्तानपुर में जह्नु आश्रम; (५) मोदागिरि अथवा मुंगेर, (६) पावग्घाट की बौद्ध गुफायें (इस का प्राचीन नाम है शिलासंगम अथवा विक्रमशिलासंघाराम); (७) बंसी पर मन्दार पर्वत, भागलपुर से दक्षिण ३२ मील।

**अमरकण्टक**—नागपुर-क्षेत्र में गोंदवन के अन्तर्गत मिकुल (मेकल) पर्वतावली में यह स्थान है जहाँ नर्मदा और सोन का उद्‌गम है। पद्म-पुराण स्वर्गखण्ड ( आदि ) षष्ठ अध्याय और स्कन्दपुराण रेवाखण्ड अध्याय २१ में इसका वर्णन है। अमर कण्टक पर्वत से नर्मदा का प्रथम प्रपात कपिलधारा कहलाता है।

**अर्घोदक**—अर्धगङ्गा को कावेरी नदी का नामान्तर कहा गया है। [इसी को हमारे ग्रन्थ में अर्घोदक कहा गया हो ऐसा नहीं लगता]।

**अर्बुद**—अरावली पर्वतमाला में सिरोही (राजस्थान की भूतपूर्व रियासत) में माउण्ट आबू या अबुदाचल। महाभारत वनपर्व अध्याय ८२ तथा पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड अध्याय २ के अनुसार यहाँ ऋषि वसिष्ठ का आश्रम है। कहा जाता है कि ऋषि ने इस पर्वत में अपने अग्निकुण्ड में से परमार नामक एक वीर को उत्पन्न किया था। विश्वामित्र जब वसिष्ठ की प्रख्यात कामधेनु का हरण कर रहा था तब उसी से युद्ध करने के लिये इस वीर की सृष्टि की गई थी। अर्बुद क्षेत्र में अम्बा भवानी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। ऋषभदेव और नेमिनाथ को समर्पित विश्वविख्यात दिलवाड़ा जैनमन्दिर भी अर्बुदाचल में ही हैं। जैनों के पाँच पवित्र पर्वतों में से यह एक है। अन्य चार नाम हैं—शत्रुञ्जय, समेतशिखर, गिरनार और चन्द्रगिरि।

**अलकनन्दा**—गङ्गा की यह एक उपनदी है। विष्णुगङ्गा (धवलगङ्गा अथवा धौली) और सरस्वतीगङ्गा का यह सम्मिलित रूप है। बद्रीनाथ से कुछ आगे वसुधारा नाम का एक जलप्रपात है, वहीं पर अलकनन्दा का उद्‌गम माना जाता है। गढ़वाल की भूतपूर्व राजधानी श्रीनगर इसीके तटपर स्थित है।

**अवन्ती**—(१) उज्जिन। यह मालव की राजधानी थी। (२) वह प्रदेश जिस की राजधानी उज्जिन थी। इस प्रकार यह मालव प्रदेश का भी प्राचीन नाम है और उस प्रदेश की राजधानी का भी। अवन्ती का नाम मालव ७वीं या ८वीं शताब्दी से प्रचलित हुआ।

**आदिह्लद**—? [हमारे ग्रन्थ में इसे माहेन्द्र-सम्भव कहा गया है जिससे समझा जा सकता है कि महेन्द्र पर्वत से इसका कुछ सम्बन्ध होगा। महेन्द्र पर्वत के लिये देखें माहन्द्री। वाल्मीकि-आश्रम से इस का जो सम्बन्ध ग्रन्थकार ने कहा है वह कुछ भ्रान्तिजनक है। क्योंकि वाल्मीकि का आश्रम तो कानपुर के पास बिठूर में माना जाता है।]

**आनन्दपुर**—उत्तर गुजरात में, सिद्धपुर के ७० मील दक्षिण-पूर्व वड़नगर। किन्तु 'वलभी' के ५० मील उत्तर-पश्चिम आज भी आनन्दपुर नाम का एक स्थान है। इन दोनों का प्राचीन नाम आनर्तपुर था। वलभी खम्भात की खाड़ी के पश्चिमी तट पर काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में भावनगर के १८ मील उत्तर-पश्चिम एक बन्दरगाह है। इसे वमिलपुर भी कहा जाता था। यह सौराष्ट्र अथवा गुजरात की राजधानी बना था। आनन्दपुर को वलभी के निकट मानें अथवा वड़नगर का नामान्तर समझें, गुर्जरभूमि से इसका सम्बन्ध निश्चित है।

आनन्दपुर अथवा वड़नगर को 'नगर' भी कहा जाता है। जो कि नागर ब्राह्मणों का आदि-स्थान है। यह भी गुजरात की राजधानी रहा है। कल्पसूत्र (४११ ई०) के प्रणेता भद्रबाहु स्वामी गुर्जराधीश ध्रुवसेन द्वितीय के आश्रित थे, जिन की राजधानी यही थी।

"आटपुर (आहाड़) से मिले वि० सं० १०३४ के शिलालेख में लिखा है कि आनन्दपुर (वड़नगर) से निकले हुए ब्राह्मणों के कुल को आनन्द देनेवाला महीदेव गुहदत्त, जिससे गुहिल वंश चला, विजयी है।"

(ओझा० उदयपुर का इतिहास पृ० ७४)

**आन्ध्र**—(१) गोदावरी और कृष्णा के बीच का प्रदेश। जिसमें किस्तन जिला भी शामिल है। इसकी राजधानी धनकटक अथवा अमरावती थी, जो कि कृष्णा नदी के मुहाने पर स्थित थी। (२) हैदराबाद से दक्षिण। एल्लूर से ५ मील उत्तर वेंगी में इसकी राजधानी थी ऐसा ह्यूनत्स्यांग का कहना है। वेंगी के पल्लव राजाओं को कल्याणपुर के चालुक्य राजाओं ने जीत लिया था। उनके बाद चोल राजा आये, उन्हें पुनः धरणीकोट के जैन राजाओं ने जीतलिया। आन्ध्र राजवंश को शातवाहन अथवा शातकर्णी भी कहा जाता था। उनकी प्राचीन राजधानी श्रीकाकुलम् में थी जिसे कृष्णा नदी बहा ले गयी है। [ आन्ध्र का प्राचीन नाम त्रिलिङ्ग देश था ऐसा कुछ लोगों का कहना है। ( द्रष्टव्य—काञ्चीकामकोटि-पीठाधीश शङ्कराचार्य श्री जयेन्द्र

सरस्वती के भाषणों का अंग्रेजी संग्रह ( पृष्ठ २७ ) लिङ्ग का अर्थ यहाँ सीमासूचक पत्थर है। इस त्रिलिङ्ग प्रदेश के तीन लिङ्ग हैं— दक्षिण में कलहस्ति, पश्चिम में श्रीशैलम् और उत्तर में द्राक्षाराम अथवा कोटिलिङ्ग क्षेत्र ।]

**इन्द्रसरस्**—एकलिङ्ग के मन्दिर के प्राङ्गण में स्थित सरोवर।

**उज्जयिनी**—उजिन, जो कि अवन्ती अथवा प्राचीन मालव प्रदेश की राजधानी थी। यह शिप्रा नदी के तट पर है। सप्तम शताब्दी ईस्वी में शङ्कराचार्य के समय उज्जयिनी का राजा सुधन्वा था। उसने बौद्धों का दमन करके उन्हें भारत की सीमा के बाहर खदेड़ दिया था। (माधवाचार्यकृत शङ्करविजय, अध्याय १, ५ )। नगरी के मध्य में महाकाल का मन्दिर है, जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। महाकाल के नाम से इस नगरी का नाम महाकाल-वन भी था।

**ओङ्कार**—सम्भवतः ओङ्कारेश्वर से तात्पर्य है। यह नर्मदा तट पर खण्डवा से ३२ मील उत्तर-पश्चिम स्थित है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है, तथा शिव-मन्दिरों में प्राचीनतम माना गया है।

**कण्टक**—इसी का नामान्तर कटद्वीप है, जिसे आज कटवा के नाम से पहचाना जाता है। बङ्गाल में वर्धमान (बर्दवान) जिले में यह ग्राम है। कण्टक नगर, कण्टक द्वीप इसके अन्य ग्राम है।

**कपिल**—(नद)—(१) नर्मदा के उद्गम के निकट, उसके पश्चिमी भाग से निःसृत निर्झर का नाम कपिलधारा है। (२) मैसूर में एक नदी (मत्स्यपुराण अध्याय २२, श्लो० २७), (३) नासिक से २४ मील दक्षिण-पश्चिम स्थित कपिल का आश्रम।

**करकुण्ड**—? करतोया अथवा सदानीरा नाम की नदी रङ्गपुर, दीनाजपुर और बोगरा जिलों में बहती है। महाभारत के समय यह नदी बङ्गाल और कामरूप की विभाजिका थी (वनपर्व, अ० ८५) [करकुण्ड का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो एकलिङ्ग से ही सम्बद्ध है]

**कलिङ्ग**—उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर समुद्र का तटवर्ती प्रदेश। यह महानदी और गोदावरी के बीच का प्रदेश था। इसके मुख्य नगर थे मणिपुर, राजपुर अथवा राजमहेन्द्री। महाभारत के समय उड़ीसा का बड़ा भाग कलिङ्ग में था, इसकी उत्तरी सीमा वैतरणी नदी थी। कालिदास के समय उत्कल (उड़ीसा) और कलिङ्ग दो भिन्न राज्य

थे। ई० पू० तृतीय शताब्दी में अशोक की मृत्यु के बाद यह मगध से स्वतन्त्र हो गया था, कम से कम कनिष्क के समय तक स्वतन्त्र रहा था।

**कर्णाट**—कर्णाटक का वह भाग जो रामनद और श्रीरङ्गपट्टम् के बीच है। यह कुन्तल देश का ही अपर नाम है जिसकी राजधानी कल्याणपुर थी। तारा तन्त्र के अनुसार यह महाराष्ट्र का ही नामान्तर था। और इसका विस्तार वामनाथ से श्रीरङ्गम् तक था।

**कीटवार**—? यह संभवतः स्थान-नाम नहीं है।

**कुङ्कुण**—संभवतः कोङ्कण से तात्पर्य है। कोङ्कण का प्राचीन नाम है परशुराम क्षेत्र (बृहत् संहिता अ० १४)। पश्चिमी घाटों और अरब सागर के बीच का भू-भाग यह क्षेत्र है।

**कुटिला**—रुहेलखण्ड और अवध में रामगङ्गा की पूर्वी उपनदी कोशिला, कुटिका अथवा कुटिला है (रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ७१)

[मेवाड़ में कुटिला नदी का तादात्म्य विचारणीय है। देखें सम्पादकीय भूमिका]

**कुण्डेश्वर**—? कुण्डग्राम अथवा कुण्डपुर (मिथिलान्तर्गत वैशाली का भाग) और कुण्डिनपुर (विदर्भ की प्राचीन राजधानी) तो प्रसिद्ध हैं। कुण्डग्राम जैन तीर्थङ्कर महावीर के जन्मस्थान के रूप में प्रसिद्ध है और कुण्डिनपुर श्रीकृष्ण की महिषी रुक्मिणी के जन्मस्थान के रूप में।

**कुन्तिभोज**—इसे भोज भी कहते थे। यह मालवा का एक प्राचीन नगर था जहाँ पाण्डवों की माता कुन्ती का उसके धर्म-पिता कुन्तिभोज द्वारा पालन हुआ था। (महाभारत आदि पर्व अ० १११-१२) इस नगर को केवल कुन्ती भी कहते थे। (महा, भीष्म० अ० ९ विराट् पर्व अ० १)

**कुरु**—कुरुजाङ्गल और कुरुक्षेत्र ये दो समास-युक्त नाम प्रसिद्ध हैं। कुरुदेश का ही नामान्तर कुरुजाङ्गल था (महा० आदि पर्व अ० २०१ और वामनपुराण अ० ३२) कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर कुरुजाङ्गल में ही थी (महा० आदि० अ० १२६)।

**कुरुमा नदी**—? ऋग्वेद में कुग्मु और क्रुमु दो नदी-नाम मिलते हैं। इसे सिन्धु नदी की उपनदी माना जाता है। [कुरुमा का तादात्म्य इससे है या नहीं यह कहना कठिन है। हमारे ग्रन्थकार ने कुरुमा को गुप्ता सरस्वती कहा है, उसे एक बार अमरकण्टक के मार्ग में और दूसरी बार मेदपाट के निकट जाङ्गल पर्वत से निकली हुई बतलाया है। दोनों बातों में संगति खोजना कठिन है।]

**कुरुष**—श्रीमद्भागवत में करुष (दशम स्क० अ० ६६) नाम आया है, इसका तादात्म्य बङ्गाल में मालदा जिले में पाण्डुआ नामक स्थान से माना जाता है।

**कुशावर्त**—(१) नासिक से २१ मील दूर त्र्यम्बक में गोदावरी के उद्गम के निकट एक पवित्र कुण्ड। (२) हरिद्वार में एक प्रसिद्ध घाट। [हमारे ग्रन्थकार को नासिक वाला कुशावर्त ही अभिप्रेत है।]

**केदारक्षेत्र**--मन्दाकिनी और दूध-गङ्गा के सङ्गम के दक्षिण में स्थित केदारनाथ (का मन्दिर) द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है।

**केदारकुण्ड**—इसका सम्बन्ध केदारनाथ से होना चाहिये। वहाँ रेतस्-कुण्ड नाम का कुण्ड अवश्य है। जिस का सम्बन्ध कार्तिक की उत्पत्ति से बताया जाता है।

**केरल**—मालाबार का समुद्रतट। इस में मालाबार त्रावणकोर और कन्नड़ का समावेश था। (रामायण, किष्किन्धा, सर्ग ४१) इस की दक्षिणी सीमा कन्याकुमारी और उत्तरी सीमा गोआ थी। कहा जाता है कि परशुराम ने ब्राह्मणों को इस प्रदेश में बसाया था।

**कैकय**—व्यास और सतलज नदियों के बीच का प्रदेश। यहाँ दशरथ की रानी कैकेयी के पिता का राज्य था।

**कैलाश**—पर्वत, मानसरोवर के २५ मील उत्तर स्थित पर्वतराज।

**कोशल**—अवध का प्राचीन नाम। इस के दो खण्ड हो गये थे—उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल। कोशल की राजधानी कुशवती थी जिस की स्थापना राम के पुत्र कुश ने की थी, उत्तर कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। बुद्ध के समय में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था जिस में वाराणसी और कपिलवस्तु भी शामिल थे। तब इस की राजधानी श्रावस्ती थी। किन्तु ३०० ई० पू० के आसपास यह मगधराज्य में सम्मिलित कर लिया गया जिस की राजधानी पाटलिपुत्र थी।

**महाकोशल** मध्यदेश का पूर्वी भाग था। ११वीं १२वीं शताब्दी में इस की राजधानी रतनपुर थी। पहले इस की राजधानी चिरायु थी (कथासरित्सागर के अनुसार)।

**गङ्गा**—सुप्रसिद्ध नदी।

**गङ्गाद्वार**—हरिद्वार का नाम।

**गङ्गासागर**—सागर-संगम, जहाँ गंगा का सागर में प्रवेश होता है (महा० वनपर्व अ० ११३)।

**गण्डकी**—गण्डक नदी, इस का उद्‌गम हिमालय की सप्तगण्डकी अथवा धवलगिरि पर्वत श्रेणी में है। इस का सुदूर उद्‌गम स्थल दामोदर कुण्ड कहलाता है। तपोरत्त विष्णु के गण्डस्थल के स्वेद से इस नदी की उत्पत्ति कही जाती है। (वराहपुराण अ० १४४)। इस नदी का उद्‌गम स्थल शालग्राम नामक तीर्थ से दूर नहीं है। इसीलिये इसे शालग्रामी अथवा नारायणी भी कहते हैं। आजकल यह नदी सोनपुर (जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) पर गंगा में मिल जाती है।

**गम्भीरा**—मालवा में शिप्रा की उपनदी। कालिदास ने मेघदूत १/४२ में इस का उल्लेख किया है।

"चित्तौड़गढ़ के पास गम्भीरा नदी है जिस पर अलाउद्दीन खिलजी के शाहजादे खिज्रखाँ का बनवाया हुआ पाषाण का एक सुदृढ़ पुल है।"

(ओझा, उदयपुर का इतिहास, पृ० ४६)

**गया**—फल्गुनदी के तट पर उत्तर में रामशिला पर्वत और दक्षिण में ब्रह्मयानि पर्वत के मध्य में स्थित। विष्णुपद का मन्दिर यहाँ का सुप्रसिद्ध स्थान है। बुद्धगया इस नगरी से ६ मील दक्षिण है। बुद्ध के जीवनकाल में उनके धर्मोपदेश से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले स्थानों में से गया एक है। किन्तु ऐसा लगता है कि दूसरी और चौथी शताब्दी ईस्वी के बीच यह स्थान ब्राह्मणों के अधिकार में आ गया था।

**गोदावरी**—इस नदी का उद्‌गम नासिक से २० मील दूर त्र्यम्बक के पार्श्ववर्ती ब्रह्मगिरि में है।

**गोद्वार**—? [त्र्यम्बक के समीप इस की स्थिति सम्भवतः हमारे लेखक के ध्यान में है।]

**गोमती**—(१) अवध की नदी (रामा० अयो० सर्ग ४९) लखनऊ इसी के तीर पर स्थित है। (२) गोदावरी अपने उद्‌गम के निकट, जहाँ त्र्यम्बक मन्दिर है, गोमती कहलाती है। गौतम ऋषि के सम्बन्ध से इसे गोतमी भी कहते हैं। (३) गुजरात में एक नदी जिसके तीर पर द्वारका है। (४) मालवा में चम्बल की एक धारा (मेघदूत १।४७) (५) अफ-गानिस्तान में गोमल नदी; यह डेरा इस्माइलखाँ और पहाड़पुर के बीच सिन्धु नदी में मिलती है। (६) कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में एक नदी। [हमारे ग्रन्थकार को दो स्थानों (पृ० ६१, ९५) पर तो द्वारका में स्थित गोमती अभिप्रेत है, किन्तु पृ० ५७ पर उल्लिखित गोमती का भौगोलिक आधार सन्दिग्ध है।]

**गोलोक**—[दिव्य धाम, भूलोक में नहीं। गोलोक श्रीकृष्ण की अप्रकट लीला का धाम माना जाता है, गोकुल (मथुरा के निकट ग्राम) प्रकट लीला का। हमारे लेखक को गोलोक से कोई दिव्य धाम अभीष्ट है ऐसा अवश्य लगता है किन्तु वह शायद कृष्णधाम से भिन्न है।]

**गोवर्धन**—(१) ब्रजमण्डल में, मथुरा जिले में, मथुरा से १४ मील पर स्थित। श्रीकृष्ण की गोवर्धन धारण लीला सुविख्यात है। (२) नासिक जिला का प्राचीन नाम।

**गोवर्धनमठ**—आदि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों में से जगन्नाथपुरी का मठ।

**गौतमेश्वर**—गौतम आश्रम चार स्थानों पर माना जाता है [उसी से गौतमेश्वर का सम्बन्ध होना चाहिये। स्पष्ट है कि यह शिवमन्दिर गौतम ऋषि के इष्टदेव का रहा होगा।] (१) मिथिला में जनकपुर के दक्षिण-पश्चिम २४ मील पर अहियारी ग्राम में स्थित अहल्या स्थान। (२) गोदना (गोदान)—जो कि छपरा से ६ मील पश्चिम रावलगंज के पास है। न्यायदर्शन के प्रवर्तक गौतम ऋषि का यह स्थान माना जाता है। किसी समय इस ग्राम के पास गंगा बहती थी, आज तो सरयू है। (३) बक्सर (बिहार) के निकट अहिरोली ग्राम। (४) त्र्यम्बक में गोदावरी के उद्गम स्थान के निकट।

रामायण के अनुसार तो गौतम आश्रम जनकपुर के पास ही है। [हमारे ग्रन्थकार ने (पृ० ७०) उज्जयिनी के प्रदेश में जनकाचल के पास गौतमेश्वर की स्थिति बताई है, किन्तु उस प्रदेश में न कोई जनकाचल ज्ञात है और न गौतमेश्वर।]

**चक्रपुष्करिणी**—चक्रतीर्थ के नाम से ५ स्थानों का उल्लेख मिलता है। (१) कुरुक्षेत्र में रामह्रद का नामान्तर, (२) गुजरात में, प्रभास के निकट गोमती पर, (३) गोदावरी के उद्गमस्थल त्र्यम्बक से ६ मील दूर, (४) वाराणसी में मणिकर्णिका घाटपर स्थित कुण्ड, (५) रामेश्वर में।

[हमारे ग्रन्थ में एकलिङ्ग के समीप ही इसकी कल्पना की गई है। विष्णु ने अपने चक्र की धार से इस पुष्करिणी को खोदा था।]

**चन्द्रभागा**—(१) झेलम और चिनाब की मिश्र धारा; इसका उद्गम लद्दाख के दक्षिण लाहौल में स्थित लौहित्य सरोवर नाम झील में है। (२) कृष्णा की एक उपनदी भीमा का नामान्तर [उड़ीसा के प्रख्यात सूर्यमन्दिर कोणार्क के निकट समुद्रतट पर आज मीठे जल का एक बड़ा

कुण्ड है जिसे चन्द्रभागा नदी का अवशेष कहा जाता है। इस ग्रन्थ में चन्द्रभागा का स्थान अनिश्चित है। ]

**चर्मण्वती**—यह नदी रन्तिदेव द्वारा यज्ञ में बलिदान की गई गौओं के चर्म के रस = रक्त से बनी थी। (महा० द्रोणपर्व अ० ६७, मेघ० १।४६) चम्बल नदी—इसका उद्गम विन्ध्य में एक उच्च शिखर पर है जिसके आस-पास की गिरिश्रेणी का नाम जनपव है। एक ही गिरिश्रेणी में से इसके तीन समानान्तर उद्गम हैं—चम्बल, चम्बेल और गम्भीरा।

[ सूची में यह नाम भूल से छूट गया है। मूलग्रन्थ में पृ० ७५ पर इसका उल्लेख आया है। गौतमेश्वर से चलकर उज्जयिनी पहुँचने के पथ में उज्जयिनी के निकट इसकी स्थिति लेखक ने कही है और रन्तिदेव से सम्बन्ध जोड़ा है। ]

**चित्रकूट**—बुन्देलखण्ड में पयस्विनी (पैसुनी) अथवा मन्दाकिनी के तट पर एक पर्वत, जहाँ श्रीराम वनवास के समय कुछ दिन रहे थे। [ हमारे लेखक ने चित्रकूट को चित्तौड़ का मूल संस्कृत रूप माना है। ]

"यह किला मौर्यवंश के राजा चित्रांगद ने बनवाया था, जिससे इसे चित्रकूट कहते हैं। वि० सं० की छठवीं शताब्दी के अन्त में मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा बापा ने राजपूताने पर राज्य करनेवाले मौर्यवंश के अन्तिम राजा मान से यह किला अपने हस्तगत किया, फिर मालवे के परमार राजा मुञ्ज ने इसे गुहिलवंशियों से छीनकर अपने राज्य में मिलाया। वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने परमारों से मालवे को छीना जिसके साथ ही यह दुर्ग भी सोलंकियों के अधिकार में गया। तदनन्तर जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के भतीजे अजयपाल को परास्त कर मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह ने वि० सं० १२३१ ( ई० ११७४ ) के आसपास इस किले पर गुहिलवंशियों का आधिपत्य वापिस जमा दिया। उस समय से आज तक यह इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग प्रायः—यद्यपि बीच में कुछ वर्षों तक तक मुसलमानों के अधीन भी रहा था—गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के ही अधिकार में चला आता है।" (ओझा, पृ० ४५)

**चैद्यदेश**—बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश के एक भाग का नाम चेदिदेश था। इसकी पश्चिमी सीमा काली सिन्ध और पूर्वी सीमा तोंस नदी थी। कर्नल टॉड ने चेदि का तादात्म्य चँदेरी (चन्द्रावती) से बैठाया है जो बुन्देलखण्ड का एक नगर है। इसीको शिशुपाल की राजधानी माना

जाता है। आयने अकबरी में चन्देरी को एक प्राचीन बृहत् नगर कहा गया है। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड (अ० ५६) में चेदि का नामान्तर मण्डल कहा गया है। मण्डल उस क्षेत्र का नाम है जहाँ सोन का उद्गम है। चेदि की राजधानी गुप्त काल में कालञ्जर थी और महाभारतकाल में शुक्तिमती।

**जनकाचल**—? [ग्रन्थकार ने इसे उज्जयिनी प्रदेश में बताया है, इसका तादात्म्य अनिश्चित है।]

**जम्बूद्वीप**—भारतवर्ष का प्राचीन नाम।

**जाह्नवी**—गङ्गा का ही नामान्तर।

**ज्योतिर्मठ**—आदिशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों में से उत्तरी मठ, जो उत्तराखण्ड में बद्रीनाथ में है। आज इसे जोशीमठ भी कहते हैं।

**तक्षककुण्ड**—? [ इस ग्रन्थ में एकलिङ्ग के समीप ही इस कुण्ड की स्थिति कही गयी है।]

**त्रिकूटगिरि**—(१) लङ्का के दक्षिण-पूर्वी कोने में एक पर्वत, (२) पञ्जाब के उत्तर और काश्मीर के दक्षिण में एक ऊँचा पर्वत जिसमें एक पवित्र झरना है, (३) रघु ने त्रिकूट को जीता था (रघुवंश ४।५९), (४) यमुनोत्री पर्वत, (५) वैद्यनाथ से ६ मील पूर्व एक पर्वत जहाँ एक झरना भी है। [ हमारे ग्रन्थ में तो यह नाम मेवाड़ के किसी स्थानीय पर्वत को दे दिया गया है। ]

**त्र्यम्बक**—नासिक से २० मील दूर प्रसिद्ध तीर्थ स्थान।

**दारुवन**—देवदारुवन अथवा दारुकावन इसी के नामान्तर हैं। इसी क्षेत्र में नागेश का मन्दिर है, जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। यह स्थान पश्चिमी समुद्र पर द्वारका के निकट है। (शिवपुराण १, ५६)

**द्रविड**—दक्षिण में मद्रास से श्रीरंगपट्टम् और कन्याकुमारी तक का प्रदेश। इस की राजधानी काञ्चीपुर थी। इस का अपर नाम चोल देश भी था। महाभारत काल में इस की उत्तरी सीमा गोदावरी थी।

**द्वारका**—श्रीकृष्ण की राजधानी जो उनके परमधाम-आरोहण के पश्चात् समुद्र में समा गई थी।

**द्वारावती**—(१) गुजरात में श्रीकृष्ण की राजधानी। (२) स्याम की प्राचीन राजधानी जिस का नामान्तर अयुध्या भी था। (३) दोर समुद्र अथवा मैसूर क्षेत्र में हालेबिद (Halebid) नामक स्थान जो दसवीं

शताब्दी में उस क्षेत्र की राजधानी था। [हमारे लेखक को प्रथम अर्थ ही अभिप्रेत होगा]

**धारेश्वर**—? सम्भवतः राजा भोज की राजधानी धार (मालवा) में कोई शिवमन्दिर इस नाम का होगा। [इस ग्रन्थ में एकलिंग के समीप ही कुटिला की सहस्रों धाराओं में इस तीर्थ की कल्पना की गई है।)

**नागह्रद**—नागदा। "एकलिंग मन्दिर से थोड़े ही अन्तर पर मेवाड़ के राजाओं की पुरानी राजधानी नागदा नगर है, जिसे संस्कृत शिलालेखों में 'नागह्रद' या 'नागद्रह' लिखा है। पहले यह बहुत बड़ा और समृद्धिशाली नगर था परन्तु अब तो बिल्कुल उजड़ पड़ा हुआ है।

"यहाँ प्राचीन काल में अनेक शिव, विष्णु आदि के मन्दिर एवं जैन मन्दिर बने हुए थे जिन में से कितने एक अब तक विद्यमान हैं। दिल्ली के सुलतान शमसुद्दीन अलतमश ने अपनी मवाड़ की चढ़ाई में इस नगर को तोड़ा, तभी से इस की अवनति होती गई और महाराणा मोकल ने इस के निकट अपने भाई बाघसिंह के नाम से बाघेला तालाब बनवाया जिससे नगर का कुछ अंश जल में डूब गया।........ आज निम्नलिखित मन्दिर यहाँ विद्यमान हैं, १, २—सास-बहू नाम से दो संगमर्मर के मन्दिर, जिनमें दक्षिण की ओर सास के मन्दिर की खुदाई बहुत सुन्दर है। समय अनुमानतः वि० सं० ११वीं शताब्दो ३—विशाल जैन मन्दिर भग्नावस्था में, जिस का नाम है खुम्माण रावल का देवरा। ४—दूसरा जैन मन्दिर अदबदजी के नाम से प्रसिद्ध है, इस में ९ फुट ऊँची शान्तिनाथ की बैठी मूर्ति है। मूर्ति के लेख से ज्ञात होता है कि महाराणा कुम्भा के राज्यकाल में (वि० सं० १४९४) ओसवाल सारंग ने वह मूर्त्ति बनवाई थी। अद्भुत = अदबद।" (ओझा, पृ० ३४)

**नैमिषारण्य**—आधुनिक निमखार अथवा निमसार जो सीतापुर से २० मील और लखनऊ से ४५ मील उत्तर पश्चिम है। प्रायः सभी पुराणों के प्रादुर्भाव से इस स्थान का सम्बन्ध है। यह गोमती के बाँयें तट पर है। (रामायण उत्तर० सर्ग ९१)

**पुण्ड्रक**—[सम्भवतः यह 'पौण्ड्र' का ही ध्वन्यन्तर है।] पौण्ड्र देश का सम्बन्ध बाली के एक पुत्र पुण्ड्र से माना जाता है। इस प्रदेश की राजधानी का नाम सम्भवतः पौण्ड्रवर्धन था। इसी का नामान्तर करुष भी माना जाता है। (देखिये कुरुष) पार्जिटर ने महाभारत के साक्ष्य (सभापर्व अ० ५१ तथा भीष्म० अ० ९) पर पुण्ड्र और पौण्ड्र को दो

भिन्न देश माना है। उनके अनुसार पौण्ड्र गंगा के दक्षिण पार्श्व पर और पुण्ड्र उत्तर पार्श्व पर थे। इस प्रकार पुण्ड्र तो अंग और बंग के बीच था; पौण्ड्र में आज के सन्थाल परगना, बीरभूम जिला और हजारी बाग जिले का उत्तरो भाग रहा होगा।

**पुष्कर**—अजमेर से ६ मील दूर पुष्कर झील है, जो प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है।

**पूर्वसागर**—अन्वर्थ।

**प्रयाग**—आधुनिक इलाहाबाद। रामायण के समय यह कोशल राज्य के अन्तर्गत था। विक्रमोवशीय के नायक पुरूरवा प्रयाग क्षेत्र के शासक माने गये हैं। इस की राजधानी का नाम प्रतिष्ठान था जिस का आधुनिक नाम झूसी है। नहुष, ययाति, पुरु, दुष्यन्त और भरत ने इस नगरी में राज्य किया था। गंगा और यमुना के सगम पर स्थित वेणीमाधव का मन्दिर माधवाचार्य के शङ्करविजय में भी उल्लिखित है।

**बङ्ग**—(१) प्राचीन भूगोल में बंग सज्ञा गगा के डेल्टा के पूर्वी भाग के लिये हो थी। उपबंग संज्ञा इस क्षेत्र के मध्य-भाग को थी, और अंग संज्ञा इस की पश्चिमी सीमा की थी। (२) एक अन्य विद्वान् के अनुसार बंग ब्रह्मपुत्र और पद्मा नदियों के बीच का स्थान था। (३) बग को ५ भागों में बाँटा गया था। १. पुण्ड्र अथवा उत्तरी बंगाल २. समतट अथवा पूर्व बंगाल ३. कर्णसुवण अथवा पश्चिम बंगाल ४. ताम्रालप्त अथवा दक्षिण बंगाल ५. कामरूप अथवा आसाम (४) ई० सन् के प्रवर्तन के बाद बल्लाल सेन ने चार खण्डों में बंगाल को बाँटा था। १. वरेन्द्र २. बंग; ये दोनों गंगा के उत्तरी भाग में थे। ३. राढ़ ४. बागदी; ये दोनों गंगा के दक्षिणी भाग में थ। प्रथम दो का विभाजन ब्रह्मपुत्र द्वारा होता था और शेष दो का गंगा की जलिंगी धारा द्वारा। वरेन्द्र महानन्दा और करतोया नदियो के बीच था और इसे पुण्ड्र मान सकते हैं। बंग को पूर्व बंगाल, राढ़ को कर्णसुवर्ण और बागदा को दक्षिण बंगाल कहा जा सकता है। (५) पार्जिटर के अनुसार बंग में आज के मुर्शिदाबाद, नदिया, जैसोर, राजशाही का कुछ भाग, पवना और फरीदपुर रहे होंगे।

बंग संज्ञा सर्वप्रथम ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यक में मिलती है। एक अन्य विद्वान् के अनुमार बंग में वर्धमान और नदिया जिले ही रहे होंगे। बंग के लिये बंगाल संज्ञा १३वीं शताब्दी में भी मिलती है।

**बदरी**—उत्तराखण्ड में बद्रिकाश्रम। महाभारत में बदरी और विशाल

बदरी संज्ञायें मिलती हैं। कनिंघम के अनुसार बदरी गुजरात के ईडर का नामान्तर है। पुराणकाल में इसी की संज्ञा सौवीर थी। ईडर/इल्वदुर्ग का अपभ्रंश है।

**ब्रह्मगिरि**--(१) नासिक जिले में त्र्यम्बक के पास एक पर्वत, जहाँ गोदावरी का उद्‌गम है। (२) कूर्ग में एक पर्वत जहाँ कावेरी का उद्‌गम है। [इस ग्रन्थ में दण्डकारण्य में ब्रह्मगिरि की स्थिति मानी गई है।]

**भैरववापी**—? [ग्रन्थकार ने एकलिंग क्षेत्र में ही इस की कल्पना की है।]

**भोगवार**—[यह संज्ञा कीटकार की भाँति सम्प्रदाय भेद के प्रसंग में आयी है, संभवतः स्थान से इसका सम्बन्ध नहीं है।]

**महाकालवन**--देखें उज्जयिनी।

**महाराष्ट्र**--गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच का भाग। किसी समय यह दक्खन का पर्याय था। इसकी प्राचीन राजधानी गोदावरी के तट पर प्रतिष्ठान (पैठण) थी। बुद्धकाल में इस प्रदेश का नाम अश्मक था। इस प्रदेश के राजवशों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-- (१) पुराणोक्त आन्ध्रभृत्यवंश जिनकी अपर संज्ञा शातकर्णी अथवा शालिवाहन थी। (२) क्षत्रप राजवंश ने दक्खन के कुछ भाग पर तृतीय शताब्दी ई० में राज्य किया (३) तीसरी शताब्दी में ही कुछ समय तक आभीरों का राज्य रहा (४) चौथी से छठी शताब्दी तक राष्ट्रकूट, (आधुनिक राठौड़) जिनकी अपर संज्ञा राठी अथवा राष्ट्रिक भी है, का राज्य रहा। महारट्टी अथवा महरट्टा और महाराष्ट्रिक संज्ञा यहीं से आयी। (५) छठी से आठवीं शती तक चालुक्यवंश का राज्य रहा। पुलकेशी प्रथम, जिसने अश्वमेध यज्ञ किया था, ने राजधानी पैठण से वातापीपुर में स्थानान्तरित की। उसका पौत्र पुलकेशी द्वितीय इस राजवंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा था। (६) चालुक्यों को पराजित कर ८वीं शती में एक बार पुनः राष्ट्रकूटों का राज्य स्थापित हुआ। जिनका सर्वाधिक शक्तिशाली राजा गोविन्द तृतीय था। उसके पुत्र अमोघवर्ष ने मान्यखेत (आधुनिक मालखेड) को अपनी राजधानी बनाया। (७) दसवीं शती में राष्ट्रकूट राजवंश को जीत कर परवर्ती चालुक्य राजवंश के तैलप ने पुनः अपना राज्य जमाया। सोमेश्वर प्रथम (१०४०-१०६९ ई०) ने मान्यखेत से कुन्तल देश स्थित कल्याण में अपनी राजधानी बसाई। इत्यादि।

**मागध**--(मगध) दक्षिण बिहार का प्राचीन नाम। इसकी पश्चिमी सीमा सोन नदी थो। मगध का नाम सर्वप्रथम अथर्व संहिता (५।२२।१४) में आया है। मगध की प्राचीन राजधानी (जरासन्ध के समय गिरिव्रजपुर (आधुनिक राजगीर) थी। बुद्ध के काल में मगध के शासक अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र का विकास किया जहाँ पाटलिग्राम नाम का एक छोटा सा गाँव था। उसके पौत्र ने राजधानी राजगीर से पाटलिपुत्र में स्थानान्तरित की। किसी काल में गंगा के दक्षिण भाग में बनारस से मुंगेर तक और दक्षिण की ओर बढ़ते हुए सिंहभूम तक मगध का विस्तार था।

**मानस (सर)**--कैलाश पर्वत पर पश्चिमी तिब्बत (हूण देश) में स्थित सरोवर।

**माहेन्द्री (नदी)**---? उड़ीसा से मदुरा जिले तक विस्तृत पर्वतमाला का नाम महेन्द्र है। पूर्वी घाटों का यह सामान्य नाम है। परशुराम रामचन्द्र को अपना धनुष देने के बाद इसी पर्वत पर चले गये थे। रघुवंश (६।५४) में इसे कलिंग में रखा गया। गंजाम को महानदी की घाटी से पृथक् करने वाली पर्वतमाला को यह संज्ञा विशेष रूप से दो जाती है। [माहेन्द्री को महानदी का पर्याय भी शायद माना जा सके, अथवा महेन्द्र पर्वत की विस्तृत श्रेणो में किसी अन्य नदी को शायद यह नाम दिया गया हो। हमारे लेखक ने वाल्मीकि को माहेन्द्री तीर निवासी कहा है।]

**मेदपाट**---मेवाड़ का संस्कृत रूपान्तर। बौद्ध काल में इसका नाम शिवि था। इसको राजधानी जेतुत्तर थी जिसे आज 'नगरी' कहते हैं, जो चित्तौड़ से ११मील उत्तर में है। [देखें संपादकीय भूमिका]

**मेरु (गिरि)**---(१) गढ़वाल में रुद्र हिमालय, जहाँ गंगा का उद्गम है। इसे ५ शिखरों के कारण पञ्चपर्वत भी कहते हैं, ५ शिखरों के नाम हैं---रुद्र हिमालय, विष्णुपुरी, ब्रह्मपुरी, उद्गारिकण्ठ, और स्वर्गारोहिणी। मत्स्यपुराण (अ० ११३) के अनुसार सुमेरु पर्वत की उत्तरी सीमा उत्तर कुरु थी, दक्षिणी सीमा भारतवर्ष, पश्चिमी सीमा केतुमाल, पूर्वी सीमा भद्राश्ववर्ष थी। पद्मपुराण (अ० १२८) के अनुसार गंगा सुमेरु से निकलती है भारतवर्ष में बहती हुई समुद्र में मिल जाती है। गढ़वाल की जनश्रुति के अनुसार आज भी केदारनाथ पर्वत को वास्तविक सुमेरु माना जाता है। स्थानीय परम्परा मेरु पर्वत को अल्मोड़ा जिले के उत्तर की दिशा में बताती है। (२) शकद्वीप (मध्य एशिया जिसमें तुर्किस्तान भी शामिल है) में एक पर्वत का नाम भी मेरु

है (महा० भीष्मपर्व अ० ११) जिसका नामान्तर हिन्दुकुश पर्वत है।

**रामेश्वर**—द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक। भगवान् रामचन्द्र द्वारा सेतु बन्ध के समय स्थापित। [ओझा ने ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत रामेश्वर तीर्थ का उल्लेख किया है—उदयपुर का इतिहास पृ० ३]

**रेवा**—नर्मदा का नामान्तर (मेघदूत १।२०; पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड अ० १०) किन्तु कुछ पुराणों के अनुसार नर्मदा और रेवा भिन्न नदियाँ हैं (वामन पु० १३।२५, ३०; भागवत ५।१९।१८)

**रेवा-कपिल-संगम**—अन्वर्थ [इस ग्रन्थ में ओंकार क्षेत्र में इसकी स्थिति बताई है; रेवा और कपिलधारा का संगम तो ओंकार क्षेत्र में नहीं है। देखें कपिलधारा]

**लावण्यह्लद**—लवणा, जिसका अपभ्रंश लूनी या नूननदी है, का नाम मालतीमाधव के नवें अंक में आया है। [संभवतः इसी नदी के उद्गम-स्थान को लावण्यह्लद कहते हों। किन्तु ग्रन्थकार ने अमरकण्टक के समीप कहीं इस ह्लद की स्थिति का संकेत किया है।]

**वर्णनासा (नदी)**—बनास का संस्कृत मूल रूप। मेवाड़ की बनास नदी इतिहास-प्रसिद्ध है। "यह नदी कुम्भलगढ़ के निकटसे निकलकर नाथद्वारा के पास से बहती हुई माँडलगढ़ के समीप पहुँचती है। वहाँ पर दाहिनी ओर से आ कर बेड़च इसमें मिलती है, उसी स्थान पर मैनाली नदी भी इसमें मिल गई है। इसी से वह स्थान त्रिवेणी-तीर्थ कहलाता है। वहाँ से उत्तर की तरफ आगे बढ़ने पर कोटेसरी (कोटारी) भी इसमें जा मिली है। फिर जहाजपुर की पहाड़ियों में होती हुई देवली के निकट इस (उदयपुर) राज्य में १८० मील बहने के बाद अजमेर और जयपुर की सीमा में बहती हुई यह रामेश्वरतीर्थ (ग्वालियर राज्य) में मिल जाती है।" (ओझा, पृ० ३)

**वाराणसी**—वरुणा और असी नदियों के मध्य स्थित प्राचीन नगरी। महाभारत अनुशासन पर्व अ० ३० के अनुसार यह पहले गंगा और गोमती के संगम पर स्थित थी। यह काशी राज्य की राजधानी थी (रामा० उत्तर० अ० ४८) बुद्ध के समय काशीराज्य कोशल के अन्तर्गत था। जेम्स प्रिंसेप के अनुसार पुरूरवा (प्रयाग के निकट प्रतिष्ठान के राजा) के वंशानुक्रमी कश ने काशी की स्थापना की थी। बौद्धधर्म के प्रचार के बाद यहाँ कई शताब्दियों तक बौद्ध और शैव उपासनाओं में परस्पर पराभव-विभव प्रमुख रूप से चार बार हुए। ११वीं शती

के आरम्भ में यह गौड़ में सम्मिलित हो गई। किन्तु इसी शती के अन्त में चन्द्रदेव ने इसे पाल राजाओं से छीनकर कन्नौज में मिला दिया। १२वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मुहम्मद गोरी ने कन्नौज के जयचन्द को हराकर वाराणसी को जीत लिया।

पद्मपुराण में विश्वेश्वर, बिन्दुमाधव, मणिकर्णिका ज्ञानवापी के नाम वाराणसी के प्रसंग में लिये गये हैं। विश्वेश्वर द्वादश ज्योतिर्लिगों में एक हैं। विश्वनाथ की एक विराट् धातुप्रतिमा का वर्णन चीनी यात्री ह्यूनत्स्यांग ने किया है; वह प्रतिमा औरंगजेब नें नष्ट कर दी।

बंगाल के पाल राजाओं और कन्नौज के राठौड़ों का दुर्ग राजघाट पर वरुणा और गंगा के संगम पर स्थित था। वाराणसी देवी के पीठों में से एक है। यहाँ सती का बायाँ हाथ गिरा था ऐसी पौराणिक प्रसिद्धि है, उसको प्रतिनिधि अन्नपूर्णा देवो हैं। किन्तु तन्त्रचूडामणि में यहों की देवी का नाम विशालाक्षा कहा गया है।

प्राचीन भारत में दो वैदिक विश्वविद्यालय थें एक वाराणसी और दूसरा तक्षशिला।

युवञ्जय जातक में वाराणसी के प्राचीन नाम सुरन्धन, सुदर्शन, ब्रह्मवर्धन, पुष्पवती और रम्या कहे गय हैं।

**विदेह**—राजा जनक का राज्य। आज यह तिरहुत कहलाता है। मिथिला नाम विदह प्रदेश तथा उसकी राजधानी दोनों का था। आज दरभंगा जिले में जनकपुर के नाम से एक नगरो है जहाँ राजा जनक की राजधानो मानो जाता है। बाद में वाराणसी विदेह की राजधानी बन गयी। विदेह की पूर्वी सोमा कौशिकी (कुशो) नदो, पश्चिमो सीमा गण्डक नदो, उत्तरो सीमा हिमालय और दक्षिणा सोमा गंगा थी। बुद्ध के समय यह प्रदश विज्जियों के हाथ में था।

**विन्ध्याद्रि**—(१) विन्ध्य पर्वतमाला। विन्ध्यवासिनी देवी का सुप्रसिद्ध मन्दिर (देवा भा० ७।३०) मिर्जापुर के निकट पर्वतीय प्रदेश मे है। अष्ट-भुजा योगमाया का मन्दिरजो ५२ पोठों में से एक है, जहाँ सतो का बाँया पैर गिरा था, विन्ध्यवासिनो-मन्दिर से थोड़ी ही दूर है। विन्ध्याचल नाम का उपनगर पम्पापुर नामक प्राचीन नगर के घेरे में था। दुर्गा के साथ शुम्भ-निशुम्भ का युद्ध विन्ध्याचल में ही हुआ था। (२) पार्जिटर ने एक और विन्ध्याचल भी खोज निकाला है जो मैसूर के दक्षिण में पर्वतों और पठार के रूप में है। हमारे लेखक को एकलिङ्ग मन्दिर के

निकट की वह पहाड़ी अभिप्रेत है जहाँ आज भी विन्ध्यवासिनी का मन्दिर है]

**विन्ध्याटवी**—खानदेश (प्राचीन नाम-हैहय) के कुछ भाग और औरंगाबाद, जो विन्ध्यपर्वतमाला के पश्चिमी छोर के दक्षिण में है। नासिक इसी में है।

**वेत्रवती**—(१) भोपाल राज्य में बेतवा नदी, जो यमुना की एक उपनदी है (मेघ० १, २५) भिलसा अथवा प्राचीन विदिशा इसी के तट पर है। (२) वात्रक नदी जो गुजरात में साबरमती की उपधारा है। इसी के तट पर खेड़ा (प्राचीन खेटक) उपनगर स्थित है। यह वृत्रघ्नी से अभिन्न है।

**वैद्यनाथ**—द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक। सन्थाल परगना में देवघर में यह मन्दिर है। यहाँ शिवलिंग-स्थापना रावण ने की थी ऐसा कहा जाता है। यहाँ एक पार्वती का मन्दिर भी है जो ५२ शक्ति-पीठों में से हार्द-पीठ कहलाता है, क्योंकि यहाँ सती का हृदय गिरा था। शिवपुराण में इस स्थान का नाम परलीपुर या परलीग्राम दिया गया है। इसी के अपभ्रंश पलुगाँव का भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। वैद्यनाथ क्षेत्र को चिताभूमि कहा जाता है।

रावण जब कैलाश से महादेव को लेकर आ रहा था तो हरीतकी वन (वैद्यनाथ-क्षेत्र का प्राचीन नाम) में पहुँचने पर उसे पेट में अस्वस्थता का बोध होने लगा क्योंकि वरुण उसके पेट में घुस गया था। अपनी अस्वस्थता मिटाने के लिये वह ब्राह्मण-वेशधारी विष्णु के हाथ में महादेव को पकड़ाकर स्वयं शंका-निवारण के लिये हरीतकी वन में चला गया। उस शंका निवारण के फलस्वरूप कर्मनाशा नदी हरीतकी वन के उत्तर में बहने लगी। इस बीच विष्णु ने महादेव की स्थापना देवघर में कर दी और स्वयं अदृश्य हो गये।

यहाँ से कुछ दूर तपोवन पर्वत है जहाँ रावण ने तप किया था।

**शारणेश्वर**—?

**शारदामठ**—आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों में से द्वारका का मठ।

**शूरसेन**—इस राज्य की राजधानी मथुरा थी। वसुदेव एवं कुन्ती के पिता शूरसेन थे, जिनके नाम से इस क्षेत्र का नाम शूरसेन हुआ।

**शोणभद्र**—सोन नदी। यह मगध की पश्चिमी सीमा थी। रामायण के समय सोन राजगृह के पूर्व की ओर बहती थी।

**श्रीगिरिमठ**—शृङ्गेरी मठ। शृङ्गगिरि का अपभ्रंश शृङ्गेरी है। यह मैसूर के निकट है। यह वास्तव में ऋष्यशृङ्गगिरि का संक्षिप्त नाम है।

**सरस्वती**—(१) हिमालय की शिवालिक गिरि-शृङ्खला में इस का उद्गम है और यह अम्बाला के निकट आदिबद्री नामक स्थान पर मैदान में प्रकट होती है। यह कुछ स्थान पर प्रकट और कुछ पर अप्रकट रहती है। इसके प्रकट और अप्रकट होने के तीन स्थान महाभारत में कहे गये हैं। ऋग्वेद के अनुसार यह बहने वाली नदी है, इसके अप्रकट होने की कोई बात वहाँ नहीं है। कुरुक्षेत्र-सरस्वती अथवा प्राची सरस्वती, पुष्कर-सरस्वती इस प्रकार के नाम भी मिलते हैं। (२) गुजरात में सोमनाथ के निकट एक नदी, जिसे आज रौणाक्षी कहते हैं। इस का पौराणिक नाम प्रभास-सरस्वती है। इसी के तट पर श्रीकृष्ण ने महाप्रयाण किया था। (३) अफ़गानिस्तान की हेलमन्द नदी जिसका अवेस्ता में नाम हरखैती है। कुछ विद्वानों के अनुसार अथर्ववेद में उल्लिखित तीन सरस्वतियों का तादात्म्य हेलमन्द, सिन्धु (जिसका प्राचीन नाम सरस्वती था) और कुरुक्षेत्र-सरस्वती से था। (४) गढ़वाल में अलकनन्दा (गंगा) की एक उपनदी।

**सेतुबन्ध**—देखें रामेश्वर।

**सोमनाथ**—काठियावाड़ (सौराष्ट्र) का प्रसिद्ध देवस्थान। इस का नामान्तर देवपत्तन भी है। सोमनाथ भी द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में एक है। इसे सोमेश्वरनाथ भी कहते हैं। ये चालुक्यवंशी राजाओं के कुल-देवता थे।

**सौराष्ट्र**—प्राचीनकाल में यह संज्ञा सिन्ध से लेकर भड़ोच तक गुजरात, कच्छ और काठियावाड़ के सम्मिलित प्रदेश की वाचक थी। इस का पर्याय सौराज्य था। इस की राजधानी बलभी थी। अशोक और मौर्य राजाओं के समय इसके शासक क्षत्रप थ। गुप्त राजाओं के समय इस की राजधानी वामनस्थली (आधुनिक वनथली) थी। [आजकल इसे काठियावाड़ का ही पर्याय माना जाता है।]

**स्वामी नदी**—पश्चिमी घाटों की शृंखला में पुष्पगिरि अथवा सुब्रह्मण्य पर्वतमाला के अन्तर्गत बिसलीघाट से कुमारधारा नाम की नदी निकलती है। इस नदी पर स्थित तीर्थ को कुमारस्वामीतीर्थ कहते है। [प्रथम दृष्टि में ऐसा लगता है कि संभवतः स्वामी नदी से कुमारधारा

ही अभिप्रेत हो, क्योंकि कुमार और स्वामी का समास भी विख्यात है और दोनों प्राय: पर्याय-वत् भी हैं। किन्तु हमारे ग्रन्थ में स्वामी नदी का सम्बन्ध सोमनाथ से जोड़ा गया है जिससे ऐसा लगता है कि संभवत: प्रभास-सरस्वती से तात्पर्य हो]

**हरिद्वार**—यह गंगा के दक्षिण तट पर उस स्थल पर है जहाँ नदी शिवालिक पर्वतमाला से उतर कर मैदान में आती है। गंगा के उद्गम से यह स्थान प्राय: २०० मील पर है। इसे गंगाद्वार भी कहते हैं।

**हिमाद्रि**—हिमालय पर्वत।

**हृषीकेश**—इसे ऋषिकेश भी कहते हैं। यह हरिद्वार से उत्तर प्राय: २४ मील की दूरी पर है। वराहपुराण (अ० १४६) के अनुसार यहाँ देवदत्त का तपोवन था। यह भागीरथी के तट पर बद्रीनाथ के मार्ग पर स्थित है। उत्तराखण्ड की पर्वतश्रेणी यहीं से शुरू होती है।

## चतुर्थ परिशिष्ट

# कारवणमाहात्म्यम्

गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला क्रमाङ्क २५ (सन् १९२०) में गणकारिका प्रकाशित हुई थी। लकुलीश पाशुपत मत का यह एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ है। इस में चौथे परिशिष्ट के रूप में कारवणमाहात्म्य का मूलपाठ दिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन के लिये उपयोगी सामग्री के रूप में हम उसे किञ्चित् संक्षेप के साथ उद्धृत कर रहे हैं।

कारवणमाहात्म्य में भगवान् शिव के जन्म की कथा कही गयी है। उल्कापुरी के एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में कारवण क्षेत्र में लकुलीश के रूप में भगवान् का जन्म हुआ। इसमें पूजाविधि और पट्टबन्ध का माहात्म्य कहा गया है। इस में चार अध्याय हैं। पहले का सम्बन्ध वायु-पुराण से, शेष तीन का शिवपुराण से जोड़ा गया है।

### प्रथम अध्याय—कथासंक्षेप एवं संक्षिप्त मूलपाठ

आरम्भ में लकुटपाणीश के रूप में अवतरित शिव की वन्दना की गई है। फिर शिव और पार्वती में एक वार्तालाप है, जिसमें पार्वती पट्टबन्ध का माहात्म्य पूछती हैं। शिव कलि और द्वापर के मध्य में अपने अवतार की कथा सुनाते हैं।

अत्रि ऋषि के वंशज विश्वरूप नाम के ब्राह्मण और उसकी पत्नी सुदर्शना के यहाँ चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को पिङ्गलाक्ष पिंगकेश वाले बालक का जन्म हुआ। उसके शरीर का वर्ण तप्त काञ्चन जैसा था। श्रावण के अन्त में सूर्यग्रहण के उपलक्ष्य में ब्राह्मण कुरुक्षेत्र का यात्रा के लिये गया और पत्नी को अग्निहोत्र सौंपकर गया।

अमरगणनिषेव्यः सर्वसिद्धिप्रदाता
कलियुगमवतीर्णः कार्यरूपो महेशः।
सकलभुवनकर्ता सर्वपापप्रहर्ता
दिशतु लकुटपाणिर्वो विभूतिं प्रसन्नः॥
कैलासशिखरारूढं भगवन्तं त्रिलोचनम्।
महादेवं महाकालं महाभैरवरूपिणम्॥

एकाकिनं प्रभुं दृष्ट्वा पप्रच्छ पार्वती तदा ।

श्रीदेव्युवाच—

पट्टबन्धस्य माहात्म्यं विस्तरात् कथय प्रभो ।

ईश्वर उवाच—

कलिद्वापरयोर्मध्ये अवतारं मम शृणु ।
यस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥
अत्रिनामा तु देवर्षिः पूर्वं ख्यातो महातपाः ।
तदन्वये प्रसूतोऽसौ विश्वरूपो महाद्विजः ॥
सुदर्शनस्तु देवेशि ! तस्य पत्नी सुदर्शना ।
सर्वलक्षणसंपन्ना रूपलावण्यसंयुता ॥

हर्षगद्गदसंभाषां मत्तमातङ्गगामिनी ।
सम्पूर्णेन्दुमुखी सुभ्रूः कुरङ्गचकितेक्षणा ॥
पतिव्रतधरा साध्वी पत्युरादेशकारिणी ।
यथा रूपं तथा शीलं साध्वीनां धुरि कीर्त्तिता ॥
ब्रह्मरात्र्यवसाने तु प्रथमे च चतुर्युगे ।
अवतीर्णो ह्ययं मर्त्ये उल्काग्रामे विलोमतः ॥

वीरभद्रो गणो नाम....तस्य वरानने ।
तस्य चैकाग्रतो भक्तेरवतीर्णो स्वयं ततः ॥
उपपन्नस्ततो गर्भे मासि भाद्रपदे तदा ।
देवकार्यस्य कार्यार्थं मर्त्यलोके वरानने ।
एवं चैवाश्विनो मासस्तथा वै कार्त्तिको गतः ॥

अथ मार्गशिरोमासस्तथा पौषः प्रकीर्तितः ।
माघमासो गतो देवि तथा वै फाल्गुनः स्मृतः ॥
सम्प्राप्ते चैत्रमासे तु शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
अर्धरात्रे व्यतीते तु प्रसूता सा कुलाङ्गना ॥
सूतिकास्था महादेवि महासत्यवती सती ।
अपश्यदात्मनो बालं जातमात्रं वरानने ॥

पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशं च तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।
सुदृढं बाहुयुगलंमूरू च सुदृढौ तथा ॥
.... .... .... .... ....

स्वजना बान्धवा ये च श्याला: सम्बन्धिनस्तदा ।
विद्यार्थिनस्तु ये विप्रा ये चान्ये आश्रिता जनाः ॥
कृताञ्जलि: पुरो भूत्वा बालं यत्नेन रक्षत ।
एवं समर्पयन् बालं कुरुक्षेत्रं प्रतस्थिवान् ॥

इति श्रीवायुपुराणे शिवप्रसूतिसर्ग: (प्रथम:)

## द्वितीय अध्याय—कथासंक्षेप एवं मूलपाठ का आदि-अन्त

आश्विन मास में एक दिन प्रात: ब्राह्मणी अग्नि पर घृत डाल कर एक ब्राह्मण को बुलाने गई। लौट कर उसने देखा कि अग्नि ठीक से प्रज्वलित है और अग्निहोत्र की विधि सम्पन्न हो चुका है। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। फिर प्रत्येक रात्रि में वह इस शिशु द्वारा इस कृत्य की पुनरावृत्ति देखती रही। तीर्थयात्रा से पति के लौटने पर उसने यह आश्चर्य वृत्तान्त कह सुनाया। माता-पिता ने शिशु को अग्नि में आहुति देते देखा।

अत:परं प्रवक्ष्यामि कुमारचरितं परम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तत्सर्वं कथयामि ते ॥
.... .... .... .... ....

समीपे च गृहं गत्वा उपसृत्य च सुन्दरि ।
एकाग्र: प्रयतो भूत्वा मुहुस्तिर्यङ् निरीक्षयन् ॥
पर्यङ्कादुत्थितो बाल: प्रेमं (?) दत्त्वा यथा व्रजन् ।
पुनस्तत्रैव गच्छन्तौ दम्पती तदनन्तरम् ॥

इति श्रीशिवपुराणे लकुलीशमाहात्म्ये सन्तोषकरणं
नामाध्याय: (द्वितीय:) ॥

## तृतीय अध्याय—कथासंक्षेप एवं संक्षिप्त मूलपाठ

बालक जब अग्निहोत्र पूरा कर चुका तब माता-पिता ने उससे पूछा—पुत्र तुम थक तो नहीं गए हो? उनके इतना कहते ही शिशु मूर्च्छित हो कर पञ्चत्व को प्राप्त हो गया। माता पिता ने मृत शिशु को देवखात नामक बड़े जलाशय में विपुल जल में डाल दिया। कच्छप उसे जलेश्वर देव के पास ले गये (जलेश्वर = जल में स्थित महालिङ्ग)। तीरस्थ ब्राह्मणों ने बालक को इस प्रकार खेलते देख कर महान् आश्चर्य किया और उसे पुकार कर पूछा तुम कौन हो?........स्तुति.... ।

**ईश्वर उवाच—**

ततः प्रभातसमये तथा दृष्ट्वा तु पार्वति !
आहतुस्तौ विशालाक्षं पुत्र ! श्रान्तोऽसि को भवान् ?
इति वाक्यावसाने तु मूर्च्छितः पतितो भुवि।
मूर्च्छितं च सुतं दृष्ट्वा विस्मिता च सुदर्शना ॥
दिशो निरीक्षण कृत्वा पतिता धरणीतले।
सप्तमासस्तु देवेशि ! सुतः पञ्चत्वमागतः ॥
.... .... .... ....

**ऋषय ऊचुः—**

बालस्य चरितं दृष्ट्वा ऋषयो विस्मयान्विताः।
ब्रूहि त्वं को भगवान् ? कस्य ? सत्यधर्मपरायणः ॥

**बाल उवाच—**

क्षितिजलपवनेभ्यस्तेजसश्चैव देशाद्
उपचितनरवेशः सम्भवो द्रव्यराशिः।
श्रवणनयनजिह्वाघ्राणसंस्पर्शवेत्ता
क्षितितलपरिवर्ती कोऽप्यहं प्राणधर्मः ॥

**ऋषय ऊचुः—**

नमो बालकरूपाय अव्यक्ताय नमो नमः।
व्योमप्रमाणकायाय कामेशाय नमो नमः ॥
व्योमप्रमाणविद्याय विद्येशाय नमो नमः।
व्योमप्रमाणकालाय कालेशाय नमो नमः ॥
व्योमप्रमाणधर्माय धर्मेशाय नमो नमः।
व्योमप्रमाणविश्वाय विश्वेशाय नमो नमः ॥
एकवक्त्रद्विवक्त्राय बहुवक्त्राय ते नमः।
एककण्ठद्विकण्ठाय बहुकण्ठाय ते नमः ॥
एकहस्तद्विहस्ताय बहुहस्ताय ते नमः।
एकनेत्रद्विनेत्राय बहुनेत्राय ते नमः ॥
नमस्तेऽस्तु महादेव ! नमस्तेऽस्तु महेश्वर !
नमस्तेऽस्तु महारुद्र ! नमस्ते बालरूपिणे ॥

नमस्तेऽस्तु महासिद्ध ! देवखातसमुद्भव !
नमस्तेऽस्तु महारुद्र ! नमस्तेऽस्तु सदा हरे ॥
अव्यक्ताय नमस्तुभ्यं शाश्वताय च ते नमः ॥
एवं स्तवेन देवेशं स्तौति यो लकुडेश्वरम् ।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो शिवलोके महीयते ॥
भोगार्थी लभते भोगान् योगार्थी योगमाप्नुयात् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति सत्वरम् ।
शिवस्य पदमाप्नोति नित्यं पठति यो नरः ॥

इति श्रीशिवपुराणे लकुलीशमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥

## चतुर्थ अध्याय—कथासंक्षेप एवं संक्षिप्त मूलपाठ

यं चारुचामीकरराशिगौरं
संस्कारविद्याव्रतमन्त्रधौताः ।
समाविशन्ति प्रतिगृह्य कायं
लोकप्रवीराय नमोऽस्तु तस्मै ॥

.... .... .... .... ....

प्रकाशयत् स्वरूपं च दिव्यं त्रैलोक्यमोहनम् ।
त्रिनेत्रं च सुदीप्तं च मुक्तकेशञ्च सुव्रते ॥
धृतयज्ञोपवीतं च मेखलाभस्मसंयुतम् ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे नित्यं प्रोत्फुल्ललोचनम् ॥
ऋग्यजुःसामसम्बन्धैर्दिव्याभिः स्तुतिसंयुतैः ।
स्तोत्रैर्मनोरमैः स्तुत्वा धावमानं पुनः पुनः ॥
हर्षगद्गदया वाचा संभाव्य तं च बालकम् ।
कृताञ्जलिपुराः सर्वे स्तुतिं समुपचक्रमुः ॥

.... .... .... .... ....

फिर ऋषियों ने पिता की प्रशंसा की । तब बालक उन सब के आगे-आगे भागने लगा । क्षणमात्र अदृश्य हो कर—

ऊर्वा नाम्ना तु या देवी नदीनाम्ना सरस्वती ।
भृगुक्षेत्रोपकाराय त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥

नदीतीरे गतो बाल: क्रीडमानस्तु तिष्ठति ।
तत: पश्चिममार्गेण श्रीमत्कायावरोहणम् ॥
.... .... .... .... ....

सभी ब्राह्मण, स्वजन विकल हो कर बालक को खोजने लगे । किन्तु लकुलीश वायुवेग से चक्रपुर पहुँच गये । सभी लोग रोते-बिलखते पीछे-पीछे दौड़कर बुलाते रहे । तब बालक ने कहा—

**कुमार उवाच—**

मा मा स्पृशन्ति मुनयो मम माता पिता तथा ।
अस्ति कार्यं परं किञ्चित् शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ॥
त्यज शोकं विशालाक्षि ! न मे माता कदाचन ।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे इतिहासं पुरातनम् ॥
अहं सर्वजगद्व्यापी स्वयं साक्षान्महेश्वरः ।
ऋषीणां वरदानाय उल्काग्रामे महर्षयः ॥
प्रकाशाय द्विजातीनां धर्मसंस्थापनाय च ।
अवतीर्णः स्वयं देवि ! तं वेद मां पुरातनम् ॥

**ऋषय ऊचुः —**

त्वं देवः सर्वदेवानां कर्ता हर्ता जगत्पतिः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता त्वं भोगमोक्षमभीप्सितम् ॥
किं पुण्यं के गुणास्तस्य येन देवि (?) प्रशंसति ।
उल्काग्रामस्य माहात्म्यमशेषं कथय प्रभो ! ॥

तब उन सब के अनुरोध पर बालक ने उल्काग्राम का माहात्म्य कहा, उसे शिवक्षेत्र बताकर वहाँ स्थित देवह्रद में गंगा-सरस्वती-तापी-यमुना-नर्मदा-सरयू इत्यादि सभी का समावेश बताया और कहा कि उन सब के स्नानादि का फल यहाँ मिल जाता है । इसके बाद—

ईशानश्चोत्तरेशाने भालाक्षो देवतागणैः ।
पृष्ठभागे पुनर्दृष्ट्वा जननीजनकादयः ॥
ततो मया धृतः कोणः भृकुटीकुटिलाननम् ।
ततो मे भृकुटीं दृष्ट्वा स ऋषिर्दीनमानसः ॥

विचेतनः पुनर्जातः पुनराश्वासितो मया ।
अत्रैव स्थीयतां ब्रह्मन् ! आवयोः संगकारणम् ।
मया तु दण्डकाष्ठेन नदीनामा तु जाह्नवी ॥
आनीता जाह्नवी पुण्या पुण्यतोयावगाहिता ॥
सर्वतीर्थमयी पुण्या देवखातेषु दुर्लभा ।
दीर्घा रेखा कृता यस्मात् तेनेय दीर्घिका स्मृता ॥

दीर्घिका के पास वृद्धदेव का स्थान था। बालक ने वहाँ आश्रय माँगा, किन्तु वृद्धदेव ने कहा—

ममैतत् सङ्कटस्थानं कथं तह्र्यावयोर्भवेत् ।

बालक ने फिर भी आग्रह किया, किन्तु वृद्धदेव ने कहा कि तुम ब्रह्मेश्वर के समीप ब्रह्मतीर्थ में जाओ।

श्रीमहादेव उवाच—

वृद्धस्य वचनं श्रुत्वा लकुलीशो वरानने ।
ब्रह्मेश्वरं समासाध्य तस्मिन्नेव लयं गतः ॥
स्थितः स भगवान् तत्र कायरूपी महेश्वरः ।
येन कायावतारोऽसौ तेनेदं कायरोहणम् ॥
असिदण्डधरो वामे दक्षिणे बीजपूरकम् ।
ब्रह्मलिङ्गे महादेवि ! अहमपि लयं गतः ॥
कायावरोहणे पुण्ये तीर्थे तीर्थवरोत्तमे ।
भृगुक्षेत्रपवित्रार्थमवतीर्णो युगे युगे ॥
आदिकल्पावसाने तु ब्रह्मकल्पे पुरातने ।
ब्रह्मणो मनसः पुत्रो अत्रिनामा च विश्रुतः ॥
अत्रिस्तु जनयामास आत्रेयं नाम नामतः ।
आत्रेयादग्निशर्मोऽपि अग्निशर्मसुतः शुचिः ॥
सोमशर्मेति विख्यातो धर्मशीलो जितेन्द्रियः ।
सोमशर्मसुतो जातो विश्वरूपो द्विजोत्तमः ॥
विश्वरूपादहं जातो बालरूपधरो हरः ।
येन व्याप्तं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
जगत्प्राणस्वरूपोऽहं जन्तूनां जीवलक्षणम् ।
योगिनां परमं ब्रह्म ब्रह्मणा परिकीर्तितम् ॥

तन्मां विद्धि महादेवि ! विश्वरूपं जगद्गुरुम् ।
चराचरेषु विख्यातं देहिनां देहमाश्रितम् ॥
समानो नाम यो वायुर्भूतानां विषयात्मवान् ।
तत्रोत्पन्नश्च तत्रैव मया संक्रमणं कृतम् ॥
लम्बकस्तु समानस्याव्यापकस्तु व्यवस्थितः ।
आत्मरूपसमानस्य प्राणिनां परमः शिवः ॥
अवतीर्णस्ततो मर्त्ये कायरूपधरो हरः ।
कायावतारे लोकेशो लोकानां हितकाम्यया ॥

**ईश्वर उवाच—**

ईशानः प्रथमे जातो द्वितीये तु महाबलः ।
तृतीये तु युगे जातो वृद्धदेवो महेश्वरः ॥
प्राप्ते कलियुगे घोरे धर्मसंस्थापनाय च ।
सवपापहरं पुण्यं श्रीमत्कायावरोहणम् ॥
कोटिलिङ्गस्य संस्थानं शिवक्षेत्रेण निर्मितम् ।
सर्वं तीर्थमिदं देवि ! विख्यातं भृगुमण्डले ॥
श्रीमत्कारवणे तीर्थे मूर्तिमान् शङ्करः स्वयम् ।
चातुर्युगमिदं तीर्थं शिवशक्त्या समन्वितम् ॥
भृगुक्षेत्रपवित्रार्थं निर्मितं शम्भुना स्वयम् ।
कृते इच्छापुरी नाम त्रेतायां च मयापुरी ॥
द्वापरे मेघवती नाम कलौ कायावरोहणम् ।
श्रीमातेति कृते प्रोक्ता त्रेतायां भूलम्बा मता ॥
आदौ चान्ते महादेवि ! मूर्तिमन्तौ महेश्वरौ ।
लिङ्गमूर्त्ती द्वयोर्मध्ये स्वयं साक्षाद् युगेश्वरः ॥
ईशानं कृत्तिकानाथं सानन्दं लकुलीश्वरम् ।
पश्यन्ति ये नरा नित्यं ते नरा गतकल्मषाः ॥
ईशानं प्रवरं तीर्थमीशानो यत्र तिष्ठति ।
प्रवरः सर्वदेवानां सर्वपापोपशान्तिदः ॥
ईशानः सर्वतन्त्रेषु सर्वतन्त्रेषु नायकः ।
ईशानः सर्वदेवश्च तस्मादीशानो वै प्रभुः ॥
तमीशानं समासाध्य विधिना श्रद्धया सह ।
शिवोक्तेन च मन्त्रेण पूजयित्वा जगद्गुरुम ॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
प्राप्नोति परमं स्थानं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
महाबलं ततस्तीर्थं यत्र तप्तं तपः पुरा ।
ऋषिभिर्देवमुख्यैश्च परं मोक्षमभीप्सुभिः ॥
पुरा त्रेतायुगे देवि ! तीर्थे तीर्थवरोत्तमे ।
सालंकाय (?) पौत्रेण नन्दिना भावितात्मना ॥

आराध्य तपसा तेन दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
ध्यानयुक्तः सदा तिष्ठन् जपन् इन्द्रियनिग्रहः ॥
एकचित्तश्च शान्तात्मा मम वाक्यपरायणः ।
तोषितोऽहं तदा देवि ! वरमस्मै प्रदत्तवान् ॥
त्रिनेत्रः शूलपाणिश्च मम रूपस्वरूपधृक् ।
सप्तर्षिभिश्च भानुना परमार्थविशारदैः ॥

प्राप्ता तैः परमा सिद्धिरक्षया लोकदुर्लभा ।
अन्यैश्च बहुभिः सिद्धैस्तपसा पुष्कलेन च ॥
अपरे तु युगे प्राप्ते वृद्धदेवो महोदयः ।
यत्र सिद्धो महामेधाः स्वयं देवो महेश्वरः ॥
अस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ।
क्षेत्राधिपं तु तं विद्धि स्वयं तत्र व्यवस्थितः ॥

घोरे कलियुगे प्राप्ते देवदेवो जगद्गुरुः ।
लकुलीश इति ख्यातः त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥
तत्रस्थजीवलोकानां मुक्त्यर्थं नैव संशयः ।
ज्ञानमूर्त्तिः स्वयं साक्षाद् देवदेवो भवोद्भवः ॥
आत्मस्थं चिन्तय ज्ञानं वीतरागं च केवलम् ।
तत्तीर्थं लाकुलं ज्ञेयं शिवक्षेत्रमुदाहृतम् ॥

सेव्यते दैवतैः सर्वं ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
तपसा साधितस्तैस्तु सुरैर्ब्रह्मादिभिः प्रिये ॥
ईप्सितं प्राप्तवान् कार्यमस्मिन् तीर्थे वरानने ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पितॄणां तु तिलोदकम् ॥

मुच्यते मानवः पापात् सप्तजन्मसमुद्भवात् ।
सन्देहो नैव कर्तव्य इति शम्भुः स्वयमब्रवीत् ॥
प्रयागे वा भवेन्मोक्षो महाकाले च वा प्रिये !
अमरकण्टके तद्वत् तथा कायावरोहणे ॥

महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम् ।
अनघः स्नानमात्रेण स भूत्वेह द्विजोत्तमः ॥
अस्मिन् योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादत्र दिनत्रयम् ।
पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत् ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ।

आश्विनस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः ॥
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च कृत्वा श्राद्धादिकाः क्रियाः ।
आश्विन्याश्च सोमयोगे ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥
पट्टत्रन्घं लाकूलीशं स्वयं देवैश्च यत्कृतम् ।
न तेषां जायते जन्म संसारे दुःखसङ्कटे ॥

तत्र मारी न वर्तेत न दारिद्र्यं न रोगिणः ।
श्रूयतामत्र देवेशि ! पुण्येऽस्मिन् भृगुमण्डले ॥
श्रीमत्कारोहणे तीर्थे प्रथमं तु कलौ युगे ।
दीर्घकायं तु देवेशि यज्ञं यज्ञवरोत्तमे ॥
कृत्वा तु ब्राह्मणान् पूज्य (?) दिनान्यष्टादशैव तु ।
तत्र कारोहणे द्वारे विश्वे देवा महर्षयः ॥

भोजयेयुर्ब्राह्मणान् शक्त्या यजमानः पितामहम् ।
यो वेद विश्वमद्रूपं स्वयं विष्णुमहेश्वरम् ॥
ब्राह्मणः श्रद्धया युक्तो ब्रह्मेश्वरो ह्यजायत ।
अजैकपादा गन्धर्वा किन्नराश्च तथैव च ॥
सर्वे देवाश्च पितरः सचन्द्रार्कदिवाकराः ।
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहस्तथा ॥
प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च ।
देवला गालवश्चैव वामदेवो महाऋषिः ॥
बालखिल्यश्च कुशश्च तृणबिन्दुस्तथैव च ।
उद्दालको जयच्छृङ्गो माण्डव्यो व्यासनन्दनः ॥
गौतमोऽथ भरद्वाजो वात्सो वात्स्यायनस्तथा !
अन्ये च बहवो देवि ! ऋषयश्च तपोधनाः ॥

दृष्ट्वा देवं विरूपाक्षम् आनन्दं परमं ययुः ।
यानि कानि च पुण्यानि तीर्थानि सरितस्तथा ॥
ब्रह्माद्याः सर्वतीर्थेषु स्नात्वा चैव मुदान्विताः ।
स्नापयेयुः शिवं तत्र पुण्यैस्तीर्थोदकैः प्रिये ॥

प्रथमं स्नापयेद् ब्रह्मा ततश्चैव जनार्दनः।
ततस्त्विन्द्रोऽपि देवेशः चतुर्थो भानुरेव च ॥
चतुर्भिः कलशैर्दिव्यैः स्नाप्य देवं जगद्गुरुम्।
विलेप्य चन्दनैर्दिव्यैः कर्पूरागुरुधूपकैः ॥
पुष्पैर्मनोहरैर्दिव्यैः श्वेतमालाभिरर्चितः ॥
पट्टसूत्रमयैर्वस्त्रैः सूत्रजैर्वा महेश्वरम्।
परिधाप्य महादेवं यथाशक्त्या च पूजयेत् ॥
यावत् तद्वस्त्रतन्तूनां संख्यानं शिवपूजने।
तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥
ते पूज्य विधिना देवं सुरा ब्रह्मादयः प्रिये।
हिरण्मयं ततः पट्टं चक्रुर्देवस्य मूर्धनि ॥
पट्टबन्धं तु ये कुर्यु रेवं देवस्य मूर्धनि।
न तेषां पुनरावृत्तिः संसारे जायते प्रिये ! ॥

श्रीदेव्युवाच—

किं पुण्यं के गुणास्तस्य किमर्थं कीर्तितं विभो !
पट्टबन्धस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ! ॥

श्रीशङ्कर उवाच—

सागरस्य तटे रम्ये प्रभासो नाम सुन्दरि !
सर्वं तीर्थं प्रभासादि नात्र कार्या विचारणा ॥
तत्र सोमेश्वरो देवो सोमेन स्थापितः पुरा।
तस्य द्वादशमात्राभिः समानं पट्टबन्धनम् ॥
सकलैश्चैव योगैश्च प्रभासे यत्प्रकीर्तितम्।
तत्फलं समवाप्नोति पट्टबन्धं करोति यः ॥
कार्त्तिके कृत्तिकायोगे कार्तिक्यां षण्मुखस्य च।
दर्शनात् सप्तयात्रायां तत्फलं नात्र संशयः ॥
अयनेऽमरचण्डीशे यात्रायां पञ्चभिः फलम्।
तत्फलं कृतमात्रेण [नरः प्राप्नोति] पार्वति ! ॥
वैशाख्यां महाकाले अद्य अघ (यच्च) एकादशीफलम्।
दर्शनेनापि चाश्विन्यामित्याहुश्च पुराविदः ॥
यत्फलं च कुरुक्षेत्रे राहुणा ग्रसिते रवौ।
आजन्मगामिनां नृणां तत्फलं पट्टबन्धने ॥

सोमवारे त्वमावस्यां भस्मगात्रस्य दर्शनात् ।
यात्राणां दशके यच्च तत्फलं पट्टबन्धनात् ॥

वाराणस्यां महादेवि ! कालक्षेपं करोति यः ।
तत्फलं समवाप्नोति सकृद् वै पट्टबन्धनात् ॥

गङ्गायां साधयेत् पुण्यं चतुर्युगेन यन्नरः ।
तत्पुण्यं जायते तस्य पट्टबन्धं करोति यः ॥

कृष्णाजिनसहस्राणि तिलधेनुशतानि च ।
दत्त्वा तत्फलमाप्नोति पट्टबन्धे कृते सति ॥

मतंगजसहस्रं तु अश्वानामयुतं तथा ।
तत्फलं समवाप्नोति पट्टबन्धे कृते सति ॥

ससागरां धरां दत्वा पुमान् यत्फलमश्नुते ।
तत्फलं समवाप्नाति पट्टबन्धे कृते सति ॥

कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं कविभिः कृतम् ।
विधिना पट्टबन्धे तु तत्फलं लभते नरः ॥

वापीकूपसहस्राणि देवतायतनानि च ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फल पट्टबन्धनात् ॥

मातापित्रोर्गुरूणां च [यत्फल] भक्तितो नृणाम् ।
तत्फलं समवाप्नोति सकृद् वै पट्टबन्धनात् ॥

गवामर्थे द्विजार्थे च स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत् तनुम् ।
तत्फलं समवाप्नोति पट्टबन्धेन पार्वति ! ॥

आपन्नार्तिहराणां च तीर्थसेवार्जितात्मनाम् ।
सत्यव्रतानां यत्पुण्यं तत्फलं पट्टबन्धनात् ॥

वनाश्रमेषु वसतां तापसानां च यत्फलम् ।
तत्फलं जायते तस्य पट्टबन्धं करोति यः ॥

यस्तु वर्षशतं पूर्णमहोरात्रमुपासते ।
एकेन पट्टबन्धेन तत्फलं लभते नरः ॥

गाङ्गेयं नार्मदं चान्द्रं पुण्यं सारस्वतं जलम् ।
करोति पार्वति ! नित्यं तत्फलं पट्टबन्धनात् ॥

यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
भूतलं सर्वमटतो तत्फलं पट्टबन्धनात् ॥

दुर्लभं जन्म विप्रस्य दुर्लभं च तथा धनम् ।
दुर्लभः पट्टबन्धश्च लकुलीशस्य च प्रिये ! ॥

स्वल्पेन हेम्ना लकुलीश्वरस्य यः पट्टबन्धं विधिवत् करोति ।
विधूतपापो हि विमोदते स प्रसादमासाद्य महेश्वरस्य ॥

य इदं लकुलीशस्य माहात्म्यं शृणुयान् नरः ।
तत्प्रसादेन तस्यास्तु गोसहस्रादिकं फलम् ॥

इति प्रपन्नाः लकुलीशमीशं ये चारुचामीकरराशिगौरम् !
संस्कारविद्याव्रतमन्त्रधौतं समाविशन्ति प्रतिगृह्यकायम् ॥

इति श्रीशिवपुराणे पार्वतीमहेश्वरसंवादे तीर्थ[ानुक्रम]णिकायां
शूलपाणिजन्मपट्टबन्धादिमाहात्म्यं समाप्तम् ।
समाप्तं कारवणमाहात्म्यम्

## पञ्चम परिशिष्ट

# पूजाविधि एवं आवरणदेवता

एकलिङ्गमाहात्म्य (पौराणिक) के २४वें अध्याय में पूजाविधि का जो वर्णन है उसे हम यहाँ सारणी के रूप में दे रहे हैं और साथ ही शारदातिलक में वर्णित पूजाक्रम भी तुलनार्थ दे रहे हैं।

आवरणदेवताओं का जो वर्णन ए० लिं० मा० के २५वें अध्याय में है, उसे एक ही दृष्टि में देखा जा सके इस विचार से यहाँ हम प्रस्तुत कर रहे हैं, साथ ही लिङ्गपुराण के २७वें अध्याय में कहे गये आवरणपूजन का विस्तृत विवरण भी तुलनार्थ यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत है।

(क) पूजाविधि—

## एकलिङ्गमाहात्म्य की पूजाविधि

| क्रम | मुख | दिशा | वेद | ऋषि | छन्द | देवता | वर्ण | बांज | विनियोग | कला | पूजोपकरण |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | सद्योजात | पश्चिम | — | सद्यः | गायत्री | ब्रह्मा (हंसवाहन) | श्वेत | लं | सृष्ट्यर्थं | अष्ट—ऋद्धि, सिद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेधा कान्ति, स्तुति, प्रभा | श्वेत अक्षत श्वेत पुष्प |
| २ | वामदेव | उत्तर | यजुष् | वामदेव | जगती | विष्णु (गरुडवाहन) | गौर + काश्मीर | नं | स्थितिविधि | त्रयोदश—रजसी, रक्षा, रति, पाली, कामिका, सञ्जीवनी, प्रिया, बुद्धि, क्रिया-धात्री, भ्रामरी | तुलसी, शतपत्र |
| ३ | अघोर | दक्षिण | — | अघोर | अनुष्टुप् | रुद्र (वृषवाहन) | नील | रं | संहारार्थं | अष्ट—तामसी, मोहनी, क्षया. तृष्णा, व्याघ्री, मृता, क्षुधा, तृषा | नीलोत्पल, करवीर |
| ४ | तत्पुरुष | पूर्व | साम | पुरुष | गायत्री | सूर्य (रथारूढ़) | पीत | यं | सर्वार्थसिद्धि | चतुः—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति | दूर्वाङ्कुर, अर्कपुष्प |
| ५ | ईशान | ऊर्ध्व | अक्षर-मन्त्रशास्त्र | ऊर्ध्वमुख | त्रिष्टुभ् | सदाशिव (सिंहपीठग) | पक्व-जम्बूफल | हं | अर्थसिद्धि | पञ्च—शशिनी, अंगदा, अरिष्टा, मरीचि, ज्ञानदा। | बिल्व, कनकपुष्प |

## शारदातिलक--प्रोक्त क्रम (१८ पटल)

| क्रम | मुख | दिशा | अङ्ग | वर्ण | कला | आयुधादि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | तत्पुरुष | प्राची | वक्त्र | पीत | शान्ति, विद्या प्रतिष्ठा, निवृत्ति | चतुर्मुख, त्रिनेत्र, अक्षस्रक्, मृग, पाश, सृणि, डमरुक, खट्वाङ्ग, शूल, कपाल, परशु, एण, वर, अभीति |
| २ | अघोर | याम्या | हृत् | अञ्जन (पयोद) | अघोरा, मोहा, क्षमा, निद्रा, व्याधि, मृत्यु, क्षुधा, तृषा | अञ्जनाभ, चतुर्वक्त्र, भीमदंष्ट्र, भयावह |
| ३ | सद्योजात | वारुणी | पाद | श्वेत (मुक्ता) | सिद्धि, वृद्धि, द्युति, लक्ष्मी, मेधा प्रज्ञा, प्रभा, स्वधा | विलासी, स्मेरवक्त्र, सौम्य, हरिण, अक्ष, गुण, अभीति, बालेन्दु–शेखर, उल्लासी |
| ४ | वामदेव | उदीची | गुह्य | रक्त (जपा) | ज्येष्ठा, रक्षा, रति, पालिनी, कामा, मन:संयमनी, बलक्रिया, वृद्धि, भ्रामरी, मोहिनी, जरा, स्थिरा, प्रमथनी | वर, अभय, अक्ष, वलय, कुठार |
| ५ | ईशान | मध्य (ऐशानी) | मूर्धा | शुभ्र (मौक्तिक) | शशिनी, अङ्गदा ब्रह्मेष्टदा, मरीचि, अंशुमालिनी | शक्ति, डमरुक, अभीति, त्रि + ईक्षण, वर |

(ख) आवरणदेवता

ए० लिं० मा० के २५वें अध्याय में आवरणपूजा का जो वर्णन है, उसका शिव के पञ्चमुखों से कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है, केवल "पूर्वादिपत्रस्थकेसरेषु" कह कर पूर्वादिक्रम का सङ्केतमात्र दिया है। आवरण इस प्रकार हैं—

**प्रथम** (देवी)

१. उमादेवी २. शङ्करप्रिया ३. गौरी ४. पार्वती ५. काली ६. कोटरी ७. विश्वधारिणी ८. पार्वती (?)

**द्वितीय** (अङ्ग)

१. गणपति २. क्षेत्रपाल ३. कुमार ४. स्वामिपुष्पदन्त ५ कपर्दी नन्दिकेश ७. महाकाल ८. भृङ्गिरीट।

**तृतीय** (ग्रह)

१. पूर्व में आदित्य २. अग्निकोण में सोम ३. दक्षिण में भूमिज ४. निर्ऋत में सौम्य ५. पश्चिम में बृहस्पति ६. वायव्य में शुक्र ७. उत्तर में शनि ८. ईशान में राहु-केतु।

**चतुर्थ** (गण)

१. नन्दी २. महाकाल ३. भृङ्गिरीटि ४. वृष ५. स्कन्द ६. कपर्दी ७. ऋषिदेव ८. महादेव।

**पञ्चम** (पीठ)

१. पूर्व में हेतुकपीठ २. आग्नेय में त्रिपुरान्तकपीठ ३. दक्षिण में वेतालपीठ ४. नैऋत में असिपत्रक पीठ ५. पश्चिम में वारुणपीठ ६. वायव्य में कुलान्तक पीठ ७. उत्तर में यक्षपोठ ८. ईशान में भीमपीठ।

**षष्ठ** (देव)

१. पूर्व में इन्द्र २. आग्नेय में अग्नि ३. दक्षिण में यम ४ नैऋत में निर्ऋति ५. पश्चिम में वरुण ६. वायव्य में वायु ७. उत्तर में कुबेर ८. ईशान में ईशान ९. ऊर्ध्व में ब्रह्मा १०. अध: में अनन्त।

**सप्तम** (आयुध, देवक्रम से)

१. वज्र २. शक्ति ३. दण्ड ३. खड्ग ५. पाश ६. अङ्कुश ७. गदा ८. शूल ९. कमण्डलु १०. चक्र।

**अष्टम** (वाहन, देवक्रम से)

१. ऐरावत २. मेघ ३. महिष ४. प्रेत ५. मकर ६. मृग ७. अश्व ८. वृषभ ९. हंस १० कूर्म।

**नवम**

नवम आवरणार्चन का उल्लेख तो ए० लिं० मा० २५–२६ में है, किन्तु उसका कोई विवरण नहीं है।

लिङ्गपुराण में आवरणपूजा के प्रसङ्ग में पञ्चमुखों का ईशानादि क्रम रखा गया है।

> सर्वावरणदेवानां पञ्च पञ्चैव पूर्ववत्।
> ईशानादिक्रमेणैव शक्तिबीजक्रमेण च ॥
>
> (लिं० पु० उत्तर भाग २५/१०३)

उल्लेखनीय है कि लिङ्गपुराण के आरम्भ में (११–१५ अध्याय) माहात्म्यवर्णन के प्रसङ्ग में पश्चिम-उत्तर-पूर्व-दक्षिण इस प्रकार मुखों का वर्णन कर के प्रदक्षिणक्रम अक्षुण्ण रखा गया है और अन्त में ईशान कहा है। किन्तु २५वें अध्याय में वक्त्रोद्घाटन के प्रसंग में ईशानादि क्रम है (श्लो० ९०–९१) जो प्रदक्षिण क्रम का कुछ भंग कर के—पूर्व दक्षिण उत्तर पश्चिम इस प्रकार चलता है। आवरणपूजा में भी यही क्रम रखा गया है।

लिङ्गपुराण में आवरणार्चन का अत्यन्त विस्तृत विवरण है, किन्तु उसमें कोई व्यवस्था खोजना कठिन है। ए० लिं० मा० उससे इस प्रसंग में किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं है। प्रत्येक मुख के पाँच-पाँच आवरण अभिप्रेत हैं ऐसा लिङ्गपुराण के २६वें अध्याय से पता चलता है किन्तु २७वें अध्याय में आवरणों के विपुल विस्तार में यह व्यवस्था उभर नहीं पाई है। पञ्चवक्त्रपूजा के प्रसंग में आवरणदेवताओं को लेकर कितना विस्तार पौराणिक परम्परा में हुआ है, इसके उदाहरण-मात्र के लिए हम यहाँ लिङ्गपुराण से केवल प्रथम मुख के आवरण उद्धृत कर रहे हैं।

**प्रथम मुख**

**प्रथमावरण**—पागादि केसरों में वामा आदि शक्तियों का विन्यास।

देव—१. वामदेव, २. ज्येष्ठ, ३. रुद्र, ४. कालरूप, ५. कलाविकरण, ६. बल, ७. सर्वभूतदमन, ८. मनोन्मन, ९. शूली।

देवी—१. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. काली, ५. विकरणी ६. बला, ७. दमनी, ८. मनोन्मनी, ९. प्रमथिनी ।

(मूल श्लोकों में बला के बाद प्रमथिनी है और ज्येष्ठ के बाद शूली । उक्त क्रम अपनी ओर से बैठाया गया है)

**द्वितीयावरण**—पूर्वादि अन्तों में षोडश शक्तियों का विन्यास ।

चक्र या व्यूह—१. ऐन्द्र २. आग्नेय ३. याम्य ४. नैर्ऋत ५. वारुण ६. वायु ७. सौम्य ८. रुद्र ।

शक्ति—१. सुभद्रा २. भद्रा ३. कनकाण्डजा ४. अम्बिका ५. श्रीदेवी ६. वागीशा ७. गोमुखी ८. भद्रकर्णा ।

युग्म—१. ऐन्द्र-अग्नि २. याम्य-पावक ३. राक्षस-आन्तक ४. वरुण-आसुर ५. वरुण-अनिल ६. वित्तेश-अनिल ७. वित्तेश-ईशान ८. ऐन्द्र-ईशान ।

शक्ति—१. अणिमा २. लघिमा ३. महिमा ४. प्राप्ति ५. प्राकाम्य ६. ईशित्व ७. वशित्व ८. कामावसायक ।

**तृतीयावरण**—पूर्वादि प्रधान कलशों में २४ शक्तियों का विन्यास ।

१. दीक्षा २. दीक्षायिका ३. चण्डा ४. चण्डांशुनायिका ५ सुमति ६. सुमत्यादि ७. गोपा ८. गोपायिका ९. नन्द १०. नन्दायी ११. पितामह १२. पितामहायी । (२४ कह कर १२ का ही उल्लेख है ।)

## महाव्यूहाष्टक

**१. सौभद्र व्यूह**—प्रागादि क्रम ।

**प्रथम आ०***—१. बिन्दुका, २. बिन्दुगर्भा ३. नादिनी ४. नादगर्भजा ५. शक्तिका ६. शक्तिगर्भा ७. परा ८. पराऽपरा ।

**द्वितीय आ०**—१. चण्डा २. चण्डमुखी ३. चण्डवेगा ४. मनोजवा, चण्डाक्षी ६. चण्डनिर्घोषा ७. भृकुटी ८. चण्डनायिका ९. मनोत्सेधा १०. मनोऽध्यक्षा ११. मानसी १२. माननायिका १३. मनोहरी १४. मनोहरादि १५. मनः प्रीति १६. महेश्वरी ।

**२. भद्रव्यूह**

**प्रथमा आ०**—१. ऐन्द्री २. हौताशनी ३. याम्या ४. नैर्ऋती ५. वारुणी ६. वायव्या ७. कौबेरी ८. ऐशानी ।

---

* आ = आवरण ।

**द्वितीय आ०**—१. हरिणी २. सुवर्णा ३. काञ्चनी ४. हाटकी ५. रुक्मिणी ६. सत्यभामा ७. सुभगा ८. जम्बुनायिका ९. वाग्भवा १०. वाक्पथा ११. वाणी १२. भीमा १३. चित्ररथ १४. सुधी १५. वेदमाता १६. हिरण्याक्षी ।

**३. कनकाख्य व्यूह**

**प्रथम आ०**—१. वज्र २. शक्ति ३. दण्ड ४. खड्ग ५. पाश ६. ध्वज ७. गदा ८. त्रिशूल ।

**द्वितीय आ०**—१. युद्धा, २. प्रबुद्धा, ३ चण्डा ४. मुण्डा ५. कपालिनी ६. मृत्युहन्त्री ७. विरूपाक्षी ८. कपर्दा ९. कमलासना १०. दंष्ट्रिणी ११. रङ्गिणी १२. × १३. लम्बाक्षी १४. कङ्कभूषणी १५. संभावा १६. भाविनी ।

**४. अम्बिकाख्य व्यूह**

**प्रथम आ०**—१. खेचरी २. आत्मना ३. भवानी ४. वह्निरूपिणी ५. वह्निनी ६. वह्निनाभा ७. महिमा ८. अमृतलालसा ।

**द्वितीय आ०**—१. क्षमा २. शिखरा ३. ऋतुरत्ना ४. शिला ५. छाया ६. भूतपनी ७. धन्या ८. इन्द्रमाता ९. वैष्णवी १०. तृष्णा ११. रागवती १२. मोहा १३. कामकोपा १४. महोत्कटा १५. इन्द्रा १६. बधिरा ।

**५. श्रीव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. स्पर्शा २. स्पर्शवती ३. गन्धा ४. प्राणा ५. अपाना ६. समानिका ७. उदाना ८. व्याना ।

**द्वितीय आ०**—१. तमोहता २. प्रभा ३. अमोघा ४. तेजिनी ५. दाहिनी ६. भीमास्या ७. जालिनी ८. ऊषा ९. शोषिणी १०. रुद्रनायिका ११. वीरभद्रा १२. गणाध्यक्षा १३. चन्द्रहासा १४. गह्वरा १५. गणमाता १६. अम्बिका ।

**६. वागीश व्यूह**

**प्रथम आ०**—१. धारा २. वारिधरा ३. वह्निकी ४. नाशको ५. मर्त्यातीता ६. महामाया ७. वज्रिणी ८. कामधेनुका ।

**द्वितीय आ०**—१. पयोष्णी २. वारुणी ३. शान्ता ४. जयन्ती ५. वरप्रदा ६. प्लाविनी ७. जलमाता ८. पयोमाता ९. महाम्बिका १०. रक्ता ११. कराली १२. चण्डाक्षी १३. महोच्छुष्मा १४. पयस्विनी १५. माया १६. विद्येश्वरी १७. काली १८. कालिका ।

**७. गोमुख व्यूह**

**प्रथम आ०**—१. शंकिनी २. हालिनी ३. लंकावर्णा ४. कोल्किनी ५. यक्षिणी ६. मालिनी ७. वमनी ८. रसात्मनी।

**द्वितीय आ०**—१. चण्डा २. घण्टा ३. महानादा ४. सुमुखी ५. दुर्मुखी ६. बला ७. रेवती ८. प्रथमा (प्रमथा ?) ९. घोरा १०. सैन्या ११. लीना १२. महाबला १३. जया १४. विजया १५. अपरा १६. अपराजिता।

**८. भद्रकर्ण व्यूह**

**प्रथम आ०**—१. महाजया २. विरूपाक्षी ३. शुक्लाभा ४. आकाश-मातृका ५. संहारी ६. जातहारी ७. दंष्ट्राली ८. शुष्करेवती।

**द्वितीय आ०**—१ पिपीलिका २. पुण्यहारी ३. आशनी ४. सर्वहारिणी ५. भद्रहा ६. विश्वहारी ७. हिमा ८. योगेश्वरी ९. छिद्रा १०. भानुमती ११. छिद्रा ? १२. सैंहिकी १३. सुरभी १४. समा १५. सर्वभव्या १६. वेगाख्या।

## उपव्यूहाष्टक

**१. अणिमाव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. ऐन्द्रा २. चित्रभानु ३. वारुणी ४. दण्डिनी ५. प्राण-रूपी ६. हंस ७. स्वात्मशक्ति ८. पितामह।

**द्वितीय आ०**—१. केशव २. रुद्र ३. चन्द्रमा ४. भास्कर ५. महात्मा ६. अन्तरात्मा ७. महेश्वर ८. परमात्मा ९. अणु १०. जीव ११. पिंगल १२. पुरुष १३. पशु १४. भोक्ता १५. भूपति १६. भीम।

**२. लघिमाव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. श्रीकण्ठ २. अन्त ३. सूक्ष्म ४. त्रिमूर्त्ति ५. शशक ६. अमरेश ७. स्थितीश ८. दारत (भारत ?)

**द्वितीय आ०**—१. स्थाणु २. हर ३. दण्डेश ४. भौक्तीश ५. सुरपुंगव ६. सद्योजात ७. अनुग्रहेश ८. क्रूरसेन ९. सुरेश्वर १०. क्रोधीश ११. चण्ड १२. प्रचण्ड १३. शिव १४. एकरुद्र १५. कूर्म १६. एकनेत्र (१७. चतुर्मुख)

**३. महिमाव्यूह**

**प्रथम आ०**—[लिखा नहीं है।]

**द्वितीय आ०**—१. अजेश २. क्षेमरुद्र ३. सोम ४. अंश ५, लांगली ६. दण्डारु ७. अर्धनारी ८. एकान्त ९. अन्त १०. पाली ११. भुजंगनामा १२. पिनाकी १३. खड्गी १४. काम १५. ईश १६. श्वेत (१७. भृगु)।

**४. प्राप्तिव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. संवर्त २. लकुलीश ३. वाडव ४. हस्ति ५. चण्डयक्ष ६. गणपति ७. महात्मा ८. भृगुज।

**द्वितीय आ०**—१. त्रिविक्रम २. महाजिह्व ३. ऋक्ष ४. श्रीभद्र ५. महादेव ६. दाधीच ७. कुमार ८. परावर ९. महादंष्ट्र १०. कराल ११. सूचक १२. सुवर्धन १३. महाध्वांक्ष १४. महानन्द १५. दण्डी १६. गोपालक।

**५. प्राकाम्यव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. पुष्पदन्त २. महानाग ३. विपुलानन्दकारक ४. शुक्ल ५. विशाल ६. कमल ७. बिल्व ८. अरुण।

**द्वितीय आ०**—१. रतिप्रिय २. सुरेशान ३. चित्रांग ४. सुदुर्जय ५. विनायक ६. क्षेत्रपाल ७. महामोह ८. जंगल ९. वत्सपुत्र १०. महापुत्र ११. ग्रामदेशाधिप १२. सर्वावस्थाधिप १३. देव १४. मेघनाद १५. प्रचण्ड १६. कालदूत।

**६. ऐश्वर्यव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. मंगला २. चर्चिका ३. योगेशी ४. हरदायिका ५. भासुरा ६. सुरमाता ७. सुन्दरी ८. मातृका।

**द्वितीय आ०**—१. गणाधिप २. मन्त्रज्ञ ३. वरदेव ४. षडानन ५. विदग्ध ६. विचित्र ७. अमोघ ८. मोघ ९. अश्वी १०. रुद्र ११. सोमेश १२. उत्तमोदुम्बर १३. नारसिंह १४. विजय १५. इन्द्रगुह १६. अपांपति।

**७. वशित्वव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. गगन २. भवन ३. विजय ४. अजय ५. महाजय ६. अंगार ७ व्यंगार ८. महायशाः।

**द्वितीय आ०**—१. सुन्दर २. प्रचण्डेश ३. महावर्ण ४. महासुर ५. महारोमा ६. महागर्भ ७. प्रथम (प्रमथ ?) ८. कनक ९. खरज १०. गरुड ११. मेघनाद १२. गज १३. छेदक १४. बाहु १५. त्रिशिख १६. मारि।

**८. कामावसायकव्यूह**

**प्रथम आ०**—१. विनाद २. विकट ३. वसन्त ४. अभय ५. विद्युत् ६. महाबल ७. कमल ८. दमन।

**द्वितीय आ०**—१. धर्म २. अतिबल ३. सर्प ४. महाकाय ५. महाहनु ६. सबल ७. भस्मांगी ८. दुर्जय ९. दुरतिक्रम १०. वेताल ११. रौरव १२. दुर्धर १३. भोग १४. वज्र १५. कालाग्निव्यूह १६. सद्योनाद (१७. महागुह) ।

# शुद्धिपत्र

| पृष्ठ | श्लोक | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ४ | ३ | ० पुण्ढ्रकाः | ० पुण्ड्रकाः |
| ७ | १३ | मानवपूजाभिः | मानसपूजाभिः |
| ३७ | ४३ | बौद्धः | बुद्धः |
| ३८ | ६० | समाराध्य भयम् | समाराध्याभयम् |
| ४१ | ११५ | यावदाहूतसम्प्लवम् | यावदाभूतसम्प्लवम् |
| ७५ | २ | कीर्तिभूताः | कीर्त्तिभूताम् |
| ,, | ,, | ययौ | पपौ |
| ७६ | २६ | [सूत उवाच] | [नारद उवाच] |
| ८४ | १३ | अतीथीन् | अतिथीन् |
| ९५ | ६३ | गूढपाद | (गौड) पाद |
| ९९ | ३१ | (त्मनश) चयत् | (त्मनश्) च यः |
| १०२ | ६७ | हीमित्यन्ते | ह्रीमित्यन्ते |
| ,, | ,, | तथा स (:) | तथा ह स |
| ११२ | १२ | ० जागेश्वर | (० सिद्धेश्वर) |
| ११३ | ३४ | रत्नद्वीप | रत्नद्वीपं |
| ११६ | ८१ | विष्णुक्रां (?) तां | विष्णुक्रान्तां |
| ११८ | १० | मातृकां भोजे (?) | मातृकाम्भोजे |
| ११९ | ३७ | ङे (?) तं | ङेऽन्तं |
| ,, | ४१ | द्विठं (?) | द्विठं |
| १२३ | १०१ | विनियोगार्थ० | विनियोगोऽर्थ० |
| १२४ | ९ | तुल्यं | तुभ्यं |
| १२६ | २९ | देवता (?) | देवता |
| ,, | ३३ | प्रोक्षेत् कैर (?) स्त्र० | प्रोक्षेत्कैरस्त्र० |
| १२८ | ५८ | (मा पिब स्वयम्) | हटा दें |
| १४९ | २ | यथाथर्वा (?) | यथाथर्वा० |
| १५४ | २१ | समुपेत्यन्ते (?) स्थितम् | समुपस्थितमिति |
| ,, | २२ | (?) च | च |
| ,, | ,, | ० क्षरात्मकः (?) | ० क्षरात्मकः |

| पृष्ठ | श्लोक | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १५७ | ५४ | परा प्रासादबीजं (?) | पराप्रासादब्रीजं |
| १५८ | ८० | सनिर्माल्यँ | सनिर्माल्यं |
| १६१ | २५ | (?) तु | तु |
| ,, | २७ | (तिषु) | (तिथिषु) |
| ,, | ३१ | (?) प्रयोगतः | प्रयोगतः |
| १६३ | ६१ | ० मोदकैः | ० मोंदकैः |
| १६५ | ९२ | आत्मस्थानं द्रव्यमन्त्रं | आत्मस्थानद्रव्यमन्त्र ० |
| १७७ | ८४ | जडता | जडतां |
| १८४ | १५ | सा धारा | साधारा |
| १९५ | ११ | श्रीकुम्भवामी | श्रीकुम्भस्वामी |
| २०१ | २ | माता त्यक्ता | माताऽत्युक्ता |
| २०२ | १६ | ० शबरीशः | ० शक्वरीशः |
| ,, | १७ | सर्वदालि शक्वरी० | सर्वदाऽतिशक्वरी ० |

प्रथम परिशिष्ट में पृ० १७३ पर श्लोक संख्या २२ और ४५ के बीच २३ श्लोक छूट गये हैं जिन्हें हम यहाँ दे रहे हैं।

तत्तनुजो जितरिपुरिह राजा श्रीकालभोजनामाऽऽसीत् ।
तत्तनयः खुम्माणो मालवपतिसिंहसंहर्त्ता ॥२३॥
हर्षाद् योऽतोलयत् एवं निजसुतगृहिणीसंयुतं क.ञ्चनेन ।
प्रादात्त[द्] ब्राह्मणेभ्यः कनकमितिलसत्कल्पवृक्षोपमानः ॥२४॥
कीर्तिं वि (व्य) स्तारयत् स्वां तुहिनदधिसुता (धा) क्षीरहीरावदाताम् ।
स श्रीखुम्माणनामा समभवदवनेर्नायको भूरिभाग्यः ॥२५॥
विलङ्घयन्ती सकलं महीतलं दिगङ्गणं वारिनिधिं गिरिव्रजम् ।
खुम्माणराजन्यशिरोमणेरसौ सदा[1] ननर्त्ताद्भुतकीर्त्तिनर्तकी ॥२६॥
अङ्गाः संप्राप्तभङ्गाः समरभुवि परं दत्तनागा [स्तु] बङ्गा
नष्टा [स्तेना] खिलाङ्गाः शरततिहतिभिः पातिताङ्गास्त्रिलिङ्गाः ।
सौराष्ट्रास्त्यक्तराष्ट्रा नरपतितिलकः प्रस्थितो दिग्जयार्थम्
चोण्डाः संत्यक्तचूडा रणरसपटवो द्राविडा नैव गौडाः ॥२७॥
तन्नन्दनो नरेशः श्रीगोविन्दसमस्तनृपवन्द्यः ।
तस्मादालुराउलनामाऽभूद् भूतले भूपः ॥२८॥

१. '० शिरोमणेवसा वसौ'—इति मूलपाठः ।

तस्मात् सिंहः समजनि यस्तु स्वयमेव विश्वनाथः सन् ।
श्री विश्वनाथदेवं ततवान् कृतजाह्नवीस्नानः ॥२९॥

श्रीमान् शवितकुमारस्तत्तनयः शालिवाहनो नृपतिः ।
तत्पुत्रो नरवाहननामाऽथाम्बाप्रसादश्च ॥३०॥

श्रीकीर्त्तिवर्म्मनृपतिर्नरवर्माऽथ क्रमेण राजानः ।
उत्तमभूतो नरपतिनामा करणार्कभूपालः ॥३१॥

भादूकस्तत्तनयो गातडिनामाऽथ तस्य पुत्रोऽभूत् ।
श्रीहंसनामा तत्तनयो योगराजोऽभूद् राजा ॥३२॥

वैरडनामा तत्तनयो .... .... .... .... ।
तत्पट्टे नरनाथः श्रीपुञ्जः सकलपृथ्वीन्द्रः ॥३३॥

तस्मिन् नन्दनवनगेऽप्सरसां वृन्दैः समं विनोदयति ।
पालयति स्म धरित्रीं तदङ्गजः कर्णभूर्मान्द्रः ॥३४॥

यः शौर्येण च हाटकदानेन च मूर्त्तनृपकर्णः ।
दुर्गं कारितवान् श्रीआहोरे पर्वते रम्ये ॥३५॥

पञ्चाशद् वरकरिणो गिरिश्रृङ्गाणीव यस्य कर्णस्य ।
उच्चैःश्रवासमानां तुरङ्गमाणां लक्षम् ॥३६॥

येन महासंग्रामे प्रभुवत्सो भीममहिराजौ (जः) ।
धरवीरो नरनाथो भग्नो रणरङ्गमल्लेन ॥३७॥

गजगोपतिगोविन्दा यत्पादाम्भोजभृङ्गतां प्राप्ताः ।
खङ्गारक्षेत्रनृपो येन [illegible] भुजाभ्यामुभौ भग्नौ ॥३८॥

अम्बडनरपतिदेवौ बद्ध्वा कारागृहे विनिक्षिप्तौ ।
कोरिणिभमो (?) नरेशो द्वादश तोतण्डरेण (?) बद्धः ॥३९॥

गुर्जरबर्बरकाफरकावेशहीरशूरसेनानाम् ।
कुरुजालन्धरसौराष्ट्रमहाराष्ट्रान्ध्रदेशानाम् ॥४०॥

कर्णलाटतोटइवडमहो (?) भोटगौडचोडानाम् ।
पञ्चालोत्कलकोहलडाहलनेपालदेशानाम् ॥४१॥

बङ्गकलिङ्गाङ्गानां कोसल-सोडीसतायिक (?)-शकानाम् ।
भूमिपतयस्ते ते सेवन्ते स्माथ कर्णनृपे (पम्) ॥४२॥

अथ कर्णभूमिभर्त्तुः शाखा द्वितीयं (या) विभाति भूलोके ।
एका राउलनाम्नी राणानाम्नी परा महती ॥४३॥

अद्यापि यो (ये) जितसिंहस्तेजसिंहस्तथा समरसिंहः ।
श्रीचित्रकूटदुर्गे भूषन (बभूवुः)-जितशत्रवो भूपाः ॥४४॥

धर्मे यस्य म (र) मंतिमंतिर्गुरुजने प्रीतिः सदा सद्गुरौ,
दत्तिः पात्रगणे रणे च निहतिः सद्भिः समं सङ्गतिः ।
नीतिर्लौकिककर्मनर्मसुविधौ निर्धूतलोभोद्गति-
स्तेजः सिंहनराधिपो विजयतां संप्राप्य राज्यश्रियम् ॥४४क॥

•